

MOTI LAL BANARSI DASS,
PUNJAB SANSKRIT BOOK DEPT.,
Sold Mitha Bazar, LAHORE

•

•

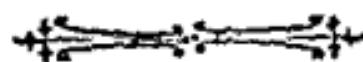
•

आयुर्वेदीयग्रन्थमाला तृतीयं पुस्तकम् ।

श्रीविद्यसोहलविरचितो

गदनिग्रहः ।

(प्रथमः प्रयोगखण्डः ।)



आचार्योपाहेन त्रिविक्रमात्मजेन यादवशर्मणा

संशोधितः

प्रकाशितश्च ।

(द्वितीयं संस्करणम्)

रु. १९८०

पूर्वं स्वप्नकथ्यम् ।

AYURVEDIYA GRANTHAMĀLĀ.
No. III.

GADANIGRAHA

(PRAYOGA KHAND VOL. 1.)

BY

VAIDYA SODHAL.



EDITED AND PUBLISHED

BY

VAIDYA JĀDAVJI TRICUMLI ĀCHĀRYA

No. 18, BORĀ BAZĀR STREET, FORT, BOMBAY.
SECOND EDITION.

1924 A. D.

Price Rs. 2 only.

Printed by Mr. Yeshwant Kashinath Padwal, at the "Tatva-Vivechaka
Press," No. 3344 Patel Road, New Nagpada, Byculla, Bombay
and published by Mr. Valdy Jadvaji Tricumji Acharya No. 18, Bora
Bazar Street, Fort, Bombay.

भूमिका ।

—१०—

गदनिग्रहकतोऽयं सोढलवैयो गुर्जरदेशनिवासी, रायेकवालाह्यवाह्यगजातीयः
वैयनन्दनपुत्रः, वत्सगोत्रोत्पत्त्वयोति तेन स्वविरचिते गुणसंग्रहापरपर्याये सोढलनि-
षट्ठुनाम्नि प्रन्थे प्रोक्तादामष्टतान्तात् प्रतीयते । स चार्यं सोढलवैयो कस्मिन्
समये समजनीत्येतत्प्रिणेतु न किञ्चिदपि साधनमुपलङ्घमस्माभिः । सोढलविरचितो
गदनिग्रहतिरिक्तो गुणसंग्रहापरपर्यायः सोढलनिग्रहण्टुगिति प्रसिद्धोऽन्योऽपि
अन्थः समुपलभ्यते । तत्र धन्वन्तरिनिष्टुगजनिषट्ठुप्रशृतिष्वनुक्तानां प्रायो
गुर्जरदेशप्रसिद्धानामेकशतद्वयाणां नामानि सगुणान्यधिकान्युक्तानि । यद्यपि चिकि-
त्साविषयकाद्यकदत्तवृहसेनयोगत्राकरप्रशृतयो बहवो प्रन्था मुद्रितास्तथापि भूरि-
प्रयोगवंत्वात्, सरदत्वाचाचमेव सर्वान्नतिरेते । अन्थेऽस्मिन् प्रयोग-कायचिकित्सा-
शालाक्य-शाल्य-भूततन्त्र-वालतन्त्र-वियतन्त्र-रसायन-वाजीकरण—पठवकर्मा-
धिकाराव्यया दश खण्डाः सन्ति । तत्र प्रथमे प्रयोगखण्डे धृततैलचूर्णगुडीलेहासवाह्याः
पठधिकारा विद्यन्ते । तेषु धद्यविकारेषु पश्चाशीत्यविकरपन्चशतिमिताः प्रत्यक्षफ-
लप्रदाविकित्सायां नित्योपयोगिनश्च प्रयोगा उक्ताः । अत्रोक्तप्रयोगेषु बहवः
प्रयोगा मुद्रितेषु चिकित्साप्रन्थेष्वनुक्ताः । अतोऽयं खण्डे वैयानां चिकित्साया-
मतीवोपयुक्तो भविष्यतीति पृथगेवायं प्रसिद्धोऽनुतः । अन्थस्यास्य आदर्शपुस्तकव्यय-
मुपलङ्घः; एकं अस्मत्परमसुहृदां स्वर्गेवासिनां वैद्यमुरारजोशर्मणां, अपरं च बुन्दी-
नगरमिवासिनां राजवैयानां श्रीप्रसादशर्मणां तृतीयं मोररीनगरनिवासिनां राज-
वैयानां विश्वनाथ विद्वलजो भट्ट इत्येतेयाम् । धृततैलचूर्णगुडीलेहासवानां परिभाषाः
सोढलेनानुकूला अप्यस्माभिर्विन्यान्ते संनिवेशिताः । अन्यस्यास्य संशोधने यथा-
मति कृतो यत्रः । तथापि भ्रमप्रमादादिवशाङ्कातं स्वलनं क्वाप्युपलभ्येत चेत्सु-
धीभिः संशोधनीयं क्षन्तत्रयादृ, सकलीकर्तव्यथ भमायं प्रयासो प्रन्थस्यास्य पठ-
नपाठनपर्योलोचनादिनेति ॥

यादवशर्मा.

-
१. रायकवालग्राह्यणानो वसतिः सोप्रते गुर्जरदेश एवोपलभ्यते । २. यथा—
“ वत्सगोत्रान्वयस्तप्र वैयनन्दननन्दनः । शिष्यः संघदयातोऽथ रायकवालवंशजः ॥
सोढलाह्यो भियक् भानुगादपद्मपद्मपदः । चकारेमे चिकित्सायां समर्पं गुणसंप्र-
दम्—” इति ॥

गद्विनिग्रहस्य प्रयोगखण्डान्तर्गतविषयाणापनुक्रमणिका ।

~~~~~३८~~~~~

| विषयः                     | पृ. | पं | विषयः                          | पृ. | पं |
|---------------------------|-----|----|--------------------------------|-----|----|
| मूलाचरणम्                 | १   | ५  | संगे महागोद्यायं पृतम्         | १२  | २१ |
| स्थानुक्रमणिका            | ,,  | १६ | रक्षपिते दूर्धायं „            | १३  | ४  |
| घृताभिसारः प्रथमः ।       |     |    | नेत्ररोगे महाश्रेष्ठत्वं पृतम् | „   | १६ |
| वरे मान्जिष्ठायं पृतम्    | ३   | ३  | वातधार्घो शतावरीपृतम्          | १४  | ३  |
| „ द्वितीयं „              | „   | १३ | शङ्खपुष्पायं पृतम्             | „   | १५ |
| „ तिलकायं „               | „   | २१ | चार्धये पारस्वतं पृतम्         | „   | १० |
| वीर्यज्वरे कुटुंबं „      | ४   | ३  | सन्तानार्थं फलवृतम्            | १५  | ६  |
| नमिपात्न्ये अमिवृतम्      | „   | २० | क्षतश्चेणे खदंष्ट्रायं पृतम्   | „   | २३ |
| महस्यो वाह्नीपृतम्        | ५   | ६  | कामठायो द्राक्षायं „           | १६  | ५  |
| पृथग्ये द्वितीयं „        | „   | १८ | कुठे महावज्रं „                | „   | ९  |
| घृते वापिकं पृतम्         | „   | २५ | „ द्वितीयं „                   | „   | ११ |
| „ देवुपाये „              | ६   | ३  | „ तिक्तकं „                    | „   | १६ |
| कौरिते वासायं „           | „   | ३  | „ महातिक्कं „                  | „   | २७ |
| „ महावासायं „             | „   | १६ | „ द्वितीयं „                   | १७  | १२ |
| पुरमे दशाहं „             | „   | २५ | स्तुहि रोहितकं पृतम्           | १८  | ३  |
| „ लक्ष्मनपृतम्            | ७   | ४  | „ विलायं „                     | „   | १० |
| „ नाराचकं पृतम्           | „   | १४ | सर्वोदरे द्विपद्ममूलायं „      | „   | २३ |
| कुषे नालिनीपृतम्          | „   | २७ | उद्देर ब्रह्मं „               | ११  | ३  |
| घृते विभायं पृतम्         | ८   | ९  | कासे कण्टकारीपृतम्             | „   | ८  |
| „ पद्मरं „                | „   | १४ | „ द्वितीयं „                   | „   | १३ |
| „ महापद्मरं „             | „   | १९ | „ चूर्णायं पृतम्               | „   | १८ |
| कुषे नीलं „               | ९   | १  | द्रवणे गोद्यायं „              | „   | २७ |
| „ महानीलं „               | „   | १२ | „ गुणुलुतिकके „                | २०  | ८  |
| „ विफलायं „               | १०  | ७  | शोपे द्राक्षायं „              | „   | २५ |
| „ आवर्तनीपृतम्            | „   | १४ | नेत्ररोगे विफलायं „            | २१  | ७  |
| गुरुधर्मे चयायं पृतम्     | „   | २१ | „ पद्मेलायं „                  | „   | २१ |
| प्रमेहे घनन्तरं „         | ११  | १  | उद्देर विन्दुपृतम्             | १२  | ५  |
| आळंरोगे कुमारकन्याणकं     |     |    | गुरुमे महाविन्दुपृतम्          | „   | १६ |
| पृतम्                     | „   | १८ | „ विन्दुपृतम्                  | „   | १४ |
| उन्मादे शार्द्धपृतम्      | १२  | ७  | गुरुमे द्वितीयं महाविन्दुपृतम् | २३  | ३  |
| शून्ये वीजगुरुक्षयं पृतम् | „   | १४ | कुठे विन्दुपृतम्               | „   | ८  |

| विषयाः                       | पृ. | पं. | विषयाः                   | पृ. | पं. |
|------------------------------|-----|-----|--------------------------|-----|-----|
| कुष्ठे पश्चातिकक्ष पृतम्     | २३  | १८  | चातुर्थकज्वरे महापैशाचकं | ३७  | १५  |
| शुले लशुनपृतम्               | "   | २६  | पृतम्                    | ३७  | १५  |
| पाण्डुरोग दाढिमायं पृतम्     | २४  | १४  | शोषे जीवन्त्यायं         | "   | २४  |
| शुभे चित्रकायं               | "   | २१  | कुष्ठे महातिकक्षं        | ३८  | ४   |
| शोके द्रुतीयं „              | २५  | ५   | वातव्याधौ दशम्-          |     |     |
| स्नेहि नृतांयं रोद्दीतकपृतम् | "   | १०  | लायं                     | "   | ११  |
| कुष्ठे गुरुलुभ्यतिकक्ष पृतम् | "   | १७  | कासे वृद्धकण्टकारीपृतम्  | ३९  | २   |
| रक्तपित्ते शोतकल्याणकं       | २६  | ८   | ज्वरे जात्यायं पृतम्     | "   | १२  |
| हिष्पाक्ष से शब्दाय          | "   | २२  | प्रवाहिकायां             |     |     |
| रसायनायं नारासेहं            | "   | २७  | ज्यूषणायं                | "   | १७  |
| विषेघूर्णं                   | "   | २७  | रक्तपित्ते कसेहकं        | "   | २२  |
| ग्रहण्यामस्तिपृतम्           | २८  | ११  | नेत्ररोगे दाक्षायं       | ४०  | २   |
| ग्रहण्यो भक्षातकायं पृतम्    | २९  | ३   | रक्तपित्ते दाढिमायं      | "   | ८   |
| लीणज्वरे विषेघ्यायां „       | "   | १२  | योनिरोगे वृहत्पञ्च-      |     |     |
| शिरोरोगे मायूरपृतम्          | "   | १५  | मूलायं                   | "   | १६  |
| तिमिरे जीवन्त्यायं पृतम्     | ३०  | १६  | अर्शसि विषेघ्यायां       | "   | २३  |
| अवस्मोर पश्चगव्यं            | "   | २२  | शिरोरोगे मायूरं          | ४१  | ९   |
| ज्वरे महापश्चगव्यं           | "   | ३१  | „ महामायूरं              | "   | १६  |
| वातरोगे विन्दुमारे           | "   | २०  | अशोरोगे अवावपु-          |     |     |
| कासे दशमूलाया                | "   | ३२  | एव्याय                   | ४२  | ५   |
| रक्तपित्ते कटुकायं पृतम्     | ३१  | १६  | अपतन्त्रके शुक-          |     |     |
| शुल्मे दधिक                  | "   | २३  | नारायं                   | "   | २४  |
| „ लशुनपृतम्                  | ३३  | २३  | उम्मादे चेतसे            | ४३  | ४   |
| „ महापद्मलं पृतम्            | ३४  | २   | क्षाणक्षते समदुग्धकं     | "   | ९   |
| उन्माद कल्याणकं              | "   | १५  | वातगुल्मे द्विरवायं      | "   | २२  |
| उन्मादे द्वितीय कल्याणकं     |     |     | तैलाधिकारो द्वितीयः ।    |     |     |
| पृतम्                        | ३५  | ५   | कुष्ठे कटुकालाबुनेलम्    | ४४  | ३   |
| „ तृतीय „ "                  | "   | १२  | „ मरीचायं तेलम्          | "   | १०  |
| „ महाकल्याणकं „              | "   | २६  | वातव्याधौ बलतिलम्        | "   | १६  |
| विषेघे महायोरे               | "   | ३६  | „ वृद्धलातेलम्           | ४५  | २२  |
| मेघादृश्यं सप्ताहं           | "   | २०  | „ तृतीय बलतिलम्          | "   | १९  |
| „ अष्टाहं „                  | "   | २५  | मूडगमेचतुर्थं „          | ४६  | २   |
| शालग्रहे फलपृतम्             | ४७  | ८   | वातव्याधौ प्रसारणतेलम्   | "   | ३४  |

| विषयाः                      | पृ. | पं. | विषयाः                        | पृ. | पं. |
|-----------------------------|-----|-----|-------------------------------|-----|-----|
| वातव्याधी द्वितीय प्रसारणी  |     |     | केशशूद्धी द्वितीय भृहराजतेलम् | ६२  | १९  |
| तैलम् ४७                    | २२  |     | केशशूद्धी तृतीय "             | "   | १९  |
| वातव्याधी तृतीय "           | ४८  | १६  | , वृद्धहाजाय तैलम्            | "   | २२  |
| वातव्याधी चतुर्थी "         | ४९  | १७  | केशरोग असनाय "                | ६३  | १९  |
| वातरके गतावरीतेलम्          | ५०  | ४   | शिरोरोगे वृद्धिन्दुतेलम्      | "   | १४  |
| वातव्याधी द्वितीय "         | "   | १६  | ,, द्विताय "                  | "   | २३  |
| ,, राश्नैलम्                | ५१  | २   | दन्तरोगे बुलाय तैलम्          | ६४  | ४   |
| ,, शताहुतेलम्               | "   | २६  | ,, नीलसदचयाय "                | "   | ५   |
| ,, मूलकैलम्                 | ५२  | ६   | मुखरोगे इरिमदाय "             | "   | १४  |
| ,, सहचरतेलम्                | "   | १६  | दन्तरोगे द्वितीयभिरिमेदाय "   | ६५  | २   |
| ,, द्विताय "                | ५३  | ५   | ,, खदिराय "                   | "   | १३  |
| ,, इयोनाकैलम्               | "   | १८  | ज्वरे यृष्टकाशादितेलम्        | "   | २६  |
| सर्वाङ्गवाते शृंधाय         |     |     | ,, लघुलाशादितेलम्             | ६६  | १५  |
| तैलम् ५४                    | १८  |     | सन्त्रियातज्वरे जात्यादि-     |     |     |
| वातरके शुग्गाक्षयके         | "   | ५५  | तेलम् "                       | ६७  | ३   |
| ,, महावयके                  | "   | ६   | ज्वरे पद्मरणं तैलम्           | "   | १४  |
| ज्वरे तुमीयं                | "   | १५  | शीघ्रे शिरोपायं               | "   | १५  |
| वातव्याधी वृद्धन्माप्तेलम्  | ५६  | ६   | ,, सुकुमारतेलम्               | ६९  | ३   |
| आहुरोगे लघुमासतेलम्         | "   | २१  | अशसि लघुकासीसायं              |     |     |
| वातव्याधी तृतीय महामाया     | "   | २६  | तेलम्                         | ७०  | २   |
| ,, दशाहैतेलम्               | ५७  | १३  | ,, पृथुकासीसायं               | "   | ५   |
| क्लहस्तम्भे देन्धवाये तैलम् | ५८  | ४   | ,, विश्रकायं                  | "   | १३  |
| वातरोगे कुपुम्भाये          | "   | ९   | कुष्ठे शिशपासारतेलम्          | "   | २०  |
| भगन्देर मागव्यायं           | "   | २०  | ,, वज्रकं तैलम्               | "   | २७  |
| ,, चित्रकायं                | "   | १   | ,, महावयक                     | ५१  | ६   |
| गण्डमालायामजमोदायं          | "   | ८   | ,, खेतकर्वीसायं               | "   | १३  |
| वातव्याधावश्वन्यायं         | "   | १५  | ,, चिन्हूरायं                 | "   | १८  |
| वातरोगे द्वितीयमध्य-        |     |     | ,, कुष्ठशालनेतं               | "   | २३  |
| गम्भायं                     | "   | ६०  | ,, कनकक्षीर्यायं              | ७१  | ९   |
| कुकुमायं मुखकाण्डं          | "   | २६  | पामायामार्दिकाय               | "   | २२  |
| वातरके चशीपृष्ठायायं        | ६१  | ६   | ददुरोगे दार्यायं सूर्योपाक-   |     |     |
| कण्ठरोगे लघुक्षातेलम्       | "   | २०  | तेलम्                         | "   | २७  |
| ,, वृहत्काशतेलम्            | ६२  | २   | कुष्ठे शुगुल्वायं तैलम्       | ७३  | ११  |
| नेत्ररोगे शृङ्गराजतेलम्     | "   | १३  |                               |     |     |

| विषयाः                     |       | पृ. | पं. | विषयाः                       |       | पृ. | पं. |  |  |
|----------------------------|-------|-----|-----|------------------------------|-------|-----|-----|--|--|
| कुषे विद्वर्ण              | तेलम् | ७३  | १६  | कुमिरोगे महावीर्ये           | तेलम् | ८८  | २.  |  |  |
| ,, महासुगन्धे              | "     | "   | २३  | अश्वशूदो गन्धवर्तीलम्        | "     | २६  |     |  |  |
| ,, मरीचार्य                | "     | ७४  | १४  | वर्णरोगे कुषार्ये तेलं       | "     | ६   |     |  |  |
| ,, अमरिकं                  | "     | "   | २६  | शिरोरोगे महानीलं             | "     | ४   |     |  |  |
| व्रणे महाक्षाराय           | "     | ७५  | १२  | कुषे विरुलार्य               | "     | १८  |     |  |  |
| बहस्मिके मनःशिलार्य        | "     | "   | २१  | मजिष्ठार्य                   | "     | ९   |     |  |  |
| गण्डगालार्या फणिज्ञक्षार्य | "     | "   | २५  | कुषे विद्वार्थक्षेलम्        | "     | ११  |     |  |  |
| ,, क्षाकादनीतेलम्          | "     | ७६  | ९   | न्यूर्णाधिकारस्तुतीयः।       |       |     |     |  |  |
| रक्तपिते मूर्चार्ये तेलम्  | "     | "   | १६  | गुम्भे हिंगवार्यं चूर्मम्    | "     | १०  | ३   |  |  |
| कुषे विशाइने               | "     | "   | १२  | शुले द्वितीयं                | "     | १६  |     |  |  |
| ,, जैवनश्यार्य             | "     | ७७  | २   | गुल्मे शार्दूलं              | "     | ११  | ४   |  |  |
| पामाशो जौरक्षार्ये तेलम्   | "     | "   | ७   | ,, नाराचके                   | "     | "   | ९   |  |  |
| कुमिरोगे विद्वार्थं        | "     | "   | १०  | ,, पूतिकार्य                 | "     | "   | १२  |  |  |
| वातरोगे गुह्यवर्तीलम्      | "     | "   | १५  | ,, हिंगवार्यं                | "     | "   | ७१  |  |  |
| ,, द्वितीयं                | "     | "   | २७  | श्वसे विजयं                  | "     | "   | १०  |  |  |
| ,, सहचरं तेलं              | "     | ७८  | १४  | वातरोगे अजमोदार्यं           | "     | १२  | ८   |  |  |
| ,, नीलसद्वरतेलम्           | "     | "   | २३  | ,, आमृत्य                    | "     | "   | २१  |  |  |
| ,, दशमूलार्ये तेलम्        | "     | ७३  | ८   | अतिसारे कपित्याष्टकं         | "     | १३  | ६   |  |  |
| भूमे गन्धनेलम्             | "     | ८०  | ८   | प्रदृष्ट्यां द्वितीयं        | "     | "   | १३  |  |  |
| वृद्धत्सद्वरतेलम्          | "     | ८१  | ५   | प्रदृष्ट्यां दाढिमाटकम्      | "     | "   | १३  |  |  |
| तरश्वार्ये तेलम्           | "     | "   | २३  | अतिसारे द्वितीयं             | "     | १४  | ३   |  |  |
| व्याघ्रेलम्                | "     | ८२  | १३  | गलरोगे एलार्यं               | "     | "   | ११  |  |  |
| वातरिनेलम्                 | "     | ८३  | ८   | अरोचके वृद्धैलार्यं          | "     | "   | १६  |  |  |
| दारणके सारिवार्ये तेलं     | "     | "   | १३  | ,, कर्पूरार्यं               | "     | "   | २५  |  |  |
| वातरोगे दशार्हं            | "     | "   | २४  | ,, रत्नलार्यं                | "     | १५  | ५०  |  |  |
| ,, कर्पूरार्ये             | "     | ८४  | १२  | गुम्भे शिलवणार्यं            | "     | "   | १३  |  |  |
| उद्देश्यादिक               | "     | "   | २०  | अरोचके सूक्ष्मैलार्यं        | "     | "   | २३  |  |  |
| कुषे अन्वासने              | "     | ८५  | ३   | ,, लवक्षार्यं                | "     | १६  | ५   |  |  |
| ,, महानीलं                 | "     | "   | १२  | ,, द्वितीयं                  | "     | "   | १८  |  |  |
| पल्लो नीलवार्यं            | "     | "   | २४  | ,, तृतीयं                    | "     | "   | १४  |  |  |
| कहशनमें द्वितीय-           |       |     |     | रक्तपिते चन्दनार्यं          | "     | १७  | ६   |  |  |
| मूर्चार्ये तेलम्           | "     | ८६  | ८   | प्रनिदृष्ट्यार्ये व्योधार्ये | "     | "   | १५  |  |  |
| अर्धासे दन्तवार्यं         | "     | "   | २५  | शोपे याढवं                   | "     | १८  | १   |  |  |

| विषयाः                          | पू. | पं. | विषयाः                   | पू. | पं. |
|---------------------------------|-----|-----|--------------------------|-----|-----|
| शोधे महापादवं चूर्णम्           | १०  | १०  | दन्तरोगे तिक्कं चूर्णम्  | १०६ | २८  |
| भरोचके दाहिमायं „               | „   | ११  | „ पीतकं                  | १०७ | ७   |
| कासे लघुतार्दीसायं „            | „   | २३  | गलरोगे कालकं             | „   | १४  |
| गुरमे शार्दूलं „                | „   | ६   | मुखरोगे द्वितीयं पीतकं   | „   | १५  |
| उदरे नारायणं „                  | „   | ११  | कासे जीवनस्यायं „        | „   | २४  |
| „ हुप्तायं „                    | „   | २७  | अतिसारे भूतिम्बायं „     | १०८ | ६   |
| „ नाराचकं „                     | „   | १०० | प्रदण्या पाठायं „        | „   | ११  |
| „ सुवर्णसमकं „                  | „   | १६  | „ नागरायं „              | „   | १५  |
| इष्टे पटोलायं „                 | १०१ | ४   | राजदहमणि सितोपलायं „     | „   | २०  |
| „ द्राक्षायं „                  | „   | ११  | योनिदेवे पुष्यासुगं „    | „   | २६  |
| आमवाते अलम्बुपायं „             | „   | १८  | पाण्डुरोगे योगराजं „     | १०९ | १२  |
| „ द्वितीयमध्य-<br>म्बुपायं „    | „   | २५  | इष्टे त्रिफलायं „        | ११० | ८   |
| कासकासे विडङ्गायं „             | १०२ | ४   | मन्दामी व्योपायं „       | „   | ८   |
| मन्दामी वडवानले „               | „   | १३  | पाण्डुरोगे खण्डसमकं „    | „   | १३  |
| „ द्वितीय „                     | „   | १६  | शोफे पाठायं „            | „   | २३  |
| प्रदण्यामिमुखं „                | „   | १९  | इष्टे वाकुचिकायं „       | „   | २७  |
| गुरमे द्वितीयमामिमुखं „         | „   | २४  | „ पृथुनिम्बपश्चकं        | १११ | ४   |
| „, वृद्धमिमुखं १०३              | ४   | ४   | „ वृद्धत्पश्चानेम्बकं „  | „   | ९   |
| अमिमान्ये वैश्वानरं चूर्णम् १०४ | ६   | ६   | मन्दामी लवणमासकर्ण       | ११२ | ८   |
| गुरमे द्वितीयं „ „              | „   | ३   | दले सामुदायं चूर्णम् „   | „   | २५  |
| „, तृतीयं „ „                   | „   | १२  | „ तुम्बर्वायं „          | ११३ | ७   |
| अमिदीस्यर्थं उवाला-<br>मुखं „   | „   | २३  | „ दिव्यवष्टकं „          | „   | १२  |
| उदावते नाराचकं „                | „   | २८  | भरोचके द्वितीये „        | „   | १५  |
| मेघापृष्ठर्थं सारस्वते „        | १०५ | ७   | मन्दामी र मटायं „        | „   | २२  |
| „ वृद्धत्सारस्वते „             | „   | १६  | सर्वाङ्गशूले चिन्मकायं „ | „   | २७  |
| अशोरिगे यवानिकायं „             | „   | २५  | मन्दामी संघवायं „        | ११४ | १२  |
| कासकासे विभीतकायं „             | १०६ | ६   | वातब्याधो सामुदायं „     | „   | १७  |
| दिक्षाशासे रेणुकायं „           | „   | ११  | रसायनार्थं नारसिंहं „    | „   | २३  |
| „, तुरस्य „ „                   | „   | १८  | अतिसारे गङ्गाधरं „       | ११५ | १   |
| तमक्खाये शक्यायं „              | „   | २३  | गुरमे कटुत्रिकायं „      | „   | २६  |

| विषयः                         | पु. | ६.  | विषयः                      | पु. | ६.  |
|-------------------------------|-----|-----|----------------------------|-----|-----|
| पाण्डुरोगे किराततिकार्य       |     |     | प्रदृश्या पदामृतरुदः       | १२३ | २६  |
| चूर्णम्                       | ११७ | ४   | मन्दामौ पञ्चष्वर्म चूर्णम् | १२४ | ८   |
| तुषादी खण्डसमे „              | „   | १२  | छर्या वदयां                | „   | १३  |
| कुटे पाकुदयां „               | „   | २४  | उदेरे नवधारकं „            | „   | २०  |
| उदेरे भस्मार्कचूर्णम् „       | ११८ | १४  | मन्दामावजमोदादी „          | „   | २५  |
| अर्शसि पूतीकरणां „            | ११९ | १०  | दन्तरेगे जातीकलायां „      | „   | २०  |
| गुल्मे यवधाराय „              | „   | १५  | स्त्रो जातीकलायां „        | २२५ | ४   |
| उवरातिसरे व्योपायां „         | „   | २०  | प्रश्न्या दादिमायां „      | „   | १४  |
| शोफे हृष्णायां „              | १२० | २   | मन्दामाशमलक्षणादि „        | „   | २५  |
| भासाहृदोगयोहित्पवरकं „        | „   | ७   | छोरोगे मेयिकायां „         | „   | २१  |
| शोपेतिकायां „                 | „   | १०  | क्षमतृदी सामयोगः „         | १२६ | ८   |
| वर्धमेत्रे विल्वमूलायां „     | „   | १२  | क्षय आभायां „              | „   | २४  |
| सर्वमेत्रेविन्द्यवायां „      | „   | १८  | प्रिप्लयायां „             | १२७ | ७   |
| श्वरे शर्करायां „             | „   | २१  | मन्दामी हचकायां „          | „   | १५  |
| आनादे द्विरुद्धतरे            |     |     | „ धिदणचूर्णम्              | „   | २२  |
| हित्पवायां „                  | „   | २६  | अर्शसि सूरणायां चूर्णम्    | „   | २७  |
| पानीवरहायायां                 |     |     | वातरेगे हरीतकीयोगः         | १२८ | ४   |
| मुस्तायां „                   | „   | २९  | निदधी भूनिष्ठाय चूर्णम्    | „   | ८   |
| मन्दामौ शतपुण्याय „           | १२१ | ३   | घ्येरे किराततिकार्य „      | „   | १६  |
| गुल्मे नारायणं „              | „   | १२  | कासे दुरालभायां „          | „   | २३  |
| „ इत्युपगायां „               | „   | २०  | प्रहृष्या पिण्डी-          |     |     |
| मन्दामौ सेन्धवायां „          | „   | २५  | मूलायां „                  | „   | १२६ |
| आमातीसोरि पिण्ड-<br>दयायां „  | „   | १२२ | प्रहृष्यो कुडेरकायां „     | १२९ | २   |
| पीतरो चब्यायां „              | „   | ९   | शोके अयोरजधूर्णम्          | „   | १५  |
| क्षेत्रेऽनमोदादिभस्मचूर्णम्   | „   | ४१  | किराततिकारादलोह „          | १३० | ११  |
| दाहरोगे द्राक्षादिचूर्णम् „   | „   | २३  | प्रवाहिकायां कुड-          |     |     |
| पाण्डुरोगे नवायसे चूर्णम् १२३ | २   |     | जायां „                    | „   | १८  |
| राजयक्षमणि द्वितीयं           |     |     | गुल्मे समश्वरे „           | „   | २३  |
| वृद्धमवायसं „                 | „   | ६   | शोपे निलायां „             | „   | २८  |
| मन्दामौ गुण्डायां चूर्णम् „   | „   | १२  | मन्दामौ आमलकायां „         | १३१ | ३   |
| हृद्रोगे तिक्कक „             | „   | १५  | „ सौवर्चिकायां „           | „   | ८   |
| लौकुम्भशायां „                | „   | २१  | „ आमिचूर्णम् „             | „   | १२  |
|                               |     |     | „ सिंहणचूर्णम् „           | „   | १६  |

| विषयाः                  | पृ. | पं. | विषयाः                 | पृ. | पं. |
|-------------------------|-----|-----|------------------------|-----|-----|
| गुटिकाघिकारश्चतुर्थः ।  |     |     | कुषे विषयुटिका         | १४३ | २   |
| अमिमान्येऽभयाया         |     |     | , लाहूलीशुटिका         | "   | ३   |
| गुटिका                  | १३३ | ३   | कण्ड्रां त्रिजातयुटिका | "   | १८  |
| अर्शसि काकायनवटकः       | "   | १६  | सुखरोगे खदिगुटिका      | "   | २३  |
| गुम्भे काकायनगुटिका     | "   | २६  | , द्वितीया             | १४४ | १४  |
| , निकुम्भाया गुटिका     | १३३ | १५  | , तृतीया               | "   | २०  |
| विद्वन्धेऽभयावटकः       | "   | १२  | गलरोगे मरीचाया गुटिका  | "   | २५  |
| पाण्डुरोगे पञ्चगुटिका   | १३४ | ८   | , रिष्पस्याया          | १४५ | २   |
| शूले शम्बूद्याया गुटिका | "   | २७  | कफरोगे वरेननाभाया      | "   | ७   |
| अमिमान्ये कल्याणवटकः    | १३५ | ८   | विकटक्षया गुटिका       | "   | १२  |
| क्षतक्षीणे एलाया गुटिका | "   | २१  | शासे भाङ्गर्याया       | "   | १७  |
| , सर्पिर्णुटिका         | १३६ | २   | ज्वरे श्रिष्टायो मोदकः | "   | २०  |
| पाण्डुरोगे मण्ड्रवटकः   | "   | १५  | हृषायां कमिलायो        | "   | २३  |
| , द्वितीयो              | "   | २५  | पार्श्वशूले त्रिपलायो  | "   | २७  |
| घोषे क्षारगुटिका        | १३७ | ८   | ज्वरे सप्तलायो         | १४६ | ४   |
| कुषे विड्हसाराया गुटिका | "   | १६  | अम्भे कृष्णाया गुटिका  | "   | १३  |
| , माणिमदवटकः            | "   | २३  | ज्वरातिसारे कटुक्षया   |     |     |
| अर्शसि सूरजवटकः         | १३८ | २   | वटकः                   | "   | १६  |
| , लघुसूरजवटिका          | "   | १९  | प्लीहोदरे रोहितकवटकः   | "   | २३  |
| , मरीचाया गुटिका        | "   | २२  | युडपारविधिः            | १४७ | २   |
| अर्शसि कलिङ्गाया गुटिका | "   | २७  | धातुक्षये महाकल्याणको  |     |     |
| गुले गुडवटकः            | १३९ | २   | गुडः                   | "   | १   |
| अतिसारेऽभयाया वटकः      | "   | ५   | महायां कल्याणको        | १४८ | २   |
| सर्वतिसारेऽद्वौलवटिका   | "   | ८   | , यवान्याया गुटिका     | "   | ८   |
| , पृहंदकेलवटिका         | "   | १४  | प्रमेहे चन्द्रप्रभा    | "   | १५  |
| अतिसारे कटुक्षया गुटिका | "   | २१  | वित्ते कल्याणका        | १४९ | ४   |
| प्रदृष्ट्यो चित्रकाया   | १४० | १०  | अर्शसि प्राणदा         | "   | १३  |
| , सारगुटिका             | "   | १५  | अमिमान्ये वातीकगुटिका  | १५० | ६   |
| , तालिसाया गुटिका       | "   | २६  | पाण्डुरोगेऽभयायो मोदकः | "   | १२  |
| क्षयरोगे मरीचादिवटिका   | १४१ | १४  | गुलेऽभयाया वटकः        | "   | २४  |
| लवक्षया गुटिका          | "   | २०  | विसूचिकायो जीरकाया     |     |     |
| कुषे हृषरास्तिवटकः      | १४२ | ३   | गुटिका                 | १५१ | ८   |
| , खदिगुटिका             | "   | १५  | वृहदिष्ठिवगुटिका       | "   | १३  |

| विषयः                        | पृ. | वं. | विषयः                   | पृ. | वं. |
|------------------------------|-----|-----|-------------------------|-----|-----|
| पाण्डुरोगे लगुडिव-           |     |     | गण्डमालायामष्टव्यवारिश- |     |     |
| गुटिका                       | १५१ | ८   | तंडा गुग्गुलगुटिका      | १६५ | १२  |
| कुषे प्रसादगुटिका            | "   | २१  | भगवन्दरे अमृताया गुटिका | १६६ | ३   |
| विषे संपेशया गुटिका          | १५४ | १९  | शोफे गुदार्दकगुटेका     | "   | ६   |
| भूतदेहि तिदार्थे-            |     |     | गुर्जे आरोग्यवलवय-      | "   | ११  |
| काया                         | "   | १५५ | गण्डमालायां काँडचनार-   |     |     |
| शोयेऽस्त्वयवटका:             | "   | १७  | गुग्गुलः                | १६७ | ६   |
| पाण्डुरोगे पुननवामग्न्हरः    | १५६ | १८  | काँडचनगुटिका            | "   | १८  |
| वातव्याधी रसोनपिण्डः         | "   | २६  | दातडीने सर्विंगुटिका    | "   | २५  |
| वातव्याधी पृथुलगुणविण्डः     | १५७ | १३  | „ शीरादिरेह-            |     |     |
| „ व्योगाया गुटिका            | १५८ | १   | गुटिका                  | १६८ | ३   |
| कुषे स्वायम्भुवे गुग्गुलः    | "   | ११  | हर्वरोगे प्रसादवतीवटिका | "   | २४  |
| „ उत्सविशतिका                |     |     | वातरोगे अमिमुख रयी      | १६९ | २   |
| गुग्गुलगुटिका                | "   | ११  | कासादी सूर्यचन्दप्रभा   |     |     |
| रासायो गुग्गुलः              | १५९ | १३  | गुटिका                  |     | ११  |
| वामवाते द्वाग्रिंशका         |     |     | अतिगारे विशल्या         |     |     |
| गुग्गुलगुटिका                | "   | १६  | गुटिका                  | १७० | ११  |
| पातव्याधी विलायो             |     |     | वातरोगे त्रोटहरी        | "   | २३  |
| गुग्गुलः                     | १६० | ५   | कासे चन्द्रपिण्डा       | १७१ | ४   |
| अर्द्धसि योगराजो गुग्गुलः    | "   | १३  | मुखरोगे खादिगुणी        | "   | ८   |
| नाईब्रगे त्रिफलायो           | "   | १६१ | „ द्रितीया              | "   | १८  |
| प्रमेहे गोक्षुरगुग्गुलगुटिका | "   | ६   | वातरोगे त्वयेलया गुटिका | १७२ | २   |
| वातगुग्गमयावातरक्तयोः        |     |     | रसायनाये विजया          |     |     |
| वैशोरको गुग्गुलः             | "   | १३  | गुटिका                  | "   | ५   |
| वातरोगे त्रिफलायो            | "   | १६२ | वातरोगे योगोत्तमा       |     |     |
| गृध्रस्थी कंसाहयो गुग्गुलः   | "   | १७  | गुटिका                  | १७३ | ४   |
| गण्डमालायां त्रिफलाया        |     |     | प्रमेहे कर्पूरादिगुटिका | "   | २६  |
| गुग्गुलगुटिका                | १६३ | ३   | गुरुमे गुडवटकाः         | १७४ | ६   |
| वातरके वृद्धत्वायमसुव-       |     |     | पाण्डुरोगे लारवटकाः     | "   | ९   |
| गुग्गुलः                     | "   | १८  | कुषे पद्यावटकाः         | १७५ | २   |
| वासे उत्सवत्वारिशतिका        |     |     | ज्वरे फलत्रिकायो        |     |     |
| गुग्गुलगुटिका                | १६४ | ६   | मोदकः                   | "   | ११  |
| वातरके कन्यदिका              | "   | २२  |                         |     |     |

| विषयः                                 | पं. | पं. | विषयः                              | पं. | पं. |
|---------------------------------------|-----|-----|------------------------------------|-----|-----|
| जाप्तन् विचक्षणः                      |     |     | सुन्दरान् विमोक्षावलेहः १८८        | ३   |     |
| द्वाका: १७५                           | १५  |     | स्वेच्छावासीनवलेहः " ६             |     |     |
| सहौ लज्जादो वेदकः १७६                 | ३   |     | " विनीयः " " १६                    |     |     |
| जयदग्नि विचक्षणः                      |     |     | विद्युत्तिक्षणलेहः १८८             | १०  |     |
| शुटिका                                | २०  |     | विश्वासीक्षणलेहः १८८               | ६   |     |
| शर्णसि विचक्षणिका                     |     | १४  | उत्तमे द्वितीयवलेहः " १८           |     |     |
| मेह वामदेवन कर्णिता                   |     |     | कर्णे व्याप्रीहृष्टवलेहः १८८       | ६   |     |
| शुटिका                                | १७  | ३०  | सर्वदास्त्रित्वलेहः " " १४         |     |     |
| जायायुगुणुगुटिका                      | ११  | २६  | प्रीत्यादृत्यावलेहः " १४           |     |     |
| शोफ लघुत्रिकलागुणुगु-                 |     |     | शोषे पुनर्विद्यावल-                |     |     |
| गुटिका १७७                            | ६   |     | विद्युत्तिक्षणलेहः १८८             | ३   |     |
| वातव्यधौ पूर्णिमायाः                  |     |     | " कंपदृष्टतिक्षणलेहः " १४          |     |     |
| गुणुगुणुगुटिका "                      | १   |     | " हर्यतिक्षणलेहः " १४              |     |     |
| गुलमे श्रित्याया                      |     |     | अर्द्धःपीत्यावलेहः                 |     |     |
| शुटिका "                              | २३  |     | हर्यतिक्षणलेहः " १४                |     |     |
| अमरेष रथाया " १४८                     | ७   |     | मन्दामी द्वितीयविव्रह-             |     |     |
| लेहाधिकारः पश्यमः १                   |     |     | दीनक्षणलेहः १८९                    | १   |     |
| अर्द्धसि रथावलेहः १७८                 | २   |     | हर्यमेह वामदक्षणलेहः १९०           | ३   |     |
| ,, चित्रकावलेहः १७९                   | २   |     | वामगार्यां विद्युत्तिक्षणलेहः " १५ |     |     |
| ,, द्वितीयः " "                       | १४  |     | शोषे हर्यतिक्षणलेहः " १५           |     |     |
| रक्षपिते कूष्माण्डावलेहः "            | २३  |     | अर्द्धसि कृष्णावलेहः " १५          |     |     |
| रक्षपिते खण्डकूष्माण्डा-<br>वलेहः १८० | ८   |     | " द्वितीयः " "                     |     |     |
| अर्द्धसि साग्रहसूर्णावलेहः "          | ३   |     | ,, कृष्णावलेहः " १५                |     |     |
| शोषे गुड्हकूष्माण्डावलेहः "           | १६  |     | प्रीत्यावलेहः १५                   |     |     |
| शोषे एलायवलेहः १८१                    | ५   |     | शोषे कृष्णावलेहः " १५              |     |     |
| अर्द्धसि भजातकावलेहः "                | १   |     | शोषे द्वितीयविव्रह-                |     |     |
| प्रदृष्टयो कल्याणको                   |     |     | लेहः " १५                          |     |     |
| गुड्हावलेहः १८२                       | ३   |     | नद्यावलेहः १५                      | १२  |     |
| वायं पश्यजीरकावलेहः "                 | १४  |     | द्वितीयविव्रह-                     | १५  |     |
| योनिरेषे "                            | ११  |     | अप्यावलेहः १५                      | १५  |     |
| अर्द्धसि वाहृशालो                     |     |     | कृष्णावलेहः " १५                   |     |     |
| गुड्हावलेहः १८३                       | ११  |     | खण्डकूष्माण्डावलेहः " १५           |     |     |

| विषया.                       | पु. | पं. | विषया:                       | पु. | पं. |
|------------------------------|-----|-----|------------------------------|-----|-----|
| रक्षिते सण्डगायोऽ-           |     |     | पर्दिंशतिः फलासवाः           | २२१ | ५   |
| लहः                          | ११६ | १०  | एकादश मूलासवाः               | "   | १२  |
| ,, द्वितीयो शासवलेहः         | ११७ | १४  | विंशतिः सारासवाः             | "   | १६  |
| शासवासयोर्भव्युदाय-          |     |     | दश पुष्टासवाः                | "   | २१  |
| लः                           | "   | २३  | चत्वारः काष्ठासवाः           | "   | २५  |
| ,, कुलाध्युदायलेहः           | ११८ | ८   | द्वी पश्चासवी                | "   | २७  |
| ,, पिपलीगुडायलेहः            | "   | १७  | चत्वारस्त्रिगासवाः           | "   | २९  |
| अतीपरे कुट्टायलेहः           | "   | २२  | शशीसवः                       | २१३ | २   |
| ,, द्वितीयः                  | "   | ११९ | आसवानो विष्वस्त्रिकार-       |     |     |
| आशंसु "                      | "   | २०  | गुणाः                        | "   | ४   |
| जराया व्यवनशायलेहः           | २०० | २   | वातव्यधी विद्वासवः           | "   | १४  |
| ,, प्राण्डरसायनायलेहः        | २०१ | ३   | प्रमेहे रोग्यासवः            | "   | १६  |
| क्षतक्षिणेऽसृतशाश्वलेहः      | २०२ | १०  | प्रमेहे देवदारीसवः           | २१३ | ८   |
| छपुव्यवनशायाऽवलेहः           | "   | २६  | उष्टे कनशारिष्ठः             | "   | २२  |
| शोषेऽसृतशोऽवलेहः             | २०३ | १२  | अर्शसि द्वितीयः,,            | २१४ | ५   |
| शोषे गिर्भस्थायोऽवलेहः       | २०४ | ३   | प्रदृशो दुरातभारिष्ठः        | २१५ | २   |
| ,, द्वितीयः                  | "   | १५  | अर्शसि दन्तवरिष्ठः           | "   | ११  |
| क्षये रपाद्वरीतस्यवलेहः      | "   | २७  | " अभयारिष्ठः                 | "   | २०  |
| जीर्जेऽपरे लक्ष्माद्वकायलेहः | २०५ | ६   | प्रदृशो द्वितीयो,,           | २१६ | ५   |
| अतिसारेऽद्वंश्यमूलायलेहः     | "   | १५  | प्रमेहे तृतीयो,,             | "   | १४  |
| अर्शसि भक्षातकायलेहः         | "   | २४  | पाण्डुयोगे मण्डरारिष्ठः      | "   | २४  |
| अतिसारे कुट्टायकायलेहः       | २०६ | २५  | क्षययोगे विष्वस्त्रियरिष्ठः  | २१७ | ५   |
| शातुक्षये भवुक्षामलकी        | २०७ | ८   | शोफेऽष्टशतारिष्ठः            | "   | १५  |
| स्वरभैरु कुलिङ्गनायोऽव-      |     |     | अर्शसि तकारिष्ठः             | "   | २०  |
| लेहः                         | "   | २०  | अरोचेक लघुयुक्तसन्धा-        |     |     |
| वासे माग्यीयवलेहः            | २०८ | ६   | नम्                          | २१८ | ३   |
| हृदेण चन्दनायवलहः            | "   | १४  | मन्दामी वृद्धश्चुक्तसन्धानम् | "   | ८   |
| शुक्तश्चये गोभुरायवलेहः      | "   | २३  | ,, लवद्व्यासवः               | "   | १३  |
| आसवाधिकारः पष्टः।            |     |     | हीहे रोहीतकासवः              | २१९ | २   |
| खदरे कुमार्यासिवः            | २०९ | ९   | अर्शसु गणिडक्षद्वेषः         | "   | ८   |
| गुन्मे द्वितीयः,,            | २१० | १३  | उष्टे खदियसवः                | "   | १०  |
| नवविधा आसवयोनिः              | "   | २४  | ,, द्वितीयः खदिरारिष्ठः      | २२० | ५   |
| वद्व्यान्यसिवाः              | २११ | २   | क्षययोगे वद्व्यासवः          | "   | १४  |

| विषयः                       | पु. | पं. | विषयः                  | पु. | पं. |
|-----------------------------|-----|-----|------------------------|-----|-----|
| “ उद्दरमूलासवः              | २२० | २२  | धातुक्षये द्वीतक्यासवः | २२८ | २६  |
| “ माचिकासवः                 | २२१ | “   | दद्री आवर्तक्यासवः     | २३० | ४   |
| शोके पुनर्नवासवः            | “   | १८  | क्षये दशमूलासवः        | “   | ९   |
| “ त्रिफलारिष्टः             | २२२ | २   | राजयहमणि खर्जूरासवः    | २३१ | ११  |
| सुवर्णोके वासकासवः          | “   | ६   | प्रदृष्ट्यां मस्तवासवः | २३२ | ९   |
| अर्शस्मु शर्करासवः          | “   | १४  | ज्वरे कुबजकासवः        | २३३ | २३  |
| प्रहृष्ट्यां द्राक्षासवः    | २४  |     | धातुक्षये नालिकेरासवः  | २३३ | ६   |
| अर्शस्मि द्विनीयो “         | २२३ | १२  | “ कूभ्याग्नासवः        | “   | १८  |
| प्रहृष्ट्यां चीजकासवः       | २४  |     | “ रसायनारिष्टः         | २३४ | १८  |
| अर्शस्मि पोत्वासवः          | २२४ | ७   | ज्वरे धान्यकाशयरिष्टः  | २३५ | ९   |
| रक्तपित्ते उशीरासवः         | “   | १६  | धातुक्षये लवह्नासवः    | “   | १८  |
| व्यासकासयोग्यायमाणा-<br>सवः | “   | २७  | विद्रृष्टी वदणासवः     | २३६ | १०  |
| गुरमे चविकासवः              | २२५ | १०  | स्त्रीहरोगे चेहीतकासवः | २३७ | १०  |
| प्रहृष्ट्यां मूलासवः        | “   | २५  | शोषादौ गण्डीरासवः      | “   | २२  |
| क्षयरोगे वृद्धमूलासवः       | २२६ | ७   | स्त्रीहरोगे चेहीतकासवः | २३८ | १९  |
| धातुक्षये मृद्गराजासवः      | “   | २६  | क्षये योगरोजासवः       | “   | २६  |
| मगन्दे गुरगुच्छासवः         | २२७ | ८   | अर्शारोगे पोत्वासवः    | २३९ | २२  |
| अर्शस्मु ताम्बूलासवः        | “   | २६  | प्रभेहे मस्तवासवः      | २४० | २   |
| अपस्मारे पठ्यमूत्रासवः      | २२८ | १७  | पाण्डुरोगे लोद्वासवः   | “   | ९   |



श्रीशोदलविरचितो

## गदनिग्रहः ।

अथ प्रयोगखण्डः प्रथमः ।

मङ्गलाचरणम् ।

करकिशलयसङ्गी यस्य पीयुपकुम्भः  
परमपरवधूनां भूयसे मङ्गलाय ।  
स खलु निखिलदुग्धाम्भोधिरलेपु रत्नं  
हरतु दुरितराशीनाथु धन्वन्तरिर्वः ॥ १ ॥  
त्रिभुवनजनरोगग्रामसंग्रामजेता॒-  
मृतभृतधृतकुम्भोद्दीर्णहस्तायुधश्रीः ।  
अमरमधितदुग्धाम्भोधिलब्धोदयोऽसौ  
दंलयतु दुरितांपानादवैवाधिषो वः ॥ २ ॥  
नानामुनिकृतैः श्लोकैः शोदलेनाल्पवुद्धिना ।  
विवुधप्रतिवोधाय ग्रथ्यते गदनिग्रहः ॥ ३ ॥

ग्रन्थानुक्रमणिका

घृतं तैलं च चूर्णानि गुटीलहाँ तथाऽसवाः ।  
आदावेते द्वनेकार्थी ग्रन्थेऽस्मिन् गदनिग्रहे ॥ ४ ॥  
ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चाशोऽजीर्ण विमूचिका ।  
अलसश्च विलम्बी च कृमिरुक् पाण्डुकामले ॥ ५ ॥  
हलीपकमस्त्रूपितं राजयक्ष्योरसः क्षतम् ।  
कासो हिक्का सह श्वासः स्वरभेदस्वरोचकः ॥ ६ ॥  
छद्मिस्त्रूप्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानान्मदात्ययः ।  
दाहो वातविकाराश्च वातरक्तोरुरुह तथा ॥ ७ ॥

१ '० कुम्भोद्दीर्ण०' इति पा० १२ 'विद्वतु' इति पा० १

आदरामस्ताणा शून्यं शून्यं च परिज्ञामनम् ।  
 असीत्तपमयानाद उदारतोऽथ शून्यमस्त् ॥ ८ ॥  
 हृष्टेगां मृश्वरूपं च मृश्वयानस्ताणाऽप्यर्थां ।  
 प्रपेहो मापुमेत्य विदिषाप शैदात्माः ॥ ९ ॥  
 देवोदोषोदारं ज्ञानं रिद्धिर्द्विरेत च ।  
 शुणे चिष्ठे शीतिपित्तमुद्देः क्षोड एव च ॥ १० ॥  
 अस्त्रविसं निमर्पय विमहोटोऽथ दमूरिका ।  
 इति चायगिरिस्ताणामया रोगाः पर्वीर्णिताः ॥ ११ ॥  
 शान्ताश्च दिग्गां रोगाः शून्यं त्रायमयास्तथा ।  
 नामामुरामपार्बत द्रित्याग्नेऽप्ते चिदितिताः ॥ १२ ॥  
 गण्डमालाऽपर्वी गद्दः पितिशापृद्ग्रन्थयः ।  
 श्रीपदे वृषभोपाप भयोवज्ञचिरितितम् ॥ १३ ॥  
 भप्रनार्दीपर्णो चित्र भगव्युत्तोषदेवर्णो ।  
 शूद्रेणाः शूद्रेणाः जन्ये चाहे चित्रितिताः ॥ १४ ॥  
 भूतोन्यादस्त्वांन्यादस्त्वाऽप्यस्त्वार एव च ।  
 भूततंत्र शूद्रेऽप्ते चानिदानार्थिकित्तिताः ॥ १५ ॥  
 पद्मो योनिव्याप्त गर्भमाशचिरितितम् ।  
 शूद्रगभोऽथ वन्ध्या च योनिशृग्गदास्तथा ॥ १६ ॥  
 शृतिका भन्नदोषापाथ गाढनिलोमोपजम् ।  
 घालरोगचितित्वा च यान्तनत्तेऽथ पश्येम ॥ १७ ॥  
 सर्पशूद्राविषे चित्र शृग्गदास्तु न चित्रम् ।  
 नस्तदलविषं चित्र योजुरं कृशिमं विषम् ॥ १८ ॥  
 पष्टे त्वाहे विपाल्ये च शोकं चिपो चिरितितम् ।  
 रसायनं रसमं च यानीकरणमष्टमम् ॥ १९ ॥  
 पश्यकर्माधिकारे च लोहस्वेदविधिस्तथा ।  
 वमनं च विरक्त्य नस्यकर्मेत्यनुक्रमः ॥ २० ॥

अथातः प्रथमो घृताधिकारः प्रारम्भते ॥  
ज्वरे मञ्जिष्ठाद्यं घृतम् ।

मञ्जिष्ठाऽतिविपा पथ्या वचा शुण्डी च रोहिणी ॥ १ ॥  
देवदारु हरिद्रा च द्रोणेऽपां पलिकान् पचेत् ।  
काथेऽस्मिन् साधयेत् पिण्डैर्घृतप्रस्थं पिचून्नितैः ॥ २ ॥  
शृङ्गवेरकणाहिङ्गुदिक्षारपटपञ्चकैः ।  
तत्काषायृतसबोत्थज्वरिणाममृतोपमम् ॥ ३ ॥  
वर्धमगुलमानिलश्वासकासपाण्डविकारिणाम् ।  
गलग्रन्थिप्रमेहार्शः पुष्टीहापस्मारगोफिनाम् ॥ ४ ॥  
उदावर्तपरीतानां मन्दाद्यिकृमिकुण्डिनाम् ।  
द्वितीयं मञ्जिष्ठाद्यं घृतम् ।

मञ्जिष्ठा द्वे हरिद्रे च देवदारु हरीतकी ॥ ५ ॥  
नागरातिविपे चैव वचा कडुकरोहिणी ।  
हिंग्वेत्तरक्षमात्रैस्तु घृतप्रस्थं प्रसाधयेत् ॥ ६ ॥  
एतन्माञ्जिष्ठकं सार्पिर्घून् रोगान्नियच्छति ।  
हिंकां श्वासं ज्वरं दुष्टं ग्रहणां पाण्डुरोगताम् ॥ ७ ॥  
प्रमेहान्मधुप्रेहार्शं कृमीन् कुष्ठमरोचकम् ।  
कासं शोपमुदावर्तप्रस्मारं तथैव च ॥ ८ ॥  
पुष्टीहानं गण्डमालां च हार्शासि इवयथुं तथा ।  
ज्वरे तिल्वकाद्यं घृतम् ।

तिल्वकस्य पलान्यष्टीं त्रिवृन्मूलत्वचस्तथा ॥ ९ ॥  
अंशमत्युखूकं च विल्वाद्यं च पृथक् पलम् ।  
यवकोलकुलत्यानां प्रस्थं प्रस्थं फलत्रिकात् ॥ १० ॥  
तत्साधयेजलद्रोणे चाण्डभागादेशेपितम् ।  
घृतप्रस्थं पचेत्तेन दक्ष्वा दध्नस्तथाऽङ्गकम् ॥ ११ ॥  
कर्पेण यावश्यकस्य पक्कं तदवचूर्णयेत् ।  
एतत्तु तैल्वकं नाम जीर्णज्वरविपापहम् ॥ १२ ॥

कृमिकुष्ठहरं चैव शोफपाण्डामयापहम् ।

जीर्णज्वरे हारीतात्कुरु षुभम् ।

त्रिफलां पञ्चमूल्यां द्वे कुलत्थान् वदरान् यवान् ॥ १३ ॥

द्विपलांस्तु जलद्रोणे त्वष्टुभागावशेषपितम् ।

निःस्वाव्य विपचेन्कल्कं दत्त्वा प्रस्थं च सर्पिंपः ॥ १४ ॥

पिष्पली पिष्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।

पुष्करतिविषे भारी शटी मधुच्छदो वचा ॥ १५ ॥

रजन्यां नक्तमालथं पाठे द्वे शिशुतुम्बरू ।

सोमवल्कोऽक्षमूलानि मदनं कदुरोहिणी ॥ १६ ॥

तेजस्विनी सगोजिहा चन्दनं कण्टकारिका ।

किराततिक्तकं मुस्तं पदोन्मं सदुरालभम् ॥ १७ ॥

वयःस्था पिञ्चुमन्दथं कदुकं हिङ्गुना सह ।

एतानक्षसमान् दत्त्वा क्षारां द्वार्धपलोन्मितौ ॥ १८ ॥

लवणानां च पश्चानां कर्पे कर्पे प्रदापयेत् ।

सिद्धं तन्मात्रया पीतं सर्वजीर्णज्वरापहम् ॥ १९ ॥

हृत्प्रीहग्रहणीदोपश्चासकासार्शसां हितम् ।

शुल्मंश्च कदुकं नाम कृष्णोव्रेयेण पूजितम् ॥ २० ॥

दीर्घकालप्रसक्तानां ज्वराणाममृतोपमम् ।

अमिमान्ये अमिष्टतम् ।

शतं पलानि भद्राताज्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २१ ॥

चतुर्भागावशेषं तु कपायमवतारयेत् ।

ऋूपणं पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पलीम् ॥ २२ ॥

हिङ्गुचव्याजमोदं च पश्चैव लवणानि च ।

द्वौ क्षारां हपुषां चात्र दद्यां दर्धपलोन्मितम् ॥ २३ ॥

मस्त्वम्लरसचुक्राणां प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ।

शुद्धवेररसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४ ॥

एतदग्निघृतं नाम मन्दामीनां प्रशस्यते ।

अशीसि वातरोगं च पूर्णिहोदरजलोदरे ॥ २५ ॥

ग्रन्थ्यर्वुदापचीशोफकुष्मेदोऽनिलांस्तथा ।

ये च कुक्षिगता रोगा ये च वस्तिसमाभिताः ॥ २६ ॥

तान् सर्वान्नाशयत्येतत्मूर्यस्तम् इवोदितः ।

ग्रहण्यां चाङ्गेरीघृतम् ।

पिष्पली नागरं पाठा यवानी विश्वभेषजम् ॥ २७ ॥

भागांक्षिपलिकान् कृत्वा कपायमुपकल्पयेत् ।

भागी च पिष्पलीमूलं व्योर्यं चब्यं सचिवकम् ॥ २८ ॥

ध्वंषा पिष्पली धान्यं विलवं पाठा यवानिका ।

एतैः पलार्धकेद्रव्यैः कृत्वा कल्कं विपाचयेत् ॥ २९ ॥

पलानि सर्पिपस्तस्मिन् चत्वारिंशत्समावपेत् ।

चतुर्गुणेन दध्ना च चाङ्गेरीस्वरसेन च ।

मुद्रग्निना ततः साध्यं सिद्धं सर्पिनिधापयेत् ॥ ३० ॥

ग्रहण्यशेषोविकारध्नं गुलमहृदोग्नाशनम् ।

शोफपूर्णिहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्ज्वरापहम् ॥ ३१ ॥

कासहिकाखचिभासमूदनं सर्वगुलमनुत् ।

अमिवेशात् गुदधृत्ये द्वितीर्यं चाङ्गेरीघृतम् ।

नागरं पिष्पलीमूलं चिवको हस्तिपिष्पली ॥ ३२ ॥

ध्वंषा पिष्पली धान्यं विलवं पाठा यवानिका ।

चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः कल्करेपां विपाचयेत् ॥ ३३ ॥

चतुर्गुणेन दध्ना तु तदृतं कफवात्तुत् ।

अशीसि ग्रहणीरोगं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ ३४ ॥

गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद्यपोहति ।

गुलमे दाधिकं धृतम् ।

विडदाडिमसिन्धूत्यहुतभुव्योपजीरकैः ॥ ३५ ॥

हिङ्गसौवर्चलक्षाररुग्नक्षाम्लाम्लवेतसैः ।

वीजपूररसोपेतं सर्पिर्दधि चतुर्गुणम् ॥ ३६ ॥

कृमिकुष्ठहरं च शोफपाण्डामयापहम् ।  
जीर्णवे हारोत्तरकटुकं पृथम् ।

त्रिफलां पञ्चमूल्यां द्वे कुलत्यान् वदरान् यवान् ॥ १३ ॥

द्विपलांस्तु जलद्रोणे त्वष्टभागावशेषितम् ।

निःसाध्य विपचेत्कलं दत्त्वा प्रस्थं च सर्पिषः ॥ १४ ॥

पिष्पली पिष्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।

पुष्करतिविषे भार्गो शटी समच्छदो वचा ॥ १५ ॥

रजन्यौ नक्तमालश्च पाठे द्वे शिखुतुम्बरू ।

सोमवल्कोऽर्कमूलानि मदनं कटुरोहिणी ॥ १६ ॥

तेजस्विनी सगोमिहा चन्दनं कण्टकारिका ।

किरातविक्कं मुस्तं पद्मोलं सदुरालभम् ॥ १७ ॥

वयःस्था पिञ्चुमन्दश्च कटुकं हिङ्गुना सह ।

एतानक्षसपान् दत्त्वा क्षारौ धृष्टपलोनिमत्ता ॥ १८ ॥

लवणानां च पद्मानां कर्पे कर्पे प्रदापेत् ।

सिद्धं तन्मात्रया पीतं सर्वजीर्णज्वरापहम् ॥ १९ ॥

हृत्यीहग्रहणीदोपभासकासार्शसां हितम् ।

गुलमध्ने कटुकं नाम कृष्णोत्रेयेण पूजितम् ॥ २० ॥

दीर्घकालप्रसक्तानां ज्वराणामगृतोपमम् ।

अग्रिमान्ये अग्रिपृतम् ।

थतं पलानि भद्राताज्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २१ ॥

चतुर्भागावशेषं तु कपायमवतारयेत् ।

त्र्यूपणं पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पलीम् ॥ २२ ॥

हिङ्गुचव्याजमोदं च पञ्चव लवणानि च ।

द्वौ क्षारौ हपुपां चात्र दद्याद्धृष्टपलोनिमतम् ॥ २३ ॥

मस्त्वम्लरसञ्चुकाणां प्रस्थं प्रस्थं प्रदापेत् ।

शृङ्गवेररसप्रस्थं धृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४ ॥

एतदग्रिपृतं नाम मन्दाग्रीनां प्रशस्यते ।

अशीसि वातरोगं च प्रीहोदरजलोदरे ॥ २५ ॥  
 ग्रन्थ्यरुदापचीशोफकुष्मेदोऽनिलांस्तथा ।  
 ये च कुक्षिगता रोगा ये च वस्तिसमाश्रिताः ॥ २६ ॥  
 तान् सर्वान्नाशयत्येतत्सूर्यस्तम इवोदितः ।  
 प्रहण्यां चाङ्गोरीषृतम् ।

पिष्पली नागरं पाठा यवानी विश्वभेषजम् ॥ २७ ॥  
 भागांस्त्रिपिलिकान् कृत्वा कपायमुपकल्पयेत् ।  
 भागी च पिष्पलीमूलं व्योपं चव्यं सचित्रकम् ॥ २८ ॥  
 श्वदंष्ट्रा पिष्पली धान्यं विलवं पाठा यवानिका ।  
 एतैः पलार्धकेद्रव्यैः कृत्वा कल्कं विपाचयेत् ॥ २९ ॥  
 पलानि सर्पिंपस्तस्मिन् चत्वारिंशत्समावपेत् ।  
 चतुर्गुणेन दग्धा च चाङ्गोरीस्वरसेन च ।  
 मुद्रग्रिना ततः साध्यं सिद्धं सर्पिंनिधापयेत् ॥ ३० ॥  
 प्रहण्यशोविकारव्यं गुलमहद्रोगनाशनम् ।  
 शोफप्रीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥ ३१ ॥  
 कासाहिकारुचिथासमूदनं सर्वगुलमनुत् ।  
 अमिवेशात् शुद्धंशे द्वितीयं चाङ्गोरीषृतम् ।

नागरं पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पली ॥ ३२ ॥  
 श्वदंष्ट्रा पिष्पली धान्यं विलवं पाठा यवानिका ।  
 चाङ्गोरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेपां विपाचयेत् ॥ ३३ ॥  
 चतुर्गुणेन दग्धा तु तदृतं कफवातनुत् ।  
 अशीसि ग्रहणीरोगं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ ३४ ॥  
 शुद्धंशार्तिमानाहं धृतमेतद्यपोहति ।

शुल्मे दाधिकं षृतम् ।

विडदाडिमसिन्धूत्थहुतभुव्योपजीरकैः ॥ ३५ ॥  
 हिङ्गसांवर्चलक्षाररुग्णक्षाम्लाम्लवतसैः ।  
 वीजपूररसोपेतं सर्पिंदधि चतुर्गुणम् ॥ ३६ ॥  
 साधितं दाधिकं नाम गुलमहत् प्रीहशलनव ।



तत्पकं वातगुलमध्यं कृमिष्ठीहज्वरापहम् ।  
कासद्विकारुचीर्हन्ति दशाङ्गं नाम दीपनम् ॥ ४९ ॥  
गुञ्जे हारीताङ्गशुनष्टतम् ।

लथुनाण्डस्य शुद्धस्य तुलार्धं निस्तुपस्य च ।  
तदर्थं पञ्चमूलस्य हाढकेऽपां विपाचयेत् ॥ ५० ॥  
पादशेषे घृतमस्यं लथुनस्य रसं तथा ॥  
दादिमाम्लमुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्थकैः ॥ ५१ ॥  
साधयेत्रिफलादारुलवणव्योपदीप्यकैः ।  
यवानीचब्यहिङ्गम्लवेतसैश्च पलार्धकैः ॥ ५२ ॥  
सिद्धमेतद्विः कल्कुर्गुलमाशेऽनिदरापहम् ।  
वर्धमपाण्डामयष्ठीहयोनिदोपज्वरापहम् ॥ ५३ ॥  
वातश्लेष्मामयांशान्यान् घृतमेतद्वयोहति ।  
हारीताङ्गशुने नाराचकं घृतम् ।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका ॥ ५४ ॥  
सूहीक्षीरं विड्ज्ञनि घृतं दशममुच्यते ।  
एकैकस्य च कर्पेण घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ ५५ ॥  
चतुर्गुणेन तोयेन सम्यगेतन्मिताग्निना ।  
तस्य काले पिवेन्मात्रां पलार्धसंमितां नरः ॥ ५६ ॥  
उष्णोदकानुपानं स्यादल्पत्वादस्य सर्पिषः  
विरिक्ते च यवागृः स्यात्सर्पिषा परिवर्जिता ॥ ५७ ॥  
रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मितिमान् भिषक् ।  
वातगुलमुदावर्तं छीदाशेऽवर्धमकुण्डलम् ॥ ५८ ॥  
ग्रहणां दीपयेन्मेहान् कुष्ठदोपांश्च नाशयेत् ।  
नाराचमिति विस्त्यातं सर्पिर्नाराचसंक्षितम् ॥ ५९ ॥  
भैपञ्चं संप्रयोक्तव्यं नाराचमिति शत्रवे ।

कुष्ठे नीलिनीघृतम् ।

नीलिनीं त्रिफलां रास्त्रां वचां कटुकरोहिणीम् ॥ ६० ॥

व्याधीं पचेद्विट्ठ्रं च पश्चिमानि गलादके ।  
 रसेऽषुभागशेषे तू वृत्तमस्त्वं विपाचयेत् ॥ ६१ ॥  
 दधः प्रस्थेन मंयोज्यं सुधाक्षीरपलेन च ।  
 ततो वृत्तपलं दशायवागूपण्डितितम् ॥ ६२ ॥  
 जीर्णं सम्यग्विरक्तं च दापयेदसभोजनम् ।  
 कुष्ठगुल्मोदस्व्यद्वायोफपाण्डुपयज्वरान् ॥ ६३ ॥  
 भित्रं श्रीहानमुन्मादं हन्त्येतशीतिनीतृतम् ।

पिद्यागद्वामे विशाये षट्म् ।

पलांगीविद्यव्याप्तिपिण्डीक्षारसेन्धवेदः ॥ ६४ ॥  
 काधेन विरविल्वस्य वृत्तमस्त्वं विपाचयेत् ॥  
 गुल्मोदावर्तपाण्डुत्यग्रहणीचासकासग्नित् ॥ ६५ ॥  
 दुष्टज्वरमनिदयायश्रीहार्षः गमनं परम् ।

आरीतादुष्मे परश्वं षट्म् ।

~ ~ ~ ~ ~ ~ ॥ ६६ ॥

।

शीरसस्थेन संयुक्तं हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ॥ ६७ ॥  
 ग्रहणीपाण्डुरोगम्बं श्रीहकासज्वरापहम् ।

श्रीरीतादुष्मे महापद्मातं षट्म् ।

सेन्धवं हपुपा पञ्चकोलं सौवर्चिलं विद्यम् ॥ ६८ ॥

अजमोदा यवक्षारो हिङ्गु जीरकमौद्दिदम् ।

कृष्णजरणपूतीकं कलकीकृत्य पलार्धतः ॥ ६९ ॥

शृङ्खवेररसं चुक्रं वृत्तमस्त्वं समीकृतम् ।

विषकं पाण्डुरोगम्बं क्षयपीनसनाशनम्

कृमिश्चीहोदराजीर्णज्वरगुल्मप्रमेहकम् ॥ ७० ॥

वातरोगं तथा शोफं दौर्यल्यं वह्निसंक्षयम् ।

महापद्मलमातक्कान् भिनत्यशनिवद्विरिम् ॥ ७१ ॥

कुष्ठे भेदान्वीलं घृतम् ।

द्वौ प्रस्थौ लोहचूर्णस्य त्रिफलात्याढकं तथा ।  
 वायसीकाकमाचीभ्यां द्वे पलं शङ्खिनीतुला ॥ ७२ ॥  
 त्रिद्रोणेऽपां विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ।  
 घृतप्रस्थं पचेत्तेन गर्भं चैपां समावपेत् ॥ ७३ ॥  
 वरुणश्च कलिङ्गश्च उपर्युपणं देवदारु च ।  
 अवलुगुजफलं दन्तीफलान्यारघ्वधस्य च ॥ ७४ ॥  
 मार्कवः कण्ठकारी च पारावतपदी तथा ।  
 नीलकं नाम विरुद्यातमित्येतत्कुष्ठनुदृतम् ॥ ७५ ॥  
 श्वित्राणि रञ्जयेत्येव पानाभ्यङ्गे प्रयोजितम् ।  
 पामाविचार्चिकासिभ्यकिटिमानि च नाशयेत् ॥ ७६ ॥

भेदाकुष्ठे महानीलं घृतम् ।

शम्पाकः काकमाची च वीजको मट्यनिका ।  
 एकैकस्य तुला देया प्रत्येके त्रिफलाढकम् ॥ ७७ ॥  
 दन्ती दार्ढी हरिद्रा च वरुणः कुटजत्वचा ।  
 चित्रकश्चार्कमूलं च काकमाची निदणिधिका ॥ ७८ ॥  
 एपां दशपलान् भागान् त्रिद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।  
 अष्टभागावशिष्टं तु पुनरभावधिश्रयेत् ॥ ७९ ॥  
 वासारसस्तथा धात्र्या जातीस्वरस एव च ।  
 दधि सर्पिश्च दुग्धं च गोमूत्रं गोशकृद्रसः ॥ ८० ॥  
 आढकाढकमेतेपां गर्भं चेमं समावपेत् ।  
 अवलुगुजा तथा व्योपं नक्तमालफलानि च ॥ ८१ ॥  
 पिञ्चुर्दश जाती च पीलुतिलवकपल्लवाः ।  
 किराततिक्तकः श्यामा नीलिकानीलपल्लवाः ॥ ८२ ॥  
 एतैः सिद्धं परिस्ताव्य पाययेत्कुष्ठरोगिणम् ।  
 महानीलमिति शोक्तमेतत्कुष्ठापहं घृतम् ॥ ८३ ॥

१ गर्भमिति कर्कमित्यर्थः ।

भगन्दरमथार्थसि कृपीश्चापि विनाशयेत् ।  
 आषादशैव कुष्ठानि सर्विरेतनियच्छति ॥ ८४ ॥  
 अर्यवर्षमहितो दीप्तो ब्राह्मो दण्ड इवामुरान् ।  
 वित्राणि तु विशेषेण रञ्जयेत् भिनत्ति च ॥ ८५ ॥  
 सेव्यमानं प्रसङ्गेन पानेनाभ्यञ्जनेन च ।

कुष्ठे विफलायं पृतम् ।

त्रिफला पदनं कुष्ठं शाङ्खेषा रजनीद्रयम् ॥ ८६ ॥  
 हपुषा काकमाची च शुकनासा विपा वचा ।  
 पाठा कोशातकी मूर्वा तिक्ता काकादनी तथा ॥ ८७ ॥  
 एषां कपायकल्काभ्यां सिद्धं पीतं धृतोत्तमम् ।  
 विशीर्यमाणविधवस्तल्लायुकेशनखं नरम् ।  
 कुष्ठातुरं सदा कुर्यान्मुमुर्षुमपि निर्गदम् ॥ ८८ ॥  
 हारीतात्कुष्ठे आवर्तकीपृतम् ।

आवर्तकीमूलशतं मुशुदं काथीकृतं कल्कपलाष्टयुक्तम् ।  
 प्रस्थं पुराणाद्विषः सुगन्ध्यात् पक्षं शनैः साधु ततोऽवतार्या ॥ ८९ ॥  
 यात्रां पित्रेद्याधिवलानुरूपां भुज्ञीत चात्रं सह काञ्जिकेन ।  
 द्रवोत्तरं कोद्रवजं सुजीर्णे कामं पुरस्तादपरेऽहि शुद्धः ॥ ९० ॥  
 विसप्तरात्रं विधिनैवमाशु पीतं निहन्यादचिरेण कुष्ठम् ।  
 सद्वद्वणं भयनखाङ्गदेहं मण्डानुपूर्वा विधिनाऽय चैतत् ॥ ९१ ॥  
 असिदेशाद्वद्वणेषो चव्यायं पृतम् ।

चब्यं त्रिकदुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बस्त्रणि च ।  
 यवानीं पिष्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ॥ ९२ ॥  
 अभयां चित्रकं विलं पिष्ठा सर्विर्विपाचयेत् ।  
 शकृद्रातानुलोम्यार्थं जले दध्वशतुर्गुणे ॥ ९३ ॥  
 प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्तवम् ।  
 गुदवंशणशूलं च धृतमेतद्यपोहति ॥ ९४ ॥

भेदात्मेदे घान्वन्तरं धृतम् ।

दशभूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी ।

वर्पभूर्वरुणो दन्ती चित्रकः सपुनर्नवः ॥ ९५ ॥

कपित्योऽर्कसुधाक्षीरं विलवं भट्टातकानि च ।

शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ९६ ॥

पृथग्दशपलान्येपां दत्त्वा तोयार्मणे पचेत् ।

यथकोलकुलत्थानां प्रस्थे प्रस्थं प्रदापयेत् ॥ ९७ ॥

तेन पादावशिष्टेन धृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

निचुलं त्रिफला भारीं रोहिपं गजपिप्पली ॥ ९८ ॥

शृङ्गवेरं विड्वानि वचा कम्पिष्ठकस्तथा ।

पिप्पली चविका चैव कुष्टं च सममागतः ।

गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेद्दि यथावलम् ॥ ९९ ॥

एतद्वान्वन्तरं नाम विल्यातं सर्पिरुत्तमम् ।

कुष्टे प्रेहगुल्मांश्च श्वयधुं वातशोणितम् ॥ १०० ॥

श्रीहानमुदरार्शासि विद्रधिं पिढकास्तथा ।

अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतनियच्छति ॥ १०१ ॥

खरनादाकुमारकल्याणकं धृतम् ।

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्टे त्रिफलया सह ।

द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीवको वला ॥ १०२ ॥

शटी दुरालभा विलवं दाढिमं सुरसा स्थिरा ।

मुस्ते पुष्करमूलं च मूळ्येला पिप्पली जलम् ॥ १०३ ॥

भद्रंष्ट्रातिविपा पाठा विड्वं दारु मालती ।

मधुकपुष्पखर्जूरं वदरं वंशरोचना ॥ १०४ ॥

कल्केरेपां समांशानां धृतं क्षीरचतुर्गुणम् ।

कपाये कण्डकार्यांश्च साधयेत्सौम्यदैवते ॥ १०५ ॥

एतत्कुमारकल्याणं घृतरवं मुखपदम् ।  
 वलवर्णकरं धन्यं पुष्टयग्निरुचिकारकम् ॥ १०६ ॥  
 योज्यं सर्वव्याहालक्ष्मीदन्तकर्णिगदापहम् ।  
 सर्ववालामयं च मेध्यमायुष्यमृतम् ॥ १०७ ॥  
 रसायनमिदं सेव्यं विशेषादन्तजन्मनि ।

वाग्मटाङ्गादीघृतम् ।

द्वौ प्रस्थौ स्वरसाङ्गाह्या घृतप्रस्थं च साधयेत् ॥ १०८ ॥  
 व्योपश्यामात्रिष्ठाङ्गीशाह्वपुष्पीनृपदुम्बः ।  
 ससप्तलाविडङ्गाद्यः कलिकैरक्षसंमितः ॥ १०९ ॥  
 पलघृद्वा प्रयुजीत यावन्मात्रा चतुष्पलम् ।  
 हरेत्कुमुपस्मारमुन्मादं च मुतपदम् ॥ ११० ॥  
 वाक्समृतिस्वरमेधाकृदन्यं व्रातीघृतं शुभम् ।  
 शेषे वीजपूरकाचं घृतम् ।

घृताच्चरुर्गुणो देयो मातुलङ्गरसां दधि ॥ १११ ॥  
 शुष्कमूलककीलाम्लकपायो दाढिमाद्रसः ।  
 विडङ्गलवणशारयवानीपञ्चोलकः ॥ ११२ ॥  
 पाठामूलककल्कंथं रिद्धं पूरकसंवितम् ।  
 हृत्पार्वशूलवैस्वर्यहिध्याश्वासभगन्दरान् ॥ ११३ ॥  
 वर्ध्मगुल्मप्रेहाशेवातव्याधीन् विनाशयेत् ।  
 कृष्णप्रेयाङ्गो महागीर्यां घृतम् ।

गौरी निशा च मञ्जिष्ठा भांसी कटुकरोहिणी ॥ ११४ ॥  
 प्रपोण्डरीकयष्ट्याहं भद्रमुस्तं सचन्दनम् ।  
 जातीनिम्बपटोलं च कारञ्जं वीजमेव च ॥ ११५ ॥  
 कटफलं समधूच्छिष्टं समभागानि कारयेत् ।  
 पञ्चवल्ककपायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ११६ ॥  
 क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मुद्रग्निना पचेत् ।  
 एतद्वोरं मंहावीर्यं सर्वव्याणविशेषनम् ॥ ११७ ॥

आगन्तुसहजार्थेव शिरःश्लिष्टार्थे ये व्रणाः ।  
विपमामपि नार्दीं च रोपयेन्छीघ्रमेव च ॥ ११८ ॥  
रक्षिते दर्ढाद्य धृतम् ।

दूर्वा चोत्पलकिञ्जलं मञ्जिष्ठा चैलवालुकम् ।  
अतेनदूर्वा तयोशीरं मुस्ता चन्दनपद्मकम् ॥ ११९ ॥  
द्राक्षा मधुकयष्ट्याहं काञ्चमरी सितचन्दनम् ।  
पिष्टेस्तेः कार्पिकैर्द्वयैर्घृतपस्थं विपाचयेत् ॥ १२० ॥  
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं पृथग्दद्याच्चतुर्गुणम् ।  
तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते ॥ १२१ ॥  
कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत् तस्य कर्णां प्रपूरयेत् ।  
चक्षुर्गते च रक्ते वै पूरयेत्तेन चक्षुपी ॥ १२२ ॥  
भेद्रपायुगते चापि वस्तिकर्म प्रयोजयेत् ।  
प्रवृत्ते रोमकूपेभ्यस्त्वभ्यङ्गे योजयेद्वृतम् ॥ १२३ ॥  
वैदेहानेत्ररोगे महाप्रेक्षणं धृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं मृद्गरसस्य च ।  
पीडयित्वा दृष्टं वालं रसप्रस्थं च दापयेत् ॥ १२४ ॥  
अजाक्षीरस्य च प्रस्थं, प्रस्थं तैः सर्पिषः पचेत् ।  
त्रिफला चन्दनं द्राक्षा पिष्टली मधुकं वला ॥ १२५ ॥  
काकोलीक्षीरकाकोलीमेदापरिचसैन्धवम् ।  
शर्करा पुण्डरीकं च हरिद्रोत्पलनागरम् ॥ १२६ ॥  
कल्कैः सिद्धं भिपग्दद्यानेत्ररोगविनाशनम् ।  
काचं च नीलिकां शुक्रं वर्त्मरोगांशं नाशयेत् ॥ १२७ ॥  
नक्तान्ध्ये नकुलान्ध्ये च कण्डे पिण्डमयापि च ।  
अजकां तिमिरांश्वेव नेत्रसाक्षांशं दाखणान् ॥ १२८ ॥  
त्रिफलासप्तिरेतद्वि पाननावनतर्पणैः ।  
विदेहराजनिदिंष्टे हस्तिनैर्मल्यकारकम् ॥ १२९ ॥

षातावरी षष्ठी शतादरीपृथम् ।

शतावरीमूलतुलां द्विद्वेषोऽप्या विपाचयेत् ।

अष्टभागावशेषेण धृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३० ॥

जीवनीयानि सर्वाणि रास्ता गोक्षुरकस्तथा ।

शतपुष्पा वचा कुष्ठं सरलथं पुनर्नवा ॥ १३१ ॥

चन्द्रं तगरं मांसी पद्मकं रक्तचन्द्रनम् ।

मुरसा नागरं कृष्णा विडं मुस्ता तथोत्पलम् ॥ १३२ ॥

एषामक्षमर्पभाँगः क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।

शृंहणं वातपित्तां भतमोपज्वरापदम् ॥ १३३ ॥

पीठसर्पिंष्पद्मनामद्वितेऽपि च शस्यते ॥

एुस्त्रोपयातिनां नृणां घन्यानां च योजितम् ॥ १३४ ॥

बलवर्णकरं द्वेतदलक्ष्मीवै भजाकरम् ।

इदं शतावरीसर्पिंश्विभ्यां परिकीर्तिंतम् ॥ १३५ ॥

शतपुष्पशायं पृथम् ।

( शङ्खाब्राह्मीगुह्यगृग्रामतावर्यक्वलिकाः ।

मलपूर्ण ब्रह्मसोमां च फलकीकृत्य धृतं पचेत् ॥ १ ॥

दुर्घं चतुर्गुणं दत्त्वा वातश्लेष्महरं च तत् ।

मेधाकरं तथाऽऽयुष्यपश्विभ्यां परिकीर्तिंतम् ॥ २ ॥ )

सारस्थतं पृथम् ।

ब्राह्मीं समूलपत्रां तु सम्यक् प्रक्षालय वारिणा ।

उलूखलेन संक्षुद्य रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ १३६ ॥

चतुर्गुणे रसे तैस्मिन् धृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

औषधानि च पेत्याणि तत्रेयानि प्रदापयेत् ॥ १३७ ॥

हरिद्रा मालतीं चैव त्रिफला च हरीतकी ।

एतेषां पालिका भागाः शेषाणां कार्पिकाः स्मृताः ॥ १३८ ॥

पिष्पल्योऽथ विट्ज्ञानि संन्धवं शर्करा चृपः ।

एतानि तु समालोड्य शर्नैर्मृदग्रिना पचेत् ॥ १३९ ॥ ।

ततः पहं तु विश्वाय क्षिरं तदवतारयेत् ।  
 तस्य प्राशनमात्रेण वधिरत्वं प्रणश्यति ॥ १४० ॥  
 सप्तरात्रोपयोगेन भवेत्कविरसंशयम् ।  
 घृतं सारस्वतं नाम सरस्वत्या विनिर्मितम् ॥ १४१ ॥

सन्तानार्थं फलघृतम् ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा वचा ।  
 अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गु तिक्तकरोहिणी ॥ १४२ ॥  
 काकोली क्षीरकाकोली मूलं चैवाऽवगन्धजम् ।  
 जीवकर्पभौ मेदे रेणुका बृहतीद्रियम् ॥ १४३ ॥  
 उत्पलं चन्दनं द्राक्षा पद्यकं देवदारु च ।  
 एपामक्षसमैर्भागैर्धृतप्रस्तं विपाचयेत् ॥ १४४ ॥  
 चतुर्गुणेन तोयेन विपचेन्मृदुनाऽश्रिना ।  
 एतत्सर्पिनरः पीत्वा स्त्रीपु नित्यं दृपायते ॥ १४५ ॥  
 पुत्रं जनयते वीरं मेधाहृष्यं पुष्करेक्षणम् ।  
 वन्ध्या च लभते गर्भं श्यामा शीघ्रं प्रसूयते ॥ १४६ ॥  
 या चैव स्थितगर्भा स्यान्मृतापत्या तु या भवेत् ।  
 अल्पायुर्जननी चैव या च मूत्रा पुनः स्थिता ॥ १४७ ॥  
 एतदेव कुमाराणां सर्वाङ्गग्रहमोक्षणम् ।  
 धन्यं यशस्यमायुप्यं कान्तिलावण्यपुष्टिदम् ॥ १४८ ॥  
 ये च कल्याणके प्रोक्तास्ते चापीह गुणाः स्मृताः ।  
 एतत्फलघृतं नाम द्विष्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १४९ ॥

अमिवेशात्कृतक्षीणे शब्दघृथं पृतम् ।

द्वदंप्तेशीरमञ्जिष्ठावलाकाशमर्यकतृणम् ।  
 पृश्निपर्णी स्थिरा दर्भमूलं च जीवकर्पभौ ॥ १५० ॥  
 पालिकान् साधयेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।  
 कल्कैर्जीविकजीवन्तस्विगुप्तामेदकर्पभात् ॥ १५१ ॥  
 शतावर्यृद्धिमृद्रीकाशर्कराश्रावणीविसात् ।

प्रस्थः सिद्धो घृताद्रातपित्तहृद्वरश्चलनुव् ॥ १५२ ॥

मूत्रकुच्छूपमेहार्शः कासशोपक्षयापहः ।

धनुः ह्यमध्यभाराव्यविनानां वलमांसदः ॥ १५३ ॥

कामलायो हारीताद्राक्षायं घृतम् ।

पिट्ठा गौस्तनिकायास्तु पलान्यष्टैः समावपेत् ।

पुराणसर्पिषः प्रस्थं पकं क्षीरे चतुर्गुणे ।

कामलापाण्डुरोगार्शोज्वरकासार्तिनाशनम् ॥ १५४ ॥

बाग्मटाकुष्ठे महावज्रं घृतम् ।

वासामृतानिभ्वपटोलतिक्ताव्याधीकरञ्जोदककल्कसिद्धम् ।

सर्पिर्विसर्पज्वरकामलार्तिकुप्त्रापहं वज्रकमामनन्ति ॥ १५५ ॥

बाग्मटाकुष्ठे महावज्रं घृतम् ।

त्रिफलात्रिकहृद्विष्टकारीकडुकाकुम्भनिकुम्भराजवृक्षैः ।

सवचातिविपाग्निकैः सपाठैः पित्तुभार्गीर्व वज्रदुग्धमुष्टयाः ॥ १५६ ॥

पिष्टैः सिद्धं सर्पिषः प्रस्थमेभिः कूरे कोष्ठे स्लेहनं रेचनं च ।

कुष्टश्चित्तपुरीहृवध्माशमगुलमान्हन्यात्कुच्छ्रास्तन्महावज्रकारुद्यम् ॥

बाग्मटेशाकुष्ठे तिक्तकं घृतम् ।

निम्बपटोलं दार्ढी दुरालभां तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम् ।

कुर्यादर्धपलांशं पर्षटकं त्रायमाणां च ॥ १५८ ॥

सलिलादकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपेत्पूते ।

चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणांथ ॥ १५९ ॥

मुस्तं वत्सकवीजं कल्कीकृत्यार्धकार्पिकान् भागान् ।

नवसर्पिष्व पद्मपलमेतत्सद्धं घृतं पेयम् ॥ १६० ॥

कुष्टज्वरगुलमार्शोग्रहणीपाण्डामयश्वययुहारि ।

विसर्पिषामापिडकाकण्डमदगण्डनुत्तिक्तम् ॥ १६१ ॥

बाग्मटेशाकुष्ठे महातिक्तकं घृतम् ।

समच्छदं प्रतिविपां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम् ।

मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपित्तुमर्दपर्षटकम् ॥ १६२ ॥

घन्यवासं चन्दनमुपकुलयां पद्मकं हरिद्रे द्रे ।

पद्मग्रन्थां सविशालां शतावरीं शारिवे चौमे ॥ १६३ ॥

वत्सकवीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तं च ।  
 कल्कीकुर्यान्मतिमान् यष्टाहं त्रायमाणां च ॥ १६४ ॥  
 कल्कथतुर्थभागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।  
 द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सिद्धं पाययेदसंर्पिः ॥ १६५ ॥  
 कुष्ठानि रक्तपित्तप्रबलान्यशांसि रक्तवाहीनि ।  
 वीसर्पमम्लपित्तं पित्तासृक् पाण्डुतां गुलमम् ॥ १६६ ॥  
 विस्फोटकान् सपामानुन्मादं कामलां कृमीन् कण्ठम् ।  
 हृद्रोगज्वैरपिडका शसुग्दरं गण्डमालां च ॥ १६७ ॥  
 हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथावलं सर्पिः ।  
 योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ १६८ ॥  
 जतुकर्णांकुष्ठे द्वितीयं मद्वातिक्तकं घृतम् ।

करञ्जससच्छदपिष्पलीनां मूलानि कृष्णा मधुकं विशाला ।  
 यवासकश्चन्दनमुत्पलं च स्यात्रायमाणा कदुका वचा च ॥ १६९ ॥  
 उशीरपाठातिविपारजन्यः किराततिक्तः कुटजस्य वीजम् ।  
 निम्बासनारग्वथमालतीनां पत्राणि मूलानि च कण्टकार्याः ॥ १७० ॥  
 शतावरीपद्मकदेवदार्खमुस्तानि कालीयकक्षेसराणि ।  
 वासागुड्चीनतसारिवाश्च वला पटोलं त्रिफला च मूर्वा ॥ १७१ ॥  
 नीपः कदम्बो धववेतसौ च कक्कोटकः पर्पटकः पयस्या ।  
 वाराहकन्दं मदयन्तिका च व्राही समझर्पभको वला च ॥ १७२ ॥  
 एतैः समांशैरथ कार्पिकैश्च घृतस्य पात्रं विपचेन्नवस्य ।  
 द्रोणं जलस्याकलुपस्य दद्यात् पात्रद्रयं चामलकीरसस्य ॥ १७३ ॥  
 पकं पशान्तं गतफेनशब्दं प्रयोजयेत् कुष्ठहरं प्रशस्तम् ।  
 तद्रक्तपित्तानिलसन्निपातविस्फोटपाल्यामयविद्रधीनाम् ॥ १७४ ॥  
 किलासकांसज्वरगण्डमालाग्रन्थ्यरुदानि त्वय वातरक्तम् ।  
 हृत्पाण्डुरोगान् सभगन्दरांश्च निषेव्यमाणं निययेन काले ॥ १७५ ॥  
 घृतं महातिक्तमिदं प्रशस्तं निहन्ति सर्वान् श्वयधूपदिष्टान् ।

१ 'मतिमान्' इति पा० । २ 'पाण्डुरोगं च' इति पा० । ३

कृष्णाव्रेयात् द्विं द्वि रोहीतकं पृतम् ।

शतं पलानि रोहीतात् संस्कृत्य वद्राढकम् ।

पाचयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १७६ ॥

घृतप्रस्थं समावाप्य छागं क्षीरं चतुर्गुणम् ।

तस्मिन् दद्यादिमांश्चैव सर्वान् कर्पसमन्वितान् ॥ १७७ ॥

च्योपं फलत्रयं हिङ्गः यवानी तुम्बुरु विडम् ।

अजाजी सैन्धवं कुष्ठं दाढिमं देवदारु च ॥ १७८ ॥

पुनर्नवा विशाला च यवक्षारश्च पुष्करम् ।

विडङ्गं चित्रकश्चैव हपुंपा चविका वचा ॥ १७९ ॥

एभिर्द्रव्यैर्घृतप्रस्थं स्थापयेद्वाजने शुभे ।

पापयेत् पलं मात्रां व्याधीन् शमयते क्षणात् ॥ १८० ॥

सुहं पुरीहादरं र्ववं पुरीहशूलं तथैव च ।

हृच्छूलं पार्वशूलं च कुक्षिशूलमरोचकम् ॥ १८१ ॥

हन्ति विवन्धशूलं च पाण्डुरोगं सकामलम् ।

छर्यतीसारशूलग्रं तन्द्राज्वरविनाशनम् ॥ १८२ ॥

रोहीतकघृतं द्वेतत् पुरीहानं शमयेद्वृतम् ।

क्षारपणे: पुरीहानि विलाद्य घृतम् ।

विलं पाठाऽभ्याप्ता धान्यं यवानी सैन्धवं विडम् ।

मरिचं पञ्चकोलं च क्षारश्चभिर्घृतं पचेत् ॥ १८३ ॥

दधा चतुर्गुणनंव शकृद्रातविवन्धनुत् ।

सर्वामपुरीहवातातिर्गुद्भ्रंशरुजापहम् ॥ १८४ ॥

हारीतात् सबोदरे द्विपश्मूलाद्य घृतम् ।

द्वे पञ्चमूलयौ त्रिघृतानिकुम्भे ससम्पुलं चित्रकशिगुमूलम् ।

कुरण्डवीजं त्रिफला गुडची द्वेरण्डमूलं मदयन्तिका च ॥ १८५ ॥

पाठा समार्गी सुपवी सनीला सरोहिपा पापेकुचेलिका च ।

एपां पृथक् पञ्चपलं जलस्य द्रोणे पचेत्तचतुरंशयोपम् ॥ १८६ ॥

घृतं विपकं सकपायकलं निहन्ति पीतं सकलोदराणि ।

१ 'करञ्जशीजं' इति पा० । २ 'यीतकुचेलिका' इति पा० ।

उदरे श्राद्धं घृतम् ।

शिलादयं नागरकालशाके काकादनीमूलनिदग्धिके च ॥१८७  
 पञ्चेव दधारुवणानि हिङ्गुः कृष्णां च तैरक्षसमैः पृथक् च ।  
 प्रस्थं घृतस्याथ पचेनवस्य चतुर्गुणं मूत्रमय प्रदाप्य ॥१८८॥  
 पयश्च दधाद्विगुणं विपक्तं तद्रूपस्थृतं प्रवदन्ति सर्पिः ।  
 श्रीहोदरं दूष्यमयोदरं च संसेव्यमानं जडराणि हन्यात् ॥१८९॥  
 कासे कण्टकारीघृतम् ।

पाठाविडब्योपविडङ्गसिन्धुत्रिकण्टरास्ताद्युतभुग्वलाभिः ।  
 शृङ्गीवचाम्भोधरदेवदारुदुरालभाभार्यभयाशटीभिः ॥ १९० ॥  
 सम्यग्विपक्तं द्विगुणेन सर्पिनिदग्धकायाः स्वरसेन चैतत् ।  
 श्वासाग्निसादस्वरभेदभिन्नान्निहन्त्युदीर्णानपि पश्चकासान् ॥१९१  
 कासे द्वितीयं कण्टकारीघृतम् ।

क्षुद्रायाः स्वरसं सम्यक् ग्राहयेदन्त्रपीडितम् ।  
 चतुर्गुणे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १९२ ॥  
 दधाविकडुकं गर्भे रास्तां गोधुरकं बलाम् ।  
 पञ्चकासानिदं सर्पिः पीतं सद्यो व्यपोहति ॥ १९३ ॥

अग्निवेशान् कासे उद्यूपणार्थं घृतम् ।  
 उद्यूपणं त्रिफलां द्राक्षां काशमर्यं च परूपकम् ।  
 द्वे पाठे देवदार्ढाद्विं स्वगुणां चित्रकं शटीम् ॥ १९४ ॥  
 व्याधीमामलकीं मेदां काकनासां शतावरीम् ।  
 त्रिकण्टकं गुह्यचीं च पिष्ठा कर्पसमं घृतात् ॥ १९५ ॥  
 प्रस्थं चतुर्गुणे क्षीरे सिद्धं कासहरं पियेत् ।  
 उवरसुलमारुचिष्ठीहशिरोहरपार्षद्युलज्जुत् ॥ १९६ ॥  
 कामलाशेऽनिलाग्नीलाक्षतशोपक्षयापहम् ।  
 उद्यूपणं नाम विख्यातमेतदृतमनुत्तमम् ॥ १९७ ॥  
 कृष्णत्रियाद्वृणे गोर्यार्थं घृतम् ।

गौरीनिम्बपद्मोलरोधफलिनीयष्टथाहनीलोत्पलै-  
 र्मजिष्ठाकडुकेन्द्रवारुणिजपामूर्वानिशाचन्दनैः ।

जातीक्षोरकपत्रकेशरदलैः पूतीकयोण्टाफले-  
 स्तुल्यैः सिक्यकसारिवाद्ययुतीर्गव्यं पूर्तं पाचयेत् ॥ १९८ ॥  
 गृष्णिरसपञ्चवल्लदलकायैश्च गौर्यादिभिः  
 सिद्धं सर्पिरिदं हितं त्रिषु भवेत्सद्यः क्षतेषु धृतम् ।  
 ये गूढाधिरकालजातगतयः प्रोच्छिन्नमांसा व्रणाः  
 सक्षावाः सरुजः सदादपिदिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च १९९  
 भेषाद्वृग्गुलुतिकर्क षृतम् ।

निम्बामृतापटीलानां कण्टकार्या दृपस्थ च ।  
 पृथग्दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २०० ॥  
 तेन पादावशेषेण दृतप्रस्थं विपाचयेत् ।  
 त्रिकदुत्रिफलामुस्तारजनीद्रयवत्सकम् ॥ २०१ ॥  
 शुष्ठी दारुहरिद्रा च पिष्पलीमूलचित्रकम् ।  
 भृष्टातको यवसारः कटुकाऽतिविपा वचा ॥ २०२ ॥  
 विट्ठङ्गं स्वजिंकाक्षारः शतपुष्पाऽजमोदकम् ।  
 एपामक्षसमैर्भार्गीर्गुलोः पञ्चभिः पलैः ॥ २०३ ॥  
 सुसिद्धं पीयमानं च हेतद्वृग्गुलुतिकर्कम् ।  
 विद्रधिं हन्ति सधो हि त्वग्दोपानपि दारुणान् ॥ २०४ ॥  
 कुष्टानि स्वापसङ्कोचयेगवन्ति स्थिराणि च ।  
 वातश्लेष्मसमुत्थाने मेदःसावयुतानि च ॥ २०५ ॥  
 गण्डभालार्दुदंशनिनाडीदुष्टभग्नदरान् ।  
 कासं खासं प्रतिशयायं पाण्डुरोगं ज्वरं क्षयम् ॥ २०६ ॥  
 विपमज्वरहृद्रोगलिङ्गदोपविपक्रिमीन् ।  
 प्रमेहादग्न्दरोन्मादशुक्रदोपगदान् जयेत् ॥ २०७ ॥  
 हारीताच्छोषे द्राक्षायै षृतम् ।  
 द्राक्षायाः शोधितं प्रस्थं मधुकस्य पलाष्टकम् ।  
 पचेत्तोयार्मणे शुद्धे पादशेषेण तेन च ॥ २०८ ॥  
 पालिके मधुकद्राक्षे पिष्टा कृष्णापलद्वयम् ।

प्रदाप्य सर्पिषः प्रस्थं पचेत् क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २०९ ॥

सिद्धे शीते पलान्वष्टौ शर्करायाः प्रदापयेत् ।

एतद्राक्षाघृतं नाम क्षीणक्षुच्चृसुखावहम् ॥ २१० ॥

वातपिचञ्चरख्वासविस्फोटकहलीभकान् ।

पदरं रक्तपित्तं च हन्यान्मांसवलप्रदम् ॥ २११ ॥

विदेहात्सर्वैनेत्रयेऽग्निफलादं धृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।

पीडयित्वा वृपं वालं रसप्रस्थं मदापयेत् ॥ २१२ ॥

अजाक्षीरस्य च प्रस्थं कार्पिकैः श्लक्षणेषितैः ।

पिप्पलीशर्कराद्राक्षाविफलानीलपद्मकैः ॥ २१३ ॥

मधुकक्षीरकाकोलीमधुपर्णीनिदिग्धिका-।

मञ्जिष्ठापद्मकोशीरसारिवादौरुचन्दनैः ॥ २१४ ॥

घृतं प्रस्थं पचेत् माझः कल्कैरेभिः समन्वितम् ।

उर्ध्वपानमधः पानं मध्ये पानं विशिष्यते ॥ २१५ ॥

अतिभद्रुष्टरक्ते च रक्ते चातिस्रुते तथा ।

नक्तान्वये तिमिरे काचे सर्वैनेत्ररुजासु च ॥ २१६ ॥

वक्कविद्योतिते भ्रान्ते मूर्यतेजोद्दिष्टे तथा ।

गृग्रहणिकरं धन्यं घलवर्णाग्निवर्धनम् ॥

त्रिफलाया घृतं सिद्धं सर्वैनेत्ररुजान्तकृत् ॥ २१७ ॥

पटोलादं धृतम् ।

पटोलं मधुकं दार्ढा निम्बं वासां फलत्रिकम् ।

दुरालभां च त्रायन्तां पर्पटं च पलोन्मितम् ॥ २१८ ॥

प्रस्थमामलकानां च काथयेत्सलिलार्मणे ।

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१९ ॥

कल्कैः कुट्टजभूनिम्बमुस्तयष्टाहृचन्दनैः ।

पिप्पलीसहितैः सर्पिशक्षुप्यं श्रोत्रयोहितम् ॥ २२० ॥

१ 'दार्ढाचन्दनैः' इति पा० । २ 'त्रकविद्योतिते' इति पा० ।

३ 'कुट्टज' इति पा० ।

जातीक्षोरकपत्रकेशरदलैः पूतीकघोण्टाफलैः-  
 स्तुल्यैः सिवयकसारिवाद्ययुतं गर्व्यं घृतं पाचयेत् ॥ १९८ ॥  
 गृष्णक्षीरसपञ्चवल्कलदलकाधैश्च गौर्यादिभिः  
 सिद्धं सर्पिरिदं हितं त्रिपु भवेत्सद्यः क्षतेषु घृतम् ।  
 ये गृदाश्विरकालजातगतयः प्रोच्छिन्नमांसा व्रणाः  
 सस्नावाः सरुजाः सदाहपिडिकाः शुप्यन्ति रोहन्ति च १९९  
 भेदाद्वृग्गुलुतिक्तकं घृतम् ।

निम्बामृतापटोलानां कण्टकार्या घृपस्य च ।  
 पृथग्दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २०० ॥  
 तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।  
 त्रिकदुत्रिफलामुस्तारजनीद्रियवत्सकम् ॥ २०१ ॥  
 शुष्ठी दारुहरिद्रा च पिष्पलीमूलचित्रकम् ।  
 भल्लातको यवक्षारः कदुकाऽतिविपा वचा ॥ २०२ ॥  
 विढङ्गं स्वजिंकाक्षारः शतपुष्पाऽजमोदकम् ।  
 एपामक्षसंमैर्भागीर्गुगुलोः पञ्चभिः पलैः ॥ २०३ ॥  
 मुसिद्धं पीयमानं च देतद्वृग्गुलुतिक्तकम् ।  
 विद्रधिं हन्ति सधो हि त्वग्दोपानपि दारणान् ॥ २०४ ॥  
 कुष्टानि स्वापसङ्कोचवेगवन्ति स्थिराणि च ।  
 वातश्लेष्मसमुत्थानि मेदःस्नावयुतानि च ॥ २०५ ॥  
 गण्डमालार्दुदग्रन्थिनाडीदुष्टभगन्दरान् ।  
 कासं श्वासं प्रतिश्वायां पाण्डुरोगं उचरं क्षयम् ॥ २०६ ॥  
 विपमञ्चरहद्रोगलिङ्गदोपविपक्रिमीन् ।  
 अमेहासृग्दरोन्मादशुक्रदोपगदान् जयेत् ॥ २०७ ॥  
 हारीताच्छोषे द्राक्षार्थं घृतम् ।  
 द्राक्षायाः शोधितं प्रस्थं मधुकस्य पलाष्टकम् ।  
 पचेत्तोयार्येण शुद्धे पादशेषेण तेन च ॥ २०८ ॥  
 पालिके मधुकद्राक्षे पिष्पा कृष्णापलद्वयम् ।

प्रदाप्य सर्पिंः प्रस्थं पचेत् क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २०९ ॥

सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्करायाः प्रदापयेत् ।

एतद्राक्षाघृतं नाम क्षीणक्षुचृहसुखावहम् ॥ २१० ॥

वातपिचज्वरश्वासविस्फोटकहलीमकान् ।

प्रदर्शनं रक्तपित्तं च हन्त्यान्मांसवलपदम् ॥ २११ ॥

विदेहात्सर्वनेत्ररोगे त्रिफलाद्यं धृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।

पीडयित्वा वृपं वालं रसप्रस्थं प्रदापयेत् ॥ २१२ ॥

अजाक्षीरस्य च प्रस्थं कार्पिकैः शुक्ष्मणेषितैः ।

पिप्पलीशर्कराद्राक्षात्रिफलानीलपदकैः ॥ २१३ ॥

मधुकक्षीरकाकोलीमधुपर्णीनिदिग्धिका—।

माञ्जिष्ठापद्यकोशीरसारिवादांरुचन्दनैः ॥ २१४ ॥

घृतं प्रस्थं पचेत् प्राज्ञः कल्करेभिः समान्वितम् ।

ऊर्ध्वपानमधः पानं मध्ये पानं विशिष्यते ॥ २१५ ॥

अतिप्रदुषरक्ते च रक्ते चातिसृते तथा ।

नक्तान्वये तिमिरे काचे सर्वनेत्ररुजासु च ॥ २१६ ॥

बक्कविद्योतिते आन्ते सूर्यतेजोद्विषे तथा ।

गृथदण्डिकरं धन्यं वलवर्णीप्रिवर्धनम् ॥

त्रिफलाया घृतं सिद्धं सर्वनेत्ररुजान्तकृत् ॥ २१७ ॥

पटोलाद्यं धृतम् ।

पटोलं मधुकं दाढीं निम्बं वासां फलत्रिकम् ।

दुरालभां च जायन्तीं पर्पदं च पलोन्मितम् ॥ २१८ ॥

प्रस्थमामलकानां च काथयेत्सलिलार्मणे ।

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१९ ॥

कल्कैः कुटजभूनिम्बमुस्तयष्टुच्छाहचन्दनैः ।

पिप्पलीसहितैः सर्पिंश्वसुप्यं श्रोत्रयोहिंतम् ॥ २२० ॥

१ ‘दाढीचन्दनैः’ इति पा० । २ ‘चक्रविद्योतिते’ इति पा० ।

३ ‘कटुको’ इति पा० ।

घ्राणकर्णाक्षिवत्मत्यग्दन्तरोगवणापदम् ।

रक्तपित्तहरं स्वेदलेदपूयोपशोपणम् ॥ २२१ ॥

कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाहरं परम् ।

कृष्णाद्रेयाद्विन्दुपृतम् ।

त्रिवृतां त्रिफलां पाठां दन्तीं कदुकरोहिणीम् ॥ २२२ ॥

चतुरहूलमज्जानं तथा च कदुकवयम् ।

चित्रकं च वृहत्यां च तथा च गजपिण्डीम् ॥ २२३ ॥

स्तुहीक्षीरं पलं दधात् घृतस्याणीं प्रदापयेत् ।

यावतः स पिवेद्विन्दून् तावद्वारान् चिरिच्यते ॥ २२४ ॥

एतद्विन्दुपृतं सिद्धमृपिभिः परिकीर्तिंतम् ।

कृष्णाद्रेयाद्वृत्मे पद्मादिन्दुपृतम् ।

स्तुहीक्षीरपले द्वे च प्रस्थार्थं चैव सर्पिंपः ॥ २२५ ॥

कम्पिण्डकपलं चैव शाणार्थं सन्धवस्य च ।

त्रिवृतायाः पलं चैव कुडवं धात्रिजाद्रसात् ॥ २२६ ॥

तोयप्रस्थेन संयुक्तं शर्नैर्मृदमिना पचेत् ।

कर्पमानं प्रदातव्यं जडे प्रीहगुलमयोः ॥ २२७ ॥

तथा कणोत्थरोगेषु सुखीत कुशलो भिषक् ।

गुलमादिनिच्यानेतत् समूलान् सपरिग्रहान् ॥ २२८ ॥

निहन्त्येपं प्रयोगो हि वायुर्जलधरानिव ।

पञ्चगुलमवधार्थाय सर्पिरेतत् प्रकीर्तिंतम् ॥ २२९ ॥

सर्वासुखधार्थाय यथा वज्रं विढौजसः ।

महादिन्दुपृतं सिद्धं सर्वोदरहरं परम् ॥ २३० ॥

गुर्वे विन्दुपृतम् ।

इयामात्रिवृद्धिपलत्रयं हि हरीतकीनां तु शतार्थमन्यत् ।

तोयार्मणोऽर्थेन विपात्य तेन प्रस्थं पचेद्व्यवृतस्य वैद्यः ॥ २३१ ॥

कम्पिण्डकस्यांपि पलप्रमाणं मनीलित्वैवीजपलद्रयं च ।

चतुर्पलं स्तुकपयसश्च दत्त्वा गुलमापहं विन्दुपृतं विरेकात् ॥ २३२ ॥

<sup>१</sup> ‘कम्पिण्डकस्य प्रष्टतिप्रमाणं’ इति पा० ।

विकिंसाकलिकाया शुभे महाविन्दुघृतम् ।

त्रिवृत्पलं स्तुत्पयसः पलं च कम्पिष्टुकस्यापि पलं तृतीयम् ।  
चतुष्पलं चामलकीरसस्य पलार्धमन्यष्टुवणस्य चैव ॥ २३३ ॥  
प्रस्थार्धमेभिर्हविपो विपकं जले महाविन्दुघृतं प्रसिद्धम् ।  
निहन्ति गुलम् जडराणि चैव प्रीहामयानाशु विरेकयोगात् ॥ २३४

कुषे विन्दुघृतम् ।

अर्कक्षीरपले द्वे तु स्तुहीक्षीरपलानि पद् ।

पथ्या कम्पिष्टुकः क्यामा इयामाको गिरिकणिका ॥ २३५ ॥

नीलिनी चित्रता दन्ती शङ्खिनी चित्रकस्तथा ।

एतेषां पलिकैर्भार्गैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २३६ ॥

अथास्य मलिने कोष्ठे विन्दुमात्रं पदापयेत् ।

यावतो ना पियेद्विन्दुन् ताचद्वारान्विरिच्यते ॥ २३७ ॥

कुष्ठे गुलमधुदार्यते श्वयथुं सभगन्दरम् ।

शमयत्युदराण्यष्टी दृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २३८ ॥

एतद्विन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ।

कुष्ठे प्रश्निककं धृतम् ।

निम्बं व्याघ्रां पटोलं च गुद्धचाँ वासकं तथा ॥ २३९ ॥

कुर्यानुलां तु संचूर्ण्य काथयेत्तज्जले शुभे ।

ततः पादावेशोपेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४० ॥

त्रिफलागर्भसंयुक्तं पञ्चतिक्कमुच्यते ।

अशीति वातजान् रोगांश्चत्वारिंशत्यैतिकान् ॥ २४१ ॥

विंशतिं श्लेष्मजांश्चैव पानादेवापकर्पति ।

(दुष्ट्रयणांस्तथा नाडीमर्शासि च भगन्दरम् ।

पञ्चकासान् सहद्रोगान् सर्पिंरेतनियच्छति ॥ )

सर्पनादाच्छूले लशुनपृतम् ।

प्रस्थं लशुनवीजानां कण्टकार्यास्तथैव च ॥ २४२ ॥

प्रस्थं तथा च वासाया जलद्रोणे विपाचयेत् ।

द्राक्षाया गोस्तनायाथ कुट्टं चात्र पिश्रयेत् ॥ २४३ ॥  
 तत्र दधादृतप्रस्थं गोक्षीरप्रस्थमेव च ।  
 लभुनस्य तु पिण्डस्य पलं निष्पीड्य योजयेत् ॥ २४४ ॥  
 आटरूपकपत्राणां पैर्पंयित्वा पलं तथा ।  
 एतन्यूद्गमिना सिद्धं शीतं पूतप्रपापि च ॥ २४५ ॥  
 द्विपलं शर्कराचूर्णं शीरार्घकुट्टं तथा ।  
 त्ववक्षीर्याथ पलार्घं हि तत्सर्वं सज्जमूर्च्छितम् ॥ २४६ ॥  
 निदध्याद्वाजने शुद्धे काखने राजतेऽपिवा ।  
 एतत्प्रायोगिकं सर्पिंरिमान् व्याधीन् व्यपोहति ॥ २४७ ॥  
 कासं श्वासं ज्वरं गुलमं कार्यं उर्द्धमरोचकम् ।  
 हृद्रोगं पार्थशूलं च क्षतक्षीणं प्लिहोदरम् ॥ २४८ ॥  
 जीवनं वृद्धं वृष्टं पाण्डुभवयुनाशनम् ।

तन्मान्तरादिमार्यं धूतम् ।

दाडिमात्कुट्टवो धान्यात्कुट्टवार्घं पर्नं पलम् ॥ २४९ ॥  
 चित्रकाच्छृङ्खवेराच्च पिष्पल्यष्टमिका च त्वः ।  
 पलानि विश्रतिं चैव धृतस्य सलिलाढके ॥ २५० ॥  
 सिद्धं हृत्पाण्डुगुलमार्दः प्लीहवातार्तिं शूलबुद् ।  
 दीपनं श्वासकासघ्ने मृदवाताजुलोपनम् ॥ २५१ ॥  
 दुःखप्रसविनीनां च चन्द्र्यानां चैव पुत्रदम् ।

चित्रकार्यं धूतम् ।

चित्रकस्य तुलाकार्ये धृतप्रस्थं विषाचयेत् ॥ २५२ ॥  
 दिगुणं शारनालं च दधिमण्डं चतुर्गुणम् ।  
 पञ्चकोलकतालीसक्षार्लवणसंयुतैः ॥ २५३ ॥  
 दिजीरकनिशायुग्मर्मरिचं तत्र दापयेत् ।  
 गुलपङ्गीहोदराधमानपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ॥ २५४ ॥

१ 'मार्याधिकारपदम्' इति पा० । २ 'पल द्राक्षापलं तथा' इति पा० ।  
 ३ प्रायोगिकमिति प्रयोगः स्वस्थस्य उत्तोपयोगः, तत्र साधु प्रायोगिकम् ।

वस्तिहृत्पार्वकटथूरुशूलोदावर्तजान् गदान् ।  
 निहन्यात् पीतमशोऽग्नं पाचनं वहिदीपनम् ।  
 वलवर्णकरं चापि भस्मकं च नियच्छति ॥ २५५ ॥  
 शेषेकं विन्नकायं पृतम् ।

सचित्रकं धान्ययवान्यजाजीसौवर्चलञ्ज्युपणवेतसाम्लम् ।  
 विल्वोत्पलं दाढिमयावश्युकं सपिष्पलीमूलपथापि चव्यम् २५६  
 पिष्टाऽक्षमात्राणि जलादेकन पक्त्वा घृतप्रस्थमयापि युज्ज्यात् ।  
 अशासि गुलमान् श्वयथुं सकृच्छ्रुं निहन्ति वहिं च करोति दीपम् ॥  
 श्रीहि तृतीयं गोहीतदधृतम् ।

रोहीतकल्वचः श्रेष्ठात्पलानां पञ्चविंशतिम् ।  
 कौलद्विप्रस्थसंयुक्तां कपायमुपकल्पयेत् ॥ २५८ ॥  
 पालिकैः पञ्चकोलेशं तैः सर्वेषापि तुल्यया ।  
 रोहीतकल्वचा पिष्टेद्धृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २५९ ॥  
 शमयेत् श्रीहृद्यद्विं च सपिराशु प्रयोजितम् ।  
 तथा गुलमज्वरश्वासकृमिपाण्डुत्वकामलाः ॥ २६० ॥  
 तुष्टे, मुण्डुपशतिकं धृतम् ।

निम्वामृतावृपपटोलनिदिगिथकानां  
 भागानिमान्दशपलानिवपचेद्वटेऽपाम् ।  
 अष्टांशशेषितश्चतेन पुनश्च तेन  
 प्रस्थं धृतस्य विपचेत् पित्तुभागकल्कैः ॥ २६१ ॥  
 पाठाविडङ्गसुरदाखगजोपकुल्या-  
 दिक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।  
 तेजस्वतीमरिचवत्सकदीप्यकामि-  
 रोहिण्यरूपकरवचाकंणमूलयुक्तैः ॥ २६२ ॥  
 मदिष्टयाऽतिविपया विपया यवान्या  
 संयुद्धगुलुपलंरपि पञ्चसंख्यैः ।

१ 'शोषणं' इति पा० । २ 'रसेन' इति पा० ।

तत्सेवितं चिधुवति प्रवलं सभीरं

सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्टमीटक् ॥ २६३ ॥

नाडीव्रणार्दुदभगन्दरगण्डमाला-

जव्रूर्ध्वसर्वगदगुलमगुदोत्थमेहान् ।

यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसशोफकास-

हृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥ २६४ ॥

शीतकल्याणकं घृतम् ।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधुमा रक्तशालयः ।

मुद्रपर्णी पयस्या च काशमरी मधुयष्टिका ॥ २६५ ॥

वलातिवलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् ।

विदारी शतपत्री च शालपर्णी स जीवकः ॥ २६६ ॥

फलं त्रपुसवीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम् ।

एपार्धपलान् भागान् गव्यं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ २६७ ॥

पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

प्रदरे रक्तगुलमे च रक्तपित्ते हलीपके ॥ २६८ ॥

बहुरूपं च यत्पित्तं कामलां च सशोणितम् ।

अरौचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगं मदे भ्रमे ॥ २६९ ॥

तस्णाथानपत्या ये या च गर्भं न विन्दति ।

अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम् ॥ २७० ॥

शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ।

हिक्षाधासे शब्दाद्यं घृतम् ।

शर्टिवचाऽभया कुष्टे पिष्पली विल्वशुष्टिका ॥ २७१ ॥

पलांशं सैन्धवं चव्यं तेजस्वत्यथ पुष्करम् ।

सौवर्चले च भूषाधी भूतीकं चाक्षसंमितम् ॥ २७२ ॥

हिङ्गवर्धकर्पकोपेतं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

चतुर्गुणं जलं चात्र दत्त्वा मृद्विना भिषक् ॥ २७३ ॥

ग्रहण्यशोऽहितं कासहिकोरःपार्वशूलनुद् ।

श्वासान् सन्धिगतांशान्यान् हन्याद्रातकफामयान् ॥ २७४ ॥

नारसिंहं घृतम् ।

वहिर्भेष्टातकं चैव शिशापा खदिरस्तथा ।  
हरीतकी विढङ्गानि जविकथं तथाऽक्षकः ॥ २७५ ॥  
एषामाहृत्य भागांस्तु सम्प्रदशपलोनिमतान् ।  
जलद्रोणयुतान् कृत्वा लोहभाण्डे निधापयेत् ॥ २७६ ॥  
लोहभाण्डे पचेत्तावधावत्पादावशेषितम् ।  
काथं लोहसितं कृत्वा स्थापयेद्विसत्रयम् ॥ २७७ ॥  
त्रिगुणं तु शतावर्या रसं धात्र्यात्र निःक्षिपेत् ।  
निःक्षिपेत्रिगुणं चात्र भृङ्गराजरसं शुभम् ॥ २७८ ॥  
छागक्षीरं च तत्रैव त्रिगुणं च सुयोजयेत् ।  
पवत्वा घृताढकं तेन मधुना सितयाऽथवा ॥ २७९ ॥  
गुडेन वा पिवेत्त्वार्थं केवलं वा पलोनिमतम् ।  
न किञ्चित्परिहार्यं स्याद्वातातपनिपेविणाम् ॥ २८० ॥  
अजीर्णे पिवतश्चापि वनितासेविनस्तथा ।  
नान्धता नायिहानिश्च न वलीपलितं भवेत् ॥ २८१ ॥  
अनेन च भवत्याशु नरः सिंहपराक्रमः ।  
भवत्यश्वजवशैव हेमवर्णश्च जायते ॥ २८२ ॥  
कान्ताऽपि सेविता तेन शुणेरतेश्च शुज्यते ।  
नारसिंहमिति ख्यातं घृतं वलविवर्धनम् ॥ २८३ ॥

विपेऽघृतं घृतम् ।

शिरीपस्य त्वचा व्योपं त्रिफला चन्दनोत्पलम् ।  
द्वे वृले सारिकास्फोटासुरभीनिम्बपाटलाः ॥ २८४ ॥  
वन्युजीवातसीमूर्वावासासुरसवत्सकम् ।  
पाठाङ्गोलाश्वगन्धार्कमूर्लं यष्टशाहपद्मके ॥ २८५ ॥  
त्रिशाला ब्रह्मी द्राक्षा कोविदारः शतावरी ।  
कटभीदन्त्यपामार्गपृथ्विपणीरसाङ्गनम् ॥ २८६ ॥

१ ' निषेवणम् ' इति षा० । २ ' नरसिंहपुर्वरः ' इति षा० ।

शणाभसुरकौ श्वेता कुष्ठं दारु पियहृका ।

विद्वारी मधुकात्सारः करञ्जस्य फलं वचा ॥ २८७ ॥

रजन्यो लोधमसांशाने पिष्ठा साध्यं घृताद्वकम् ।

तुल्याम्बुद्धागगोमूत्रे श्यादके तटिपाचितम् ॥ २८८ ॥

अपस्मारक्षयोन्मादभूतप्रदगरोदरान् ।

पाण्डुरोगान् क्रिमीन मेहान् सप्तीहोद्रकामलान् ॥ २८९ ॥

हनुस्तम्भग्रहादीशं पानाभ्यञ्जननावर्णः ।

हन्यात्संजीवयेचापि विषोदधिमृतान्नरान् ॥ २९० ॥

अभेदममृतं सर्वविपाणां स्यादृतोत्तमम् ।

प्रदृष्टामीपृतम् ।

चतुष्पलं चव्यकचित्रपागतेजस्तिविष्णुपिष्ठलीमूलमेदाः ।

दद्याच्च मुस्तात्रिफलं विशुद्धं मुष्टि समग्रामय पल्लवानाम् ॥ २९१ ॥

आस्फोटजातीपिञ्चुसपर्णपटोलशाखोटकनक्तमालात् ।

एतानि दद्यादथ कुट्रितानि ह्यधिश्रयेत्ताप्रमये कट्टाहे ॥ २९२ ॥

सुकाधितं द्रोणजले तु सम्यक् पादावशिष्टे पुनरुद्धरेत्तद् ।

पलार्धतुल्याऽतिविपा सुभद्रा कल्कीकृतानि द्विपलानि दद्याद् ॥

सयावश्चकं विढस्तन्धवं च पलानि चत्वारि च पिष्ठलीनाम् ।

कल्कैः कपायेण च सिद्धमेतन्मृदग्निसिद्धं द्यवतारयेच ॥ २९४ ॥

पिवेच जीर्णं तु घृतस्य कर्पे विष्टम्भदोपे द्विगुणं पिवेच ।

अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः शाम्यन्ति गुल्माश वहुमकाराः ॥ २९५ ॥

सर्वाः कृमीणामय जातयश शाम्यन्ति सम्यग्विधप्रयोगात् ।

पाण्डामयप्तीहगरोद्रवाश रोगान तं भाविन आपतेयुः ॥ २९६ ॥

सर्वेत मध्यं पिण्डितानि चैव विवर्जकः स्यान्मधुतर्पणस्य ।

नाम्ना तदप्यग्निघृतं प्रसिद्धं वर्द्धि च संदीपयते प्रसद्य ॥ २९७ ॥

१ 'एषो' इत्यध्याद्वारः । २ नामैकदेशेनापि नामग्रहणात् पितृशब्देनात्र  
पितृमदो एषाते ।

प्रदायां भद्रातकायां धृतम् ।

भद्रातकानां द्विपलं पलांशं विदारिगन्धादिकपञ्चमूलम् ।  
जलाढके जर्जरितं विपाच्य विश्वाच्य पूतं विषवेद्धि कल्कः २९८  
रात्रा चिं द्वै सैन्यवयावशुकं विद्वद्वृष्णामधुकं वचा च ।  
सविष्वकर्पूरहुताशहिङुः रात्रादिभिः पाणितलभमाणीः ॥ २९९ ॥  
प्रस्त्य विषकं पयसा समांशं धृतस्य योज्यं कफजे विकारे ।  
शीरोदरे यक्ष्मणि वातरोगे श्वासे सकासे च हितं वदन्ति ३००  
व्यापनवह्नी कफगुलिमनां च कण्ठविकारेषु च शस्तमेतत् ।  
भद्रातकाख्यं नियमेन पीतं जयेच सर्वान् ग्रहणीविकारान् ३०१  
जीर्णज्वरे विष्ववादं धृतम् ।

पिष्पल्यतिविपाद्राक्षासारिवाविल्वचन्दनैः ।  
कडुकेन्द्रयवोशीरशटीतामल्कीघनैः ॥ ३०२ ॥  
त्रायमाणास्थिराधात्रीविष्वभेषजचित्रैः ।  
कल्कैरेतैर्घृतं पकं विच्छिद्य विषमाग्निताम् ॥ ३०३ ॥  
जीर्णज्वरशिरःशूलगुलमोदरहलीमकम् ।  
क्षयकासान् ससंतापान् पार्वशूलपपास्यति ॥ ३०४ ॥  
मायूरपृतम् ।

हेमन्तकाले शिशिरे च सेव्यं चसन्तकाले च मयूरसपिंः ।  
ओण्यादि वर्ही विषभक्षणाच्च वर्षाशरद्वीपमदिनान्यपास्य ३०५  
आहारजातं हि विहङ्गमस्य कीटाच्च सर्पाच्च सरीसृपाश्च ।  
पिपीलिकामत्कुणपक्षिकाच्च तेनोण्यकालेष्वहितो मयूरः ३०६  
तर्थैव काले जलदाभिरामे विषुज्य शुक्रं च मर्दं च वर्ही ।  
कृशत्वमापाति हि हीनतां च शरन्मुखे तेन विषजनीयः ३०७  
अथाऽऽहरेत्स्वस्यमृतं वयस्य निस्तुण्डपत्राद्वनसं यमयूरम् ।  
द्विद्रोणमात्रे पयसो निधाय विपाचयेद्देषजसंप्रयुक्तम् ॥ ३०८ ॥  
सश्रावणी धंशुमती यवासः काकोली मेदे ऋषभो वयस्था ।  
सविष्वदेवा सहदेवसाहा समच्छदान्मूलफले वला च ॥ ३०९ ॥

शतावरीजीवकसोमवल्कमेककशः स्युः पलसंभिताश्च ।  
 ततोऽर्थशिष्टे कथिते सुपूते घृताद्वकं तत्र सुनर्विपाच्यम् ॥ ३१० ॥  
 एषिस्तु कल्कैः खलु कर्पमानेद्रोणेन दुग्धस्य युतैः सुपिण्ठैः ।  
 मुञ्जातकाशोदमथात्मणुसा दृद्धिस्तया तामलकी सवीरा ३११  
 मियालमज्जा मधुकं तर्थव सिद्धे प्रशान्तं गतफेनशब्दम् ।  
 पानेषु भोज्येषु च देयमेतद्वक्तेषु नानाप्रभवेषु चैव ॥ ३१२ ॥  
 मन्दाग्निरेतोविषपीटिताश्च क्षीणक्षताश्चापि कृद्यातिष्ठाः ।  
 कासादिताः शोणितपित्तिनश्च पित्तेषुरेते शिखिसर्पिरुच्यम् ३१३  
 वृष्यं च वल्यं च रसायनं च सर्वेन्द्रियाणां वलवर्धनं च ।  
 ओजःस्वरं श्रीणयते च गात्रं विप्रमेतद्वरनाशनं च ॥ ३१४ ॥  
 एतेन वृद्धाः कृदुर्यलाश्च तर्थव वाग्धवसमाहताश्च ।  
 प्रक्षीणवीर्याश्च रतिप्रसक्ताः श्वियः समागम्य दृष्टीभवन्ति ३१५  
 हिमव्यपाये हिमदग्धपद्मवाः पुनः प्रोद्धन्ति यथा महीरुहाः ।  
 पुनस्तथा यौवनपुष्टिपन्तो नरा भवन्तीह घृतप्रयोगात् ॥ ३१६ ॥

तिभिर औषधयात्यं पूर्णम्

तुला पचेद्विं जीवन्त्या द्रोणेऽपां पादशेषिते ।  
 दत्त्वा चतुर्गुणं क्षीरं घृतप्रस्त्य विपाचयेत् ॥ ३१७ ॥  
 प्रपौङ्डरीककाकोलीपिष्पलीरोधसैन्धव्यः ।  
 शताह्नामधुकद्राक्षासितादारुफलवर्यः ॥ ३१८ ॥  
 कार्पिंकनिंगि तत्पीतं तिमिरापहरं परम् ।  
 अपस्तोरे पद्मगर्वं घृतम्  
 दद्मूलेन्द्रवृक्षत्वद्यमूर्वाभार्गफलवर्यः ।  
 शम्याकश्रेयसीसपर्णापाभार्गफलगुभिः ॥ ३१९ ॥  
 गृतेः कल्कैश्च भूनिष्वचिफलाव्योपचित्रैः ।  
 त्रिष्टुपाधानिशायुग्मसारिवाद्रयपाँप्करैः ॥ ३२० ॥  
 कडकायासदन्त्युग्रानीलिनीक्रिमिशत्रुभिः ।  
 सर्पिरेभिश्च गोक्षीरदधिमृतशकुद्रसैः ॥ ३२१ ॥

सापितं पञ्चगव्याख्यं सर्वापस्मारभूतनुत् ।  
 चतुर्थकशयश्वासानुन्मादांथं नियच्छति ॥ ३२२ ॥  
 ज्वरे महापश्यगव्यं घृतम् ।  
 दशमूलमपामार्गं त्रिफलां कुटजत्वचम् ।  
 सप्तपर्णं हरिद्रे द्वे नीलिनीं कडुरोहिणीम् ॥ ३२३ ॥  
 मुष्ककारभवधे चैव फल्गुमूलं दुरालभाम् ।  
 पलांशकान्यपां द्रोणे साधयेत्पाददशेषिते ॥ ३२४ ॥  
 त्रिवृतानिचुले भार्गीं श्रेयसी मदयन्तिका ।  
 पूतिको रोहिपः पाठा दन्ती बहिस्तथाऽऽदकी ॥ ३२५ ॥  
 किराततिक्तको मूर्वी व्योर्प द्वे चापि सारिवे ।  
 सकपायं घृतप्रस्थमेभिः पिष्टा विपाचयेत् ॥ ३२६ ॥  
 गव्यं शकुद्रसं क्षीरं तक्रं मूर्वं तथा दधि ।  
 तदैकव्यं पचेत्सर्पिः सिद्धं चैवावतारयेत् ॥ ३२७ ॥  
 पञ्चगव्यं महचैतद्विरुद्यातममृतं यथा ।  
 चातुर्थिकं ज्वरं हन्ति मध्रसिद्धो मुनिर्यथा ॥ ३२८ ॥  
 श्वयथुं पाण्डुरोगं च प्रीहाशांसि भगन्दरम् ।  
 उदराणिं तथा गुलं कामलां चापकर्पति ॥ ३२९ ॥  
 तस्माद्विपक् मयुज्जीत विधियुक्तं प्रयोगवित् ।  
 विन्दुसारं घृतम् ।  
 शतावरीवलारास्त्रादशमूलीत्रिकण्ठकान् ।  
 अश्वगन्धासपायुक्तान् कुशकाशसमन्वितान् ॥ ३३० ॥  
 दर्भेष्वमूलसंयुक्तान् शरमूलविमिश्रितान् ।  
 मण्डुवया च सपायुक्तान् द्विपञ्चपलिकान् भिपक् ॥ ३३१ ॥  
 पुनर्नवायाः श्रेतायाः शिफां पलशतोन्मिताम् ।  
 जलद्रोणे मयब्रेन पचेत्सम्यक् चतुर्गुणे ॥ ३३२ ॥  
 निःस्त्राव्य पादशेषे तु कायमपावधिश्रयेत् ।

यवानीपिष्पलीद्रासाथुण्डीयष्टथाहसेन्धवान् ॥ ३३३ ॥  
 द्विपालिकान् विनिःशिष्य शुद्धर्ण पिष्टा विधानतः ।  
 घृतमस्थं पचेत्सम्यक् क्षीरमस्यद्यान्वितम् ॥ ३३४ ॥  
 प्रस्थेनैरण्डत्तेन गुडविंशत्पलैर्युतम् ।  
 एतदीभरपुत्राणां राज्ञा चैव विशेषतः ॥ ३३५ ॥  
 स्त्रीसंभोगरत्तानां च प्राग्भोजनमनिन्दितम् ।  
 ऊरुशूले कटिस्तम्भे योनिशूले च दारुणे ॥ ३३६ ॥  
 वस्तिवाते प्रवृद्धे च वातरोगे मुदुःसहे ।  
 घृतमेतत्पशंसन्ति सुकुमारे रसायनम् ॥ ३३७ ॥  
 क्षात्रे दशगूलायं घृतम् ।

दशमूलयाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ।  
 पुष्करादशशटीविल्वमुरसाव्योपद्वृन्भिः ॥ ३३८ ॥  
 पैयं पथोनुपानं तत्कासे वातकफात्मके ।  
 श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ३३९ ॥  
 रक्तपित्ते कटुशयं घृतम् ।

कहुरोहिणिका मुस्ता हरिद्रा घत्सको वला ।  
 पटोलं चन्दनं मूर्वा त्रायमाणा दुरालभा ॥ ३४० ॥  
 विष्पली पर्षटश्चेव भूनिम्बो देवदारुकम् ।  
 एतैरस्तमितैः सपिंःप्रस्थं क्षीराढके पचेत् ॥ ३४१ ॥  
 रक्तपित्तं ज्वरं दाहं श्वयथुं समगन्दरम् ।  
 अर्शास्यसुग्दरं चैव हन्याद्विस्फोटकांस्तथा ॥ ३४२ ॥  
 गुध्मे दाधिक घृतम् ।

सुपवी पञ्चमूलयौ द्वे साखगन्धा पुनर्नवा ।  
 काला छिन्नरुद्धा चैव रास्ता गोक्षुरको वला ॥ ३४३ ॥  
 शटी पुष्करमूलं च देवदारुस्तथैव च ।  
 एपां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३४४ ॥

१ ‘पैयानुपानं’ इति पा० ।

कोलकानां कुलत्यानां मापाणां च यवैः सह ।  
 प्रस्थं प्रस्थं ततः कृत्वा तस्मिन्नेव समावपेत् ॥ ३४५ ॥  
 तेन पादावशेषेण घृतमस्थं विपाचयेत् ।  
 दद्यादेभिः समं शुक्तमारनालं तुपोदकम् ॥ ३४६ ॥  
 दाढिमाग्रातकद्रावं मातुलुडरसं तथा ।  
 दधि देयं चतुर्भागं गर्भमेषां समावपेत् ॥ ३४७ ॥  
 पुनर्नवोपणं दन्ती त्रीण्येव लवणानि च ।  
 हिंसा रात्रा वला चैव यवानी चाम्लवेतसम् ॥ ३४८ ॥  
 विडङ्गं दाढिमं हिङ्गं ग्रन्थिकं त्रिष्ट्रिता तथा ।  
 द्वौ क्षारावजमोदा च पाठा पापाणभेदकम् ॥ ३४९ ॥  
 ऊपको वृपको भार्गी उद्दंष्टा हपुषा तथा ।  
 अपुपैर्वास्त्रीजानि शतावर्युपकुचिका ॥ ३५० ॥  
 अजाजी चित्रको मूर्वी तुम्बर्स्त्रीजपिष्ठली ।  
 धान्यकं सुरसं चैतान् दद्यादससमान् भिषक् ॥ ३५१ ॥  
 गर्भेणानेन तत्सद्दं पायेयेत्सर्पिरुत्तमम् ।  
 पित्तगुल्मं तथा सर्वान् गुल्मानन्यान्वयोहति ॥ ३५२ ॥  
 एकाङ्गगर्संश्रये पक्षवधे दुष्टे च रेतसि ।  
 हृद्रोगे ग्रहणीरोगे सर्पिरेत्यथाऽमृतम् ॥ ३५३ ॥  
 यक्षमाणं नाशयत्येतदपस्मारं च नाशयेत् ।  
 दाधिकं नाम विख्यातमात्रेयानुमतं सृतम् ॥ ३५४ ॥

युक्ते लश्चनघृतम् ।

तुलां लश्चनकन्दानां पृथक् पञ्चपलादिकान् ।  
 च्युपणत्रिफलादिहुपवानीचव्यचित्रकान् ॥ ३५५ ॥  
 साम्लवेतससिन्धृत्यदेवदारुदं पचेचले ।  
 तेन पके वृतप्रस्थं गुल्मवातविकारनुन् ॥ ३५६ ॥

गुर्मे महापट्टपठं षूतम् ।

नागरस्य तुलार्थं तु जलद्रोणे विपाचयेत् ।

चतुर्भागावशेषं तु कपायमवतारयेत् ॥ ३५७ ॥

शुलेन मस्तुना चैव दाढिमैर्वदरोदकः ।

चतुर्गुणैर्देवैरतैर्धृतपस्थं विपाचयेत् ॥ ३५८ ॥

सौवर्चलं विदं चैव पौतिकं चोपकस्तथा ।

अजाजी पिप्पली चैव हजगन्धा यवाग्रजः ॥ ३५९ ॥

सैन्धवं पञ्चकोलं च हिङ्गं चांद्रिदमेव च ।

एतैः पलार्थकद्रव्यैः शनैर्मृद्रग्निना पचेत् ॥ ३६० ॥

कृभिष्ठिहोदराजीर्णज्वरशुलभमेहकान् ।

वातरोगानदोपांश्च हिकां शूलमरोचकम् ॥ ३६१ ॥

पाण्डुरोगं प्रतिश्यायं दीर्घलयं वह्निसंक्षयम् ।

महापट्टपलमातङ्कान् भिनत्यशनिवह्निरिम् ॥ ३६२ ॥

उम्मादे कल्याणकं षूतम् ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदारेलवालुकम् ।

स्थिराऽनन्ता हरिद्रे द्वे सारिवे द्वे प्रियङ्गवः ॥ ३६३ ॥

नीलोत्पलं च मजिष्ठा दन्ती दाढिमवल्कलम् ।

तालीसपत्रं वृहती मालत्याः कुसुमं त्रुटिः ॥ ३६४ ॥

विड्ग्रं पृथिपर्णीं च कुष्ठे चन्दनपद्मके ।

अष्टाविंशतिभिः कल्कैरतैरक्षममाणकः ॥ ३६५ ॥

चतुर्गुणं जलं दत्त्वा षूतमस्थं विपाचयेत् ।

अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्देऽनले क्षये ॥ ३६६ ॥

वातरक्ते प्रतिश्याये त्रुतीयकचतुर्थके ।

वस्त्रशोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥ ३६७ ॥

कण्ठपाण्डुमयोन्मादविपेष्वसुग्दरेषु च ।

भूतोपहतचित्तानां गदानामचेतसाम् ॥ ३६८ ॥

शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलभद्रम् ।

अलक्ष्मीपापरोगम्बं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ३६९ ॥

कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

उन्मादे द्वितीयं कल्याणं कं धृतम् ।

सारिवाद्रितयं पर्णीं नतं कुष्ठं निशाद्रयम् ॥ ३७० ॥

दाढिमं चन्दनं व्याघ्री निकुम्भा विफलेन्द्रिका ।

तालीसं पद्मकं चैला मञ्जिष्ठोत्पलदारुकम् ॥ ३७१ ॥

इभोपणा विडङ्गानि प्रियहृश्चाञ्चमधेदकः ।

यवानी मुकुलं जात्या मुस्तकं कर्पसंमितम् ॥ ३७२ ॥

कल्केरेपां धृतप्रस्थं सिद्धं कल्याणं समृतम् ।

रक्तपित्तज्वरोन्मादकासकण्ठविनाशनम् ॥ ३७३ ॥

उन्मादे तृतीयं कल्याणं कं धृतम् ।

विशालैलाघरापद्मदेवदार्ढलबालुकैः ।

द्विसारिवानिशाद्रन्दद्विस्थराफलिनीनतैः ॥ ३७४ ॥

वृद्धतीकुष्ठं मञ्जिष्ठानागकेशरदाढिमैः ।

वेणुतालीसपत्रैलामालतीकुमुमोत्पलैः ॥ ३७५ ॥

दन्तिपद्मकचन्द्रेश्च कर्पीशैः सर्पिः पचेत् ।

प्रस्थं, भूतग्रहोन्मादकासापस्मारपापनुद् ॥ ३७६ ॥

पाण्डुकण्ठविषे शोषे मेहं मोहे ज्वरे गरे ।

अरेतस्यनपत्ये च देवोपहतचेतसि ॥ ३७७ ॥

अमेधसि सखलद्वाचि समृतिकामेऽल्पपावके ।

बल्यं मह्नल्यमायुध्यं कान्तिसौभाग्यपुष्टिदम् ॥ ३७८ ॥

कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

उन्मादे महाकल्याणं कं धृतम् ।

एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम् ॥ ३७९ ॥

रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरं चतुरुणम् ।

द्विकाकोलीवरीमेदाकपिकच्छुविपाणिभिः ॥ ३८० ॥

गुर्मे महापद्मर्थं पृतम् ।

नागरस्य तुलार्थं तु जलद्रोणे विपाचयेत् ।

चतुर्मांगावशोपं तु कपायमवतारयेत् ॥ ३५७ ॥

शुक्रेन भस्तुना चैव दाढिर्मैर्विदरोदर्कः ।

चतुर्गुणीद्रवेत्तर्वृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३५८ ॥

सौवर्चलं विदं चैव पंतिकं चोपकस्तथा ।

अजाजी पिष्टली चैव श्वजगन्धा यवाग्रजः ॥ ३५९ ॥

सन्ध्यवं पञ्चकोलं च हिङ्गं चांद्रिदमेव च ।

एतेः पलार्धकिर्द्रव्यैः शर्नमृदग्निना पचेत् ॥ ३६० ॥

कृमिष्टीदेवरजर्णिर्ज्वरगुलममेदकान् ।

वातरोगानशेषांश्च हिङ्गो शूलमरोचकम् ॥ ३६१ ॥

पाण्डुरोगं प्रतिश्यायं दौर्वलयं वक्षिसंक्षयम् ।

महापद्मलमातङ्कान् भिनत्यशनिवदिरिम् ॥ ३६२ ॥

उन्मादे कल्याणकं पृतम् ।

विशाला चिफला कौन्ती देवदार्ढेलबालुकम् ।

स्थिराज्जन्ता हरिद्रेष्वे सारिवे द्रे प्रियङ्गवः ॥ ३६३ ॥

नीलोत्पलं च मञ्जिष्ठा दन्ती दाढिमवल्कलम् ।

तालीसपत्रं वृहती मालत्याः कुसुमं त्रुटिः ॥ ३६४ ॥

विड्ग्रं पृभ्रिपर्णी च कुषुं चन्दनपद्मकं ।

अष्टाविंशतिभिः कल्करेत्तरक्षप्रमाणकैः ॥ ३६५ ॥

चतुर्गुणं जलं दत्त्वा धृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

अपस्मारे ज्वरे कासे शोपे मन्देज्जले क्षये ॥ ३६६ ॥

वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।

वस्त्रशोभूत्वकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥ ३६७ ॥

कण्ठपाण्डुमयोन्मादविपेष्वसुग्दरेषु च ।

भूतोपहतचित्तानां गददानामचेतसाम् ॥ ३६८ ॥

शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्वलपदम् ।  
अलक्ष्मीपापरोगम्ब्रं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ३६९ ॥  
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

उन्मादे द्वितीयं कल्याणकं घृतम् ।

सारिवाद्वितयं पर्ण्यां नतं कुष्ठं निशाद्यम् ॥ ३७० ॥  
दाढिमं चन्दनं व्याघ्री निकुम्भा त्रिफलेन्द्रिका ।  
तालीसं पद्मकं चैला माजिष्ठोत्पलदारुकम् ॥ ३७१ ॥  
इभोपणा विडङ्गानि प्रियहृश्चाशमभेदकः ।  
यवानी मुकुलं जात्या मुस्तकं कर्पसंमितम् ॥ ३७२ ॥  
कल्करेषां घृतप्रस्थं सिद्धं कल्याणकं स्मृतम् ।  
रक्तपित्तज्वरोन्मादकासकण्ठविनाशनम् ॥ ३७३ ॥

उन्मादे तृतीयं कल्याणकं घृतम् ।

विशालैलाधरापद्मदेवद्रवेलवालुकैः ।  
द्विसारिवानिशाद्वन्द्वद्विस्थिराफलिनीनतैः ॥ ३७४ ॥  
बृहतीरुष्टुमजिष्ठानागकेशरदाढिमैः ।  
वेष्टतालीसपत्रैलामालतीकुमुमोत्पलैः ॥ ३७५ ॥  
दन्तिपद्मकचन्द्रश्च कर्पशैः सर्पिः पचेत् ।  
प्रस्थं, भूतग्रहोन्मादकासापस्मारपापनुद् ॥ ३७६ ॥  
पाण्डुकण्ठविषे शोषे मेहे मोहे ज्वरे गरे ।  
अरेतस्यनपत्ये च देवोपहतचेतसि ॥ ३७७ ॥  
अमेधसि सखलद्राचि स्मृतिकामेऽल्पपावके ।  
वल्यं मङ्गल्यमायुध्यं कान्तिसौभाग्यपुण्डिम् ॥ ३७८ ॥  
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

उन्मादे महाकल्याणकं घृतम् ।

एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पञ्चत्वैकविंशतिम् ॥ ३७९ ॥  
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्णिकीरं चतुर्गुणम् ।  
द्विकाकोलीवरीमेदाकपिकच्छुविपाणिभिः ॥ ३८० ॥

शूर्पपर्णीयुतेरेभिर्महाकल्याणकं परम् ।  
 वृंहणं सन्निपातम्नं पूर्वस्मादधिकं गुणैः ॥ ३८१ ॥  
 विसर्पे महागोरं घृतम् ।

क्षीरघटप्रवालानि कुमुदान्युत्पलानि च ।  
 सौगन्धिकानि पद्मानि शालकानि विसानि च ॥ ३८२ ॥  
 मृणालकुशकासेक्षुदर्भगुन्देक्षुवालिकाः ।  
 नलवेतसकुम्भीकनालीसर्जार्जुनस्वनाः ॥ ३८३ ॥  
 कद्मीपत्रशेवालकसेरुधोटकानि च ।  
 पर्णकमधुकानि श्रीपर्ण्यामलकानि च ॥ ३८४ ॥  
 लामज्जकं विदारी च चन्दनं च शतावरी ।  
 सपङ्गा धातकी रोध्रं जीवनीयानि यानि च ॥ ३८५ ॥  
 शीतवीर्यास्तु ये केचिज्जलजानूपसंश्रिताः ।  
 एतत्संभृत्य संभारं क्षीरद्रोणेषु सप्तसु ॥ ३८६ ॥  
 पचेन्निस्ताव्य तच्छीतं मन्थानेन विमन्थयेत् ।  
 यत्ततो जायते सर्पिस्तत्पचेत्पुनरेव तु ॥ ३८७ ॥  
 द्रव्यैस्तरेव पूर्वोक्तैः शर्नमृद्गमिना भिपक्ष ।  
 हन्यादेतद्विसर्पास्तु सर्वधातुश्रितान् व्रणान् ॥ ३८८ ॥  
 तोयमग्निं यथा दीप्तं नाम्ना गौरं घृतं महत् ।  
 चस्ताहं घृतम् ।

शङ्खपुष्पीगुह्यन्युग्राशतावर्यकवालिकाः ॥ ३८९ ॥  
 मलपूर्ण ब्रह्मसोमां च कल्वीकृत्य घृतं पचेत् ।  
 दुर्गं चतुर्गुणं दत्त्वा वातश्लेष्महरं च तत् ।  
 मेधाकरं तथाऽऽयुष्यं सप्ताङ्गमिति कीर्तितम् ॥ ३९० ॥

अथाहं घृतम् ।

मण्डकीं सवचां सशङ्खकुमुमां ग्राहीं गुड्चीं तथा  
 श्वेतां वाकुचिकां वरीपरियुतां सव्रह्मसीयर्चलाम् ।

कृत्वाऽऽशैः पैलिकैरिमानि विधिवद्व्याणि तैः कलिकौतः  
सर्पिः भ्रस्यमयादकेन पयसा युक्त्या पचेद्वद्विद्यान् ॥ ३९१ ॥  
नाम्नाऽष्टाङ्गविदं विदेहविहितं ख्यातं धृतं यः पिवेत्  
स श्लोकस्य सहस्रमेकदिवसे श्रुत्वाऽखिलं धारयेत् ।  
अक्षीणमातिभः सुचारुवदनः स्पष्टभिभाषी भवे-  
छोके शुक्रवृहस्पतिप्रतिसमः पूज्यश्च राजो भवेत् ॥ ३९२ ॥  
बालप्रदे फलघृतम् ।

वर्दिष्टकुपुमजिष्ठाकदुकैलानिशाद्रौयैः ।  
तोयदत्रिकलाकौन्तीवाजिगन्धामखुर्मैः ॥ ३९३ ॥  
वचामेदाजमोदाहाकाकोलीयाष्टिपद्मकैः ।  
सशर्करैहितं सर्पिः पके क्षीरचतुर्गुणम् ॥ ३९४ ॥  
वालानां ग्रहजुष्टानां पुंसां दुष्टाल्परेतसाम् ।  
ख्यातं फलघृतं स्त्रीणां वन्ध्यानां चापि गर्भदम् ॥ ३९५ ॥  
चातुर्थक्ञवेर महापैशाचकं धृतम् ।  
त्रायमाणा जया वीरा नाकुली गन्धनाकुली ।  
कायस्या च वयस्या च चोरकश्च पलङ्घणा ॥ ३९६ ॥  
सूकरी जटिला छत्रा सातिच्छत्रा सुमकटी ।  
मोरदा पूतना केशी स्थिरा कदुकरोहिणी ॥ ३९७ ॥  
महापुरुपदन्ता च द्वितीकाली कुटनदा ।  
सिद्धमेभिर्घृतं पेयं चातुर्थकविनाशनम् ॥ ३९८ ॥  
महापैशाचकं नाम सर्पिरेतज्जवरापहम् ।  
भूतग्रहमपस्मारमुन्मादं च नियच्छति ॥ ३९९ ॥  
शोषे जोवन्त्यादं धृतम् ।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।  
शटीं पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोष्ठुरकं वलाम् ॥ ४०० ॥  
त्रायमाणां च भूधारीं नीलोत्पलदुरालभे ।  
पिपर्लीं च समं पिष्ठा धृतमेभिर्विपचयेत् ॥ ४०१ ॥

एतद्याधिसमूदस्य रागराजस्य चोन्द्रितम् ।  
एकादशविर्भु रूपं सर्पिरभ्यं व्यपोहति ॥ ४०२ ॥

महतिकं पृष्ठम् ।

निम्बः सप्तच्छदः पाठा गुह्यी सशतावरी ।  
कृतमालः करञ्जी द्वाँ खदिरो वत्सको यवः ॥ ४०३ ॥  
पर्षट्य षटोलभ विशाला चित्रकस्तथा ।  
एतानि समभागानि कथायमुपकल्पयेत् ॥ ४०४ ॥  
भेषजानि प्रपेत्याणि तत्रेमानि प्रदापयेत् ।  
भृनिम्बः कटुका मुस्ता दन्ती पर्षटको वचा ॥ ४०५ ॥  
विशालातिविषे मूर्वा यष्ट्याहं सारिवाद्रयम् ।  
अबलगुजा हरिद्रे द्रृःस्पर्शी रक्तचन्दनम् ॥ ४०६ ॥  
कृमिन्द्रः पिष्पली पाठा चित्रको देवदारु च ।  
भृङ्गातकान्युगीरं च शम्पाकः सकालिङ्गकः ॥ ४०७ ॥  
एतरक्षमाणेस्तु घृतस्यार्थाद्विकं पचेत् ।  
द्विगुणस्तु रसो धात्र्या घृतात्काथश्चतुर्गुणः ॥ ४०८ ॥  
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा सर्वकुरुत्विमुच्यते ।  
वावरक्तं सवीसर्पं रक्तस्वावं च दारुणम् ॥ ४०९ ॥  
पिचासुक्कामलाकण्डगरान् योगशतैरपि ।  
असाधितान् महारोगान् महातिकं प्रसाधयेत् ॥ ४१० ॥

कातव्याधी दशमूलाद्यं पृष्ठम् ।

द्रोणेऽभ्यसः पचेद्वागान् दशमूलयाथतुप्पलान् ।  
यवकोलकुलत्यानां भागैः प्रस्थोन्मितैः सह ॥ ४११ ॥  
पादशेषे रसे पिष्टैर्जीवनीयैः सशक्तैः ।  
तथा खर्जूरकाश्मर्यद्राशावदरफलगुभिः ॥ ४१२ ॥  
सक्षीरैः सर्पिषः प्रस्थं सिद्धं केवलवातनुत् ।  
निरत्ययं प्रयोक्तव्यं पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ ४१३ ॥

काथे वृहत्पटकारीषुतम् ।

समूलपत्रशाखायाः कण्टकार्या रसादेके ।  
घृतप्रस्थं वलाव्योपविडङ्गशटिचित्रकैः ॥ ४१४ ॥

सौवर्चलयवसारविल्वामलकपौष्करैः ।  
सैन्धवग्रन्थिपर्णोग्रादेवदारुपयोधरैः ॥ ४१५ ॥

वृश्चिववृहतीपव्यायवानीदादिमर्थिभिः ।  
द्राक्षापुनर्नवाचव्यदुरालम्भाम्लवेत्सैः ॥ ४१६ ॥

शृङ्गीतामलकीभार्गीराक्षागोक्षुरकैः पचेत् ।  
कल्कैश्च सर्वकासेषु हिकाष्वासेषु शस्यते ।  
कण्टकारीघृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ४१७ ॥

प्रणे जात्यायं घृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकडुकादार्वानिशासारिवा-  
मज्जिष्ठाभयसिवयत्तुत्थमधुकैर्नक्ताहवीजैः समैः ।  
सरिः सिद्धमनेन मूक्षमवदना भर्माश्रिताः स्त्राविणो  
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुद्धयन्ति रोहन्ति च ४१८  
प्रवाहिकायां अशूश्वरायं घृतम् ।

ऋूषणं त्रिफला निम्बं चित्रको गजपिष्ठली ।  
विल्वं कक्कोटिका हिंसा विडङ्गानि निदिग्धिका ४१९  
घृतप्रस्थं पचेदेभिर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे ।  
पीतं प्रयोगतः काले हन्यादेतत्पवाहिकाम् ॥ ४२० ॥

रक्तपिते कसेहकं घृतम्

द्राक्षेषुकाशर्मर्यशतावरीणां तथा विदार्याः स्वरसस्य चैव ।  
कसेहकाणां तु तथा कपायं प्रस्थं पृथक् क्षीरचतुर्गुणं च ४२१  
मृतं तु वर्या अथ सिन्दुवारात्रायन्तिकाया अपि कल्कसिद्धम् ।  
प्रायोगिकं सर्पिलदाहरन्ति कसेहकं मारुतापित्तघाति ।  
विसर्पदाहज्वररक्तपिते क्षीणक्षतानां च रसायनं च ॥ ४२२ ॥

नेत्रोगे द्राक्षायं शृतम् ।

द्राक्षा प्रधाना सितशर्करा च राजादनं स्यान्मधुयष्टिका च ।  
नीलोत्पलं योजनवल्लिका च काकोलिके पद्मकजीवंको च ॥४२३॥  
द्वथसप्तमाणैर्विपचेद्वृतस्य प्रस्थं समग्रं पयसा च तुल्यम् ।  
नेत्रास्तराजीपटलानि काचमश्चुप्रसेकं तिभिरं च हन्ति ।  
द्युष्टिप्रसादं च परं करोति शिरोर्धरोगे च हितं नरणाम् ॥४२४॥

रक्तपित्ते दाढिमायं शृतम् ।

दाढिमं तिन्तिठीकं च नागपुष्पं शतावरी ।  
काकोली क्षीरकाकोली विदारी यशहस्तकः ॥ ४२५ ॥  
बीजपूरकमूलं च राजद्वक्सात्मगुम्योः ।  
कुषुं चेति समैरत्तैर्वृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४२६ ॥  
चतुर्गुणेन दुग्धेन जलेनाणगुणेन च ।  
तत्सर्पिः पिवतः सिद्धं कासञ्चासापतानकाः ॥ ४२७ ॥  
हृद्रोगो रक्तपित्तं च द्युषिराद्यान्ति संक्षयम् ।  
योनिरोगे वृद्धतयमूलायं एतम् ।

पञ्चमूलं वृहद्वाधी त्रिवृद्देरण्डकः पलम् ।  
प्रत्येकं, तिल्वकस्याथ प्रस्थार्थं प्रस्थमुत्तमा ॥ ४२८ ॥  
जलद्रोणे विपाच्येतद्वाहं पादावशेषितम् ।  
पादरोपे घृतप्रस्थं दध्याद्वक्युतं न्यसेत् ॥ ४२९ ॥  
पलत्रयं यवक्षारकलं युक्त्या विपाचयेत् ।  
योनिरोगेऽथ गुलमेषु वर्धमव्यप्युदरेषु च ॥ ४३० ॥

अर्शसे विषत्यायं शृतम् ।

पिष्टलीपरिच्छिङ्गनागरं मातुलुड्नमय विलवशुष्टिका ।  
कुमुषान्वकमयाभ्लवेतसं क्षारवन्ति लवणानि पक्ष च ॥४३१॥  
तिन्तिठीकमय कारवी वचा दाढिमं च चविका तथैव च ।  
चित्रकं च सपुनर्नवं भवेद्वस्त्रिपिष्टलियुता द्यजाजिका ॥४३२॥

शुक्तिका वदरमूलपौष्टकं पत्रेकण सह तुम्बरुः स्मृतः ।  
 कर्षभागसाहितं तथा द्वे चूङ्णपिण्यमय संनयेत्ततः ॥ ४३३ ॥  
 प्रस्थमत्र तु घृतस्य दापयेद्भ्र एव च भवेत्तथाद्कम् ।  
 सर्वभेतदभिश्चय शास्त्रतः पाचयेत मृदुनाऽग्निना सुखम् ॥ ४३४ ॥  
 मारुतोपहतगात्रचेतसां पार्वपृष्ठद्वुजद्वुरोगिणाम् ।  
 क्षयगरविपदूपितान् मनुष्यान् गतवयसो बलवर्णविप्रयुक्तान् ।  
 घृतमिदमगदान् करोति सद्यः पवनकृतान् शमयेच सर्वरोगान् ।

शिरोरोगे मायूरं घृतम् ।

दशमूलीवलारास्त्रात्रिफलामधुकैः सह ।  
 मायूरं पक्षपादाच्छशकृत्पित्तास्यवर्जितम् ॥ ४३५ ॥  
 जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत् ।  
 मधुरैः कार्पिकेद्रव्यैः शिरोरोगादितापहम् ॥ ४३६ ॥  
 कण्ठनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् ।  
 मायूरमिति विख्यातमूर्ध्वज्ञुगदापहम् ॥ ४३७ ॥

महामायूरं घृतम् ।

एतेनैव कपायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।  
 चतुर्गुणेन तोयेन कल्कैरेभिश्च कार्पिकैः ॥ ४३८ ॥  
 जीवन्तीत्रिफलमेदामृद्रीकर्धिपूर्वकैः ।  
 समझाचविकाभागीकाश्मरीसुरदाहूभिः ॥ ४३९ ॥  
 आत्मगुतामहामेदातालखर्जूरमस्तकैः ।  
 मधुरापिण्डवर्जूरशृङ्गीजीवकपद्मकैः ॥ ४४० ॥  
 शतावरीविदारीक्षुबृहतीसारिवायुतैः ।  
 शुनर्नवातुगाक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः ॥ ४४१ ॥  
 मधुकाक्षोटवातामसुआताभिषुकैरपि ।  
 द्रव्यैरभिर्यथालाभं घृतं सम्यग्विपाचयेत् ॥ ४४२ ॥  
 तत्पकं नावनेऽभ्यङ्गे पाने वस्तौ च योजयेत् ।  
 शिरोरोगोप सर्वेष छासे भासे च टारणे ॥ ४४३ ॥

मन्यापृष्ठग्रहे शोपे स्वरभेदे तथाऽर्दिते ।

योनिशुक्रप्रदोपेषु शस्तं चन्द्र्यासुतप्रदम् ॥ ४४५ ॥

ऋतुस्लाता तथा नारी पीत्वा पुत्रं प्रसूयते ।

महामायूरमित्येतदृतप्रात्रेयपूजितम् ॥ ४४६ ॥

अशोरोगेऽवाक्पुस्त्यायं घृतम्

अवाक्पुष्टी वला दार्ढा पृष्ठिपर्णा त्रिकण्टकः ।

न्यग्रोधोदुम्बराभृत्यशुद्धाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ ४४७ ॥

चतुर्प्रस्थे शृतं प्रस्थं कपायमवतारयेत् ।

कल्कार्थं तत्र देया तु जीवन्ती कडुरोहिणी ।

पिष्पली पिष्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ४४८ ॥

कलिङ्गाः शालमलीपुष्टं वीरा चन्दनमञ्जनम् ।

कटफलं चिवको मुस्ता श्रियद्वयतिविपे स्थिरा ॥ ४४९ ॥

कमलोत्पलाकिञ्जल्कः समझा सनिदिग्धिका ।

बिल्वं मोचरसः पाठा ग्रादं कर्पसमं पृथक् ॥ ४५० ॥

सुनिपण्णकचाह्नेयोः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च ।

सर्वरोभिर्यथोद्दिष्टृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४५१ ॥

एतदर्शः स्वतीसारे त्रिदोपे रुधिरसुतौ ।

प्रवाहणे गुदञ्जेष्वि पिच्छासु विविधासु च ॥ ४५२ ॥

उन्मादे वहुशशापि शोफे शूले गुदाश्रये ।

मूत्रग्रहे च मन्देऽप्त्रौ मूढवातेऽरुची तथा ॥ ४५३ ॥

प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिं लवर्णाग्निवर्धनम् ।

विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ४५४ ॥

अपतन्त्रके शुक्रनासायं घृतम् ।

बृहत्यौ शुक्रनासा च नागवल्ली महीपथम् ।

निचुलश्वेत भार्गी च काकादन्युपचेलिका ॥ ४५५ ॥

वर्षीभूथेति तेस्तुलयैरक्षमात्रैः पचेऽन्निपक् ।

तोयादके घृतप्रस्थं सिद्धं तथापि पाययेत् ॥ ४५६ ॥

कासं श्वासं महाहिकां हृद्रोगं सापत्रकम् ।  
नातिक्रामेदिदं सर्पिर्वेलामिव महोदाधिः ॥ ४५७ ॥

उन्मादे चैतसं पृतम् ।

इयामा मधुरसा रास्ता दशमूलं शतावरी ।  
श्वदंग्रा शणमूलं च तैर्युज्ज्या काथकलिकौः ॥ ४५८ ॥  
साधितं चैतसं नाम घृतं चेतोविकारजुत् ।  
उन्मादमद्मूर्छायज्वरापस्मारभेषजम् ॥ ४५९ ॥

क्षीणक्षते समदुग्धकं पृतम् ।

पोडशभिर्जलपात्रैर्मृद्रिकायाः पलानि दश पदं च ।  
अष्टौ मधुकपलानि छागान्मांसात्तुलार्धं च ॥ ४६० ॥  
अवशिष्टादतोयं पूतं शीतं कपायमवतार्य ।  
दत्त्वा कपायतुल्यं पयोऽथ नवसर्पिषः प्रस्थम् ॥ ४६१ ॥  
ऋणभक्तीवक्मेदाविदारिवीरात्मगुमानाम् ।  
भव्याक्षोटनिकोचकगृह्णाटकपद्मकबीजानाम् ॥ ४६२ ॥  
भागानक्षसमानथं संसाधयेत् मृदग्नी ।  
सम्यक् सिद्धे तस्मिन् सितर्शकरापलान्यष्टौ ॥ ४६३ ॥  
मधुनश्च पलान्यष्टौ चत्वारि पलानि पिष्पलीचूर्णात् ।  
समदुग्धकघृतमेतज्जनकेश्वरपूजितं संमुद्दिष्टम् ॥ ४६४ ॥  
क्षीणक्षतेऽल्पशुक्रे तद्रक्तपैत्तिकेषु रोगेषु ।  
त्वीकामेषु च देवं वल्यं दृष्ट्यं च घृतमेतत् ॥ ४६५ ॥

वातशुले द्विहगवायं पृतम् ।

हिङ्गुसौवर्चलव्योपविददादिमदीप्यकौः ।  
पुष्कराजाजिधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकौः ॥ ४६६ ॥  
शटीवचाजगन्धैलाप्तुरसैर्दधिसंयुतैः ।  
शूलानाहर्हं सर्पिः साधयेद्रात्रगुलिमनाम् ॥ ४६७ ॥

इति शीघ्रोऽलग्नाधिते गदनिश्रद्धे प्रयोगस्तदे प्रथमो पृताधिकारः समाप्तः ।

अथातो द्विसीयस्तैलाधिकारः प्रारम्भते ।

३४ इष्टव्यवहारानुसारम् ।

फुडकालायूधीं इ तुत्यं रोचना हरिदि दे ।  
चृहतीकल्पेरण्डः सविशालविवरणो मूर्चा ॥ १ ॥  
कासीसदिहुन्योपमुरदाखुम्बरविद्वन् च ।  
लाङ्गलफी कुटनत्वरु कुडकाल्या रोहिणी चैव ॥ २ ॥  
सर्पपतैलं कलहर्मैत्रे च चतुर्गुणे गवां साध्यम् ।  
कण्ठकृष्टविनाशनमभ्यङ्काङ्कातकफाहन्त् ॥ ३ ॥

३५ भौतिकाय तेलम् ।

मरीचदारुभद्रश्रीद्विरिद्राविष्टद्वनैः ।  
पलिकेमूर्चविष्टेत्तु विषस्यार्थपत्रेन च ॥ ४ ॥  
आद्वीरसार्कमसीरगोवकुद्रससंयुतम् ।  
प्रस्यं सर्पपतैलस्य रिद्वपाशु व्यपोहति ॥ ५ ॥  
पानार्थः शीलितं कुष्ठदुष्टनाढीवणापचीः ।  
वातव्याधो वलातेलम् ।

वलाया जातसारायास्तुलां कुर्यात्सुकुष्ठिताम् ॥ ६ ॥  
पचेचोयचतुर्दणे चतुर्भागावरेषिते ।  
पलानि दश पिण्डानि वलायास्तत्र दापयेत् ॥ ७ ॥  
लुञ्जितानां तिलानां च दद्याचैलाढकद्रवम् ।  
चतुर्गुणेन तोयेन पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ८ ॥  
वातव्याधिपु सर्वेषु रक्तपित्ताव्रयेषु च ।  
व्यापत्रामु च योनिषु शस्तं नष्टे च रेतसि ॥ ९ ॥  
तालुशोपं तृपां दाहं पार्वथूलमसृग्दरम् ।  
इन्ति शोषमपस्मारं विसर्पे सशिरोग्रहम् ॥ १० ॥  
आयुर्वर्णकरं चैव वलातैलं प्रजाकरम् ।

वातव्याधी वृहद्ब्रह्मतैलम् ।

युलं वृहद्ब्रह्मापास्तु चतुर्दोषेऽभसः पचेत् ॥ ११ ॥  
 समुत्तार्य ततः सम्यग्दशभागस्थिते रसे ।  
 दधिपण्डेषु निर्यासयुक्तैस्तैलादकं समैः ॥ १२ ॥  
 पचेत्साजपयोर्धीर्णैः कल्कैरभिः पलोन्मितैः ।  
 शटीसरलः वृंलामजिष्ठागुरुचन्दनैः ॥ १३ ॥  
 पद्मकातिवलामुस्तारूपपर्णीहरेणुभिः ।  
 यष्ट्याहसुरसव्याघ्रनर्खर्पभकजीवकैः ॥ १४ ॥  
 पलाशरसकल्पूरीनलिकाजातिकोशकैः ।  
 सृक्काकुडुम्बशैलेयमालतीकदफलाम्बुभिः ॥ १५ ॥  
 त्वचाकुन्दुरुकर्षूरुरुप्कश्रीनिवासकैः ।  
 लवह्ननर्खकङ्गोलकुष्ठमोसीमियहृभिः ॥ १६ ॥  
 स्थौणेयतगरथ्यामवचादमनचोरकैः ।  
 सनागकेशरैः, सिद्धं विधिना च मयोजयेत् ॥ १७ ॥  
 कासं श्वासं ज्वरं छर्दि शूलं हिक्कां क्षतक्षयम् ॥ १८ ॥  
 श्रीहं शोपमपस्मारमलक्ष्मीं च प्रणाशयेत् ।  
 वलातैलमिदं श्रेष्ठं वातव्याधिदर्शं परम् ॥ १९ ॥

वातव्याधी तृतीयं वलातैलम् ।

बलाशतकपाये तु तैलस्यार्धादकं पचेत् ।  
 कल्कैर्मधुकमजिष्ठाचन्दनोत्पलपद्मकैः ॥ २० ॥  
 शूक्ष्मैलापिण्डलीकुष्ठत्वगेलागर्केशरैः ।  
 गन्धेश्च जीवनीयैश्च क्षीरादकसमायुतम् ॥ २१ ॥  
 एतन्मृदग्धिना पकं स्थापयेद्वाजने शुभे ।  
 सर्ववातविकारांस्तु सर्वधात्वन्तराश्रयान् ॥ २२ ॥  
 शमयेत्तैलमेतत्तु चित्तज्ञाप्रभिव मारुतः ।  
 वलातैलं नरेन्द्रार्द्धमेतद्रातविकारज्ञुत् ॥ २३ ॥

मूढगमे चतुर्थं वलातैषम् ।

वलामूलकपायस्य दशमूलीकृतस्य च ।  
 यवकोलकुलत्यानां काथस्य पयसस्तथा ॥ २४ ॥  
 अष्टावण्टौ शुभान् भागांस्तैलादेकं तदेकतः ।  
 मधुरं गणमावाप्य पचेत् सैन्धवसंयुतम् ॥ २५ ॥  
 अगुरुं सर्जनिर्यासं सरलं देवदारु च ।  
 मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुसारिवाम् ॥ २६ ॥  
 मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम्  
 शतावरीं चाश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ।  
 सौवर्णे साधु सिद्धं तद्राजते गृन्मयेऽपि वा ॥ २७ ॥  
 प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् स्वनुगुम्नि निधापयेत् ।  
 वलातैलमिदं ख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ २८ ॥  
 यथावलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ।  
 या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥ २९ ॥  
 मायितेऽभिहते धातुक्षीणे मर्महते तथा ।  
 भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वधैर्व प्रयुज्यते ॥ ३० ॥  
 एतदाक्षेपकार्दीशं वातव्याधीनपोहति ।  
 नरः प्रत्यग्रथातुस्तु भवेत्सुस्थिरर्यौवनः ॥ ३१ ॥  
 हिक्कां कासमधीमन्यं गुलमं श्यासं च दुस्तरम् ।  
 पण्मासान् संप्रयुज्यैतदब्रह्मद्विष्टिं व्यपोहति ॥  
 राज्ञामेतत्मर्कर्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ।  
 मुखिनः मुकुमाराश्च घनिनश्चापि ये नराः ॥ ३२ ॥  
 वातव्याधो प्रसारणीतैलम् ।  
 उत्पाद्य मूलपत्राभ्यां जातसारां प्रसारणीम् ।  
 ग्रन्तं पलानि संकुच्य कटाहे समविश्रयेत् ॥ ३३ ॥  
 वारिद्रोणसमायुक्तं चतुर्भागावशेषितम् ।  
 कपायसमपात्रं तु तैलमन्नं प्रदापयेत् ॥ ३४ ॥

शुण्ठीपलानि पञ्चव रासनायाश्च पलद्वयम्  
दधस्तथाऽऽहकं दत्त्वा द्विगुणं चाम्लकाज्ञिकम् ।  
यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम् ॥ ३५ ॥  
द्वे पले पिष्पलीमूलाचित्रकस्य पलद्वयम् ।  
प्रसारणीपले द्वे च द्वे पले मधुकस्य च ॥  
एतत्सर्वं समालोहृष्टं शनैर्मृद्ग्रन्थिना पचेत् ॥ ३६ ॥  
एतदभ्यज्ञनं श्रेष्ठं नस्यकर्मणि शस्यते ।  
पाने वस्तौ च द्रातव्यं न क्वचित्विहन्यते ॥ ३७ ॥  
अशीति वातरोगाणां तैलमेतद्विपोहाति ।  
गृधर्सीं सास्थिभङ्गां च मन्दाग्रित्वं च नाशयेत् ॥ ३८ ॥  
अपस्मारमथोन्मादं विद्रधिं मन्दगामिताम् ।  
स्वगताश्चापि ये वाताः सिरासन्धिगताश्च ये ॥ ३९ ॥  
जानुगुल्फगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च तान् ।  
अर्खं वा वातसंभग्नं नरं वा जर्जरीकृतम् ॥ ४० ॥  
सर्वान् प्रशमयत्येतत्तैलमात्रेयपूजितम् ।  
प्रजाकरं च बन्ध्यानामिन्द्रियर्थ्यकारकम् ॥ ४१ ॥  
एतेनान्धरुद्धणीनां वहुपुत्रं कुलं कृतम् ।  
तैलं चेदं प्रसारण्या वलमांसविवर्धनम् ॥ ४२ ॥  
धन्यं प्रजाकरं श्रेष्ठं वार्धकये चापि सेवितम् ।  
पहुर्ण्यः पीठसर्पी वा पीत्वैतत्संप्रधावति ॥ ४३ ॥

द्वितीयं प्रधारणात्तैलम् ।

प्रसारण्यास्तुलामेकां वलामूर्लं तदर्धकम् ।  
शतावर्यश्चगन्धा च शतपुष्पा पुनर्नेवा ॥ ४४ ॥  
गुह्यची दशमूर्लं च चित्रकां मदनं शटी ।  
पलांशकं समापोद्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४५ ॥  
चतुर्भागावशेषं तुं कणायमवंतारयेद् ।  
शतादां मधुकं रासां पिष्पलीं नामरं बचाम् ॥ ४६ ॥

कुष्ठं हरेणुकां मांसीमियद्विवन्द्रयवान् विदम् ।  
 सैन्धवं शृङ्खवेरं च यवक्षारं सचित्रकम् ॥ ४७ ॥  
 मधुलिकां नखं चैव पालिकं शुद्धणपेपितम् ।  
 पचेत्तलाढकं पूतमारनालपयोयुतम् ॥ ४८ ॥  
 एतदभ्यञ्जनं श्रेष्ठं नस्यकर्मानुवासने ।  
 गृध्रसीमस्थिभद्रं च मन्दाग्नित्वं तथा नृणाम् ॥ ४९ ॥  
 अपस्मारं तथोन्मादं विद्रिधि मन्दग्नामिताम् ।  
 त्वगताश्चापि ये वाताः सिरासन्धिगताश्च ये ॥ ५० ॥  
 अर्थं वा वातसंभग्नं नरं वा जर्जरीकृतम् ।  
 सर्वान् प्रशमयन्त्येतत्तेलमाव्रेयपूजितम् ॥ ५१ ॥  
 स्थिरीकरणमेतद्वि वलीपलितनाशनम् ।  
 इन्द्रियाणां वलं कुर्याद्वर्णादार्यकरं तथा ॥ ५२ ॥  
 वल्यं प्रजाकरं श्रेष्ठं वार्धक्ये चापि सेवितम् ।  
 पद्मुर्वाऽप्यथवा खञ्जः पीत्वा तैलं प्रधावति ॥ ५३ ॥  
                 वातरोगे तृतीयं प्रसारणीतैलम् ।  
 उत्पाद्यमूलपत्राभ्यां जातसारां मसारणीम् ।  
 शतं पलानि संकुच्य कटाहे समधिश्रयेत् ॥ ५४ ॥  
 दशमूली वला रास्ता तथा सहचरामृते ।  
 शतावरी श्वदंष्ट्रा च हेरण्डः कपिकच्छुका ॥ ५५ ॥  
 पृथग्दशपलान् भागान् मन्दाग्नौ समधिश्रयेत् ।  
 वारिद्रोणसमायुक्ते चतुर्भागावशेपितम् ॥ ५६ ॥  
 कपायसमभागं तु तैलमत्र प्रदापेयत् ।  
 प्रशस्ते च दिने कार्यं नक्षत्रे चापि शोभने ॥ ५७ ॥  
 देवदारु वचां गूस्तं शताङ्गीं मधुयापिकाम् ।  
 पिप्पलीं मधुकं रास्तामष्टवर्गेण संयुताम् ॥ ५८ ॥  
 चित्रकं पद्मकोशीरे कुष्ठं व्याघ्रनखं शटीम् ।  
 शुष्ठीसैन्धवमङ्गिष्ठाः पिष्ठा कल्कानि कारयेत् ॥ ५९ ॥

दधिमस्त्वम्लथुक्तानां तथा मांसरसस्य च ।  
 प्रत्येकमाहं दद्याच्छनैर्मृदग्रिना पचेत् ॥ ६० ॥  
 एतदभ्यङ्गनं पानं नस्यकर्मानुवासनम् ।  
 पृष्ठपार्षव्रहे शूले सक्रियवद्व्ययोस्तथा ॥ ६१ ॥  
 एकाङ्गपक्षवाते च हनुमन्याशिरोग्रहे ।  
 वाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दापयेत् ॥ ६२ ॥  
 अभ्यद्वात्त्वगतं हन्ति पानान्मांसगतं तथा ।  
 पकाशयगते वस्तिनिरुद्धः सार्वकार्मिकः ॥ ६३ ॥  
 अशीति वातजान् रोगांश्वत्वारिंशत्त्वं पैत्तिकान् ।  
 विंशतिं श्लेष्पर्याथैव सर्वानेवापकर्पति ॥ ६४ ॥  
 गृध्रसां वातभयं च ऋतुदोपं तर्थव च ।  
 ये नरा नष्टथुक्राश्च क्रद्युहीनाश्च याः स्त्रियः ॥ ६५ ॥  
 वन्ध्या च लभते गर्भमृतुस्त्राता न संशयः ।  
 ( यस्मात्यसारयत्येषा मेथाश्यद्वलान् शुभा ॥ ६६ ॥  
 आयुर्वद्धिकरी तस्माज्जनकोक्ता प्रसारणी । )

वातश्याधी चतुर्थं प्रशारणीतैलम् ।

प्रसारणीशतं क्षुण्णं पचेत्तीयार्मणे शुभे ॥ ६७ ॥  
 पादशेषे पचेत्तैलं दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ।  
 द्विगुणैः शृङ्खणपिण्डानि द्रव्याणीमानि योजयेत् ॥ ६८ ॥  
 द्विपलान्याश्रियष्टुपाहं कणामूलं पद्मं वचाम् ।  
 मूलं तथा प्रसारण्याः क्षारं च यवशूकजम् ॥ ६९ ॥  
 त्रिशङ्खलातकास्थीनि नागरात्पलपञ्चकम् ।  
 सिद्धं मृदग्रिना तैलं वातश्लेष्पामयाञ्जयेत् ॥ ७० ॥  
 अशीति नरनारीणां वातरोगान्विषुदति ।  
 कुञ्जवामनपद्मूत्त्वं खञ्जत्वं गृध्रसां सुदम् ॥ ७१ ॥  
 हन्यात्पृष्ठकटिग्रीवास्तम्भं चाशु व्यपोहति ।

१ एकस्य अङ्गस्य घोते वधे, एकस्य पक्षस्य च वधेद्यर्थः ।

पीठसर्पीं विभग्नश्च पीत्वा तैलं सुखी भवेत् ॥ ७२ ॥  
तैलं चेदं प्रसारण्या बलवर्णाग्रिवर्धनम् ।

वातरके शतावरीतैलम् ।

शतावरीरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थं तथैव च ॥ ७३ ॥

देवदारु शताहा च मांसी शलेयकं वला ।

चन्दनं तगरं कुष्ठमेला सांशुयती तथा ॥ ७४ ॥

एतैः कर्पसमैर्भागीस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।

कुञ्जवापनपङ्गूनां वधिरव्यङ्गकुष्ठिनाम् ॥ ७५ ॥

वायुना भग्नदेहानां येऽज्ञसीदनि येथुने ।

जरार्जरदेहानां वर्ध्मार्त्तमुखशोपिणाम् ॥ ७६ ॥

त्वगताश्चापि ये वाताः सिरास्त्रायुगताश्च ये ।

सर्वास्तान्नाशयत्याशु तैलं नास्त्वत्र संशयः ॥ ७७ ॥

नारायणभिर्दं नाम्ना विष्णुना समुदाहृतम् ।

दशाङ्गामिति विख्यातं न कचित्प्रतिहन्यते ॥ ७८ ॥

वातव्याधौ द्वितीयं शतावरीतैलम् ।

शतावर्यांश्च मूलानां रसप्रस्थं समाहरेत् ।

क्षीरद्विगुणसंयुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७९ ॥

शतपुष्पा नतं दारु मांसी शलेयकं वचा ।

माञ्जिष्ठा चन्दनं कुष्ठमेला चांशुयती वला ॥ ८० ॥

काकोली चाश्वगन्धा च मेदा रास्ता पुनर्नवा ।

एतैरर्थपलंद्रव्यैः शर्नर्मदाग्रिना पचेत् ॥ ८१ ॥

अस्य तैलस्य पक्षस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।

कुञ्जानां वापनानां च पङ्गूनां पीठसर्पिणाम् ॥ ८२ ॥

आङ्गेपके च भग्नानां तथा भग्नास्थिसन्धिषु ।

एकाङ्गं तु द्वये यस्य गतिर्यस्य विहन्यते ॥ ८३ ॥

रक्तपित्तहरं शस्ते वातग्रं परमं स्मृतम् ।

१ ‘ अक्षिरक्षमणि ’ इति ‘ अर्धपक्षे ’ इति च पाठान्तरद्वयम् ।

वातव्याधी रास्तातेलम् ।

रास्तामूलस्य कुर्वति द्वे शते च बलाशतम् ॥ ८४ ॥

शतावरीगुह्यचीभ्यां वरुणांच शतं शतम् ।

निर्गुण्डीशिग्रुकैरण्डशिरीपारम्बधादपि ॥ ८५ ॥

श्वदंष्ट्राभूतिकाभ्यां च पृथक् पञ्चपलं क्षिपेत् ।

दशद्रोणजले तत्तु साधयेत्मूलमकुटितम् ॥ ८६ ॥

द्रोणावशेषे तस्मिस्तु तैलस्यार्धार्थाणं पचेत् ।

द्रोणा दश च दुग्धस्य घृतस्यार्धाढकं तथा ॥ ८७ ॥

तदैकव्यं विपक्तव्यं गर्भं चात्र समावपेत् ।

मधुकं मालतीपुष्पं मञ्जिष्ठा मदयन्तिका ॥ ८८ ॥

काशमर्याण्यजमोदा च लबली तालमस्तकम् ।

आत्मगुप्ताफलं मूर्वा वार्ताकानि मधूलिका ॥ ८९ ॥

सहदेवामयैरण्डं रोहिषो नवमालिका ।

(फणिज्जकं मधूकानि वीरा नीरकदम्बकम् ।

फलं च पीलुपालाशं कठीराश्वत्यतिन्दुकम् ।)

कायस्था च वयस्था च मधुपर्णी च चित्रकः ॥ ९० ॥

महापुरुषदन्ता च बला सकदलीफला ।

देवदार्वगरुद्रेष्टुं चन्दनं परिपेलवम् ॥ ९१ ॥

नीलोत्पलमुशीराणि मृद्गीका साम्लवेतसा ।

एभिः पलशतैः पिण्डैः सम्यक् तैलं विपाचयेत् ॥ ९२ ॥

भोजनेऽन्यञ्जने पाने वस्तौ नस्ये च शस्यते ।

वातव्याधिषु सर्वेषु क्षतक्षीणे शिरोग्रहे ॥ ९३ ॥

अपस्मारे रक्तगुल्मे पुसां नष्टे च रेतासि ।

रास्तातेलमिदं श्रेष्टुं वलपांसविवर्धनम् ॥ ९४ ॥

वातव्याधी शताह्नातेलम् ।

जलद्रोणे शैताह्नायाः पादशेषं तुलां पचेत् ।

कायं तैलाढकोन्मिश्रं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ९५ ॥

हरेणकुष्ठसूखमैलातगरागरसैन्धवैः ।  
 पकं कल्कः पलसमैः प्रयोज्यं वातरोगनुत् ॥ ९६ ॥  
 योनिशूक्ररजोदोपनाशनं स्त्रीषु पुत्रदम् ।  
 शोताहातैलमित्येतन्दृढणं वलवर्धनम् ॥ ९७ ॥  
 वातव्याधी मूर्त्तैलम्

वालभूलकनिर्यूद्दैलदध्यम्लकाजिकम् ।  
 क्षीरं चैवाढकं स्यात् पचेत्कल्कः पलोन्मित्तः ॥ ९८ ॥  
 रास्ता भृत्यातकश्चैव सैन्धवं गजपिप्पली ।  
 वला सातिविपा शुण्ठी पिप्पल्यश्चित्रको वचा ॥ ९९ ॥  
 श्वदंष्ट्रा चेति तत्परं श्वेष्यवातामयापहम् ।  
 गृध्रसीवर्धमपङ्गुत्वं कुण्डलं सापतन्त्रकम् ॥ १०० ॥  
 कटश्युरुस्तम्भशापं च पर्वस्तम्भं सकम्पनम् ।  
 हन्यादूलम् च वातोत्थं वलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १०१ ॥  
 वन्ध्यानां पुत्रदं चैव तैलं मूलकसाहयम् ।  
 वातव्याधीं सहचरैलम् ।

समूलपत्रशाखस्य शतं सहचरस्य च ॥ १०२ ॥  
 चतुर्गुणे जलद्रोणे साधयेत्सूक्ष्मचूर्णितम् ।  
 द्रेणावशेषे पूते च पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ १०३ ॥  
 सहचरस्य मूलानां कल्को दशपलो भवेत् ।  
 परिस्ताव्य सुखोष्णे तु शर्करायाः प्रदापयेत् ॥ १०४ ॥  
 पलानि दश चाष्टी च निर्मध्यं च निधापयेत् ।  
 वस्तीं पाने तथाऽभ्यन्ने नस्ये चैव प्रशस्यते ॥ १०५ ॥  
 एकाङ्गपक्षघातं च हनुग्रहशिरोग्रहम् ।  
 अर्दितं वैपथून्मादौ सर्वगात्रग्रहं ज्वरम् ॥ १०६ ॥  
 गृध्रसीं वातगुलम् च भूतोपहतचिनताम् ।  
 अपस्मारं हनुस्तम्भमूरुस्तम्भं च नाशयेत् ॥ १०७ ॥

गण्डकुण्डलवधमानि हनुजानुविकुञ्चनम् ।  
संधानं सर्वगात्राणां स्तम्भनं शोधनं तथा ॥ १०८ ॥  
शमयेत्तेलमेतत्तु छिन्नाभ्राणीव मारुतः ।  
वातव्याधौ सहचरतैलम् ।

समूलपत्रशाखस्य शतं सहचरस्य च ॥ १०९ ॥  
क्षोदयित्वा जलद्रोणे काथं पादावशेषितम् ।  
शतपुष्पा तथा दारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ११० ॥  
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला चांशुमती तथा ।  
ऐतैः कर्पसमैर्भागैस्तैलप्रस्तं विपाचयेत् ॥ १११ ॥  
पयस्तद्विगुणं दत्त्वा शर्करायाः पलाष्टकम् ।  
अथ तैलस्य पक्षस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ११२ ॥  
ये च कोषुगता वाता ये च वाताः शिरोगताः ।  
अस्थिमज्जगताश्वेष कर्णमध्यगताश्व ये ॥ ११३ ॥  
मूकानां मिन्मिनानां च पीठकट्यूहसर्पिणाम् ।  
स्वभावेन च ये भग्ना अस्थिभग्नाश्व ये नराः ॥ ११४ ॥  
तेपां च संप्रयोक्तव्यं हितावहमनुचाम् ।  
वातव्याधौ इयोनाकैलम् ।

शतं इयोनाकमूलस्य दशमूलीशतं तथा ॥ ११५ ॥  
रोहिणं शिशुकं रास्त्रां पृथक् पञ्चशतं क्षिपेत् ।  
छागलादय गव्याच्च माहिपात्कौकुट्यादापि ॥ ११६ ॥  
पञ्चाशत्यलिकान् भागान् मांसादय प्रदापयेत् ।  
तौयद्रोणेषु वेदेषु साधयेच्छृङ्खण्कुटितम् ॥ ११७ ॥  
द्रोणावशेषपूते च पचेत्तेलादकं शनैः ।  
जीवां भद्रासहां षुद्रसहां च जीवकं वचाम् ॥ ११८ ॥  
कुष्ठं च शतपुष्पां च सूक्ष्मैलां चैलवालुकम् ।  
जीवकर्पर्मको द्राक्षां शृङ्खां कर्कटकस्य च ॥ ११९ ॥  
पोर्चा च निचलं मस्तां सारित्ये दे महीपघम् ।

वलामतिवलां वारां पारावतपर्दीं स्थिराम् ॥ १२० ॥  
 पिष्पर्लीं शकरां दन्तीं त्वक्पत्रं च शतावरीम् ।  
 द्रवन्तीं माघवीं शिगुं सुवहां कदलीं तथा ॥ १२१ ॥  
 अशोकरोहिणीं पाठां कदलीकुसुमानि च ।  
 सैन्यवं सुरसां कालां सर्पाक्षीं गन्धनाकुलीम् ॥ १२२ ॥  
 चोरकं गुणगुलं चैव विम्बीं हंसपदीमपि ।  
 पिष्टा कल्केन तत्तेलं पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ १२३ ॥  
 पानं चाभ्यज्ञने चैव नस्ये वस्तौ च शस्यते ।  
 वातव्याधिपु सर्वेषु क्षतक्षीणे ज्वरे भ्रमे ॥ १२४ ॥  
 हृद्रहे वातगुलमे च पङ्गुत्त्वे वातशीणिते ।  
 माखते पित्तसंस्टृष्टे सोन्मादेषु गदेषु च ॥ १२५ ॥  
 कुण्डले मूत्रकृच्छ्रे च वर्धमूत्रभगन्दरे ।  
 गात्रे गात्रैकदेशेषु वायुना स्तम्भितेषु च ॥ १२६ ॥  
 हनुग्रहेऽर्दिते चैव वेषने गात्रसंग्रहे ।  
 इयोनाकैलमित्येतत्ख्यातं वातनिर्वर्हणम् ॥ १२७ ॥  
 पृथग्वातात्मके रोगे संसृष्टे च तथाऽमृतम् ।  
 सर्वाङ्गवातव्याधीं श्वदंशायां तैलम् ।  
 आदाय मूलपत्राभ्यां श्वदंष्ट्रां मतिमान् भिषक् ॥ १२८ ॥  
 शृतं पलशतं क्षुण्णं तं तु निष्पीडयेद्वयः ।  
 रसे चतुर्गुणे तस्मिन् पचेत्तैलाढकं शर्नेः ॥ १२९ ॥  
 द्विगुणं च दधिक्षीरमारनालं तथैव च ।  
 औपथानि च पिष्टानि देयान्यत्र प्रमाणतः ॥ १३० ॥  
 देवदारु शताहा च हिङ्गुं त्रिकदुकं वचा ।  
 मुस्ता सतगरं कुष्ठं शुक्षणपिष्टानि भागशः ॥ १३१ ॥  
 यदा सिद्धं विजानीयाच्चैतदवतारयेत् ।  
 पानानुलेपनेऽभ्यमे वाये चाभ्यन्तरेऽनिले ॥ १३२ ॥  
 सर्वगात्रगते वाते श्वदंष्ट्रातैलमुत्तमम् ।

खुशाकमधकं तैलम् ।

पद्मकोशीरयष्ट्याहरजनीकाथसाधितम् ॥ १३३ ॥

सुपिष्ठैः सर्जमङ्गिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः ।

खुशाकपद्मकं तैलं वातासृग्दरदाहजित् ॥ १३४ ॥  
वातरक्ते महापधकं तैलम् ।

पद्मवेतसयष्ट्याहफलिनीपद्मकोत्पलैः ।

पृथक् पञ्चपलैर्दर्भवलाचन्दनकिंशुकैः ॥ १३५ ॥

जले शृतैः पचेत्तलं प्रस्थं सौवीरसंयुतम् ।

लोत्रकालीयकोशीरजीवकर्पर्पभकेशरैः ॥ १३६ ॥

मद्यन्तीलतापत्रपद्मकेशरपत्रैः ।

—१— ॥ १३७ ॥

महापद्ममिदं तैलं वातास्थ्रोग्नाशनम् ॥ १३८ ॥

ज्वरे तृतीयं महापधकं सैलम् ।

दर्भवेतसमूलानि चन्दनं मधुकं वला ।

फेनिलापद्मकोशीरमङ्गिष्ठाकमलोत्पलम् ॥ १३९ ॥

केशुकं चात्र भागाः स्युः पृथक् पञ्चपलोन्मिताः ।

जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ १४० ॥

जीवकर्पर्पभकौ मेदां रोधं भद्रातकं तथा ।

कालीयकं प्रियहूं च दद्यात्केशरमेव च ॥ १४१ ॥

यष्टिं प्रपौण्डरीकं च पद्मकं पद्मकेशरम् ।

सुरभिं कुङ्कुमं चैव मञ्जिष्ठां मद्यन्तिकाम् ॥ १४२ ॥

मांसां पत्रं च तुल्यांशं द्विगुणं कुङ्कुमं भवेत् ।

चतुर्गुणा तु मञ्जिष्ठा सौवीरं तैलसंमितम् ॥ १४३ ॥

तैलप्रस्थं पचेदेभिः कपायेणाथ पेपितैः ।

एतदभ्यन्तरं तैलं विपमज्वरनाशनम् ॥ १४४ ॥

<sup>१</sup> खुशाकवाल्पोडस्थार्थः । यथा चरके-खुशिका गर्भावकान्तिः, अल्पेत्यर्थः ।

<sup>२</sup> 'वातास्थ्रोदरनाशनम्' इति पाठः ।

महापद्ममिति ख्यातमेतत्तैलं महागुणम् ।  
 वर्णप्रसादनं श्रेष्ठं सौकुमार्यविवर्धनम् ॥ १४५ ॥  
 पानाभ्यञ्जनवस्तौ च नस्यकर्मणि पूजितम् ।  
 वातपित्तभवं क्षिप्रं उवरमेतन्नियच्छति ॥ १४६ ॥  
 वातव्याधौं वृहन्माषतैलम् ।

प्रस्थे द्वे खण्डमापाणां कवाययेत्सलिलार्पणे ।  
 चतुर्भागावशिष्टेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४७ ॥  
 मस्तुनस्त्वाढकं दक्षवा तत्समं चाम्लकाञ्जिकम् ।  
 औपधानि च गर्भार्थं तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ १४८ ॥  
 सैन्धवं मदनं रात्रा शताहा अयूपणं वचा ।  
 तगरं चोरुचूकथ मञ्जिष्ठा पद्मकेशरम् ॥ १४९ ॥  
 बला गोक्षुरकः पाढा सरलो देवदारु च ।  
 अजगन्धाऽभ्यगन्धा च पुष्करं सपुनर्नवम् ॥ १५० ॥  
 एतानि चाक्षमात्राणि कल्कीकृत्य प्रयोजयेत् ।  
 नस्ये पाने तथाऽभ्यङ्गे वस्तिकर्मणि योजयेत् ॥ १५१ ॥  
 अर्दितं कर्णशूलं च मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ।  
 वाधिर्यं पक्षघातं च गृध्रसीं खञ्जपङ्कुताम् ॥ १५२ ॥  
 सर्वोनेताञ्जयेच्छीघ्रं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।  
 मापतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ १५३ ॥  
 वाहुरोगे लघमापतैलम् ।

कपिकच्छुकवाट्यालकशतावरीसितपुनर्नवामूलैः ।  
 सैन्धवजिङ्गिणिकातसनिर्यासाभ्यां च कदुतैलम् ॥ १५४ ॥  
 मापकायेन पचेद्विरुणेन पूर्वकल्कसंयुक्तम् ।  
 सकृदुपयुक्तमिदं वै नस्येन निहन्ति वाहुरुजम् ॥ १५५ ॥  
 वातध्याधौ तृतीयं महामाषतैलम् ।

मापातसीयवकुरण्टककण्टकारी-

गोकण्टटिण्टुकजटाकपिकच्छुतोयैः ।

कार्पासिकास्थिशणवीजकुलत्थकोल-

कायेन वस्तपिशितस्य रसेन तैलम् ॥ १५६ ॥  
शुष्क्या समागधिकया शतपुष्पया च  
सैरण्डमूलसपुनर्नवया सपर्णा ।

रास्तावलामृतलताकदुकौविंपकं

मापाख्यमेतदपवाहुकहारि तैलम् ॥ १५७ ॥

अर्धाङ्गशोपमपतानकमाद्यवात-

माक्षेपकांसभुजकम्पशिरःप्रकम्पम् ।

नस्येन वस्तिविधिना परिपेचनेन

हन्यात्कटीजघनजानुरुजः समीरान् ॥ १५८ ॥

वातश्चाधी दशाहतैलम् ।

शेरेयकोऽमृता चैव वाजिगन्धा शतावरी ।

नागवलाप्रसारण्यो श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ॥ १५९ ॥

बला चैपां समान् भागान् रास्ताभागसमन्वितान् ।

ज्ञात्वा च मकृतिं दोषं कपायमुपकल्पयेत् ॥ १६० ॥

तेन पादावशेषेण तिलैत्तलाढकं पचेत् ।

दधिमस्त्वक्षुनिर्यासशुक्तलासोदकैः समैः ॥ १६१ ॥

चतुर्गुणेन तोयेन कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।

मांसीमधुकमज्ञाप्ताशताहारक्तचन्दनैः ॥ १६२ ॥

देवदारुवरीकीन्तीत्वचापत्रकवारिजैः ।

कुष्ठागरुवचायुक्तस्तैलं सिद्धं प्रदापयेत् ॥ १६३ ॥

वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये च परिपेचने ।

सर्वरोगान् जयत्येतत्संस्तृष्टान् मातरिश्वना ॥ १६४ ॥

विशेषतो द्विपस्मारमुन्मादं वातशोणितम् ।

अपत्यजननं स्त्रीणां पुंसां चातिवलप्रदम् ॥ १६५ ॥

नराणां गद्दानां च मूकानां वाक्प्रवर्तनम् ।

मेधाजननमायुष्यं वलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १६६ ॥

सन्निपातहरं सर्वग्रहस्त्रं विपजित् परम् ।  
दशाङ्गमिति विख्यातमश्चिभ्यां परिकीर्तिंतम् ॥ १६७ ॥  
अस्त एते सैन्धवाद्य तेलम् ।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात् ।  
द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि द्राविंशतिमथादकम् ॥ १६८ ॥  
आरनालं पचेत्पस्यं तैलस्यैरण्डजस्य च ।  
गृध्रस्यूख्याशोर्तिसर्ववातविकारनुद ॥ १६९ ॥  
इमुम्भाद्य तेलम् ।

कुमुम्भकुङ्कुमोशीरमजिष्ठारक्तचन्दनैः ।  
सिक्यसजरसातङ्गुड्हच्चैसैन्धवाम्बुदैः ॥ ७० ॥  
मूर्वाशतावरीलाक्षामधुकैश्च पलांशकैः ।  
चतुर्गुणेन तोयेन पचेत्तेलादकं भिषक् ॥ ७१ ॥  
अदितं कर्णशूलं च शिरःशूलं च दारुणम् ।  
गृधर्सां वातरक्तं च पक्षावातं व्यपोहति ॥ ७२ ॥  
तद्वस्तिषु च पानेषु नस्ये च कर्णपूरणे ।  
अभ्यङ्गे च शिंरोरोगे तैलं विद्याधथाऽभूतम् ॥ ७३ ॥  
पाणिपादांसदादेषु गुदयोनिरजामु च ।  
सुस्तिवातेऽस्थिभङ्गे च देवदेवेन पूजितम् ॥ ७४ ॥  
भग्नदरे मागधाद्य तेलम् ।

मागधी मधुकं रोधं कुष्ठपेला हरेणवः ।  
समझा धातकी चैव सारिवा रजनीद्रियम् ॥ ७५ ॥  
सर्जरसः प्रियद्रुत्र पश्चकं पश्चकेशरम् ।  
मातुलङ्घस्य पत्राणि मधुच्छिष्टं ससैन्धवम् ॥ ७६ ॥  
एतत्संभृत्य संभारं तैलं धीरो विपाचयेत् ।  
एतद्वि गण्डयालामु मण्डलैव्यय मेहिषु ॥ ७७ ॥  
रोपणाय हितं तैलं भग्नदरविनाशनम् ।

मगन्देरे विश्रकार्यं तेलम् ।

चित्रकार्कत्रिष्टप्ताऽपलयूहयमारकान् ॥ १७८ ॥  
 लाङ्गलीं सप्तपर्णं च मुधां वचां मुवर्चिकाम् ।  
 ज्योतिष्पर्णीं च संभृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ १७९ ॥  
 एतदभ्यज्ञने तैलं भृशं दधाङ्गन्दरे ।  
 शोधनं रोपणं चैव सर्वर्णकरणं तथा ॥ १८० ॥  
 गण्डमालायामज्मोदायं तेलम् ।

अजमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशाद्रयम् ।  
 क्षारीं समुद्रफेनश्च सान्द्रकः सरलोद्धवः ॥ १८१ ॥  
 इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलीकन्दकं समम् ।  
 ऐभिः सार्पषकं तैलमजामूत्राष्टभागकम् ॥ १८२ ॥  
 मृद्रग्नीं पाचयेदेतत्सुहर्कसीरसंयुतम् ।  
 अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ॥ १८३ ॥  
 आमां, पचेद्विदग्धां च, पक्वां चैव विशोधयेत् ।  
 रोपणं मृदुभावं च तैलेनानेन कारयेत् ॥ १८४ ॥  
 वातव्याधावश्वगन्धायं तेलम्

मूलानामश्वगन्धायाः शतं स्यात्खण्डशः कृतम्  
 द्विद्रोणेऽपां पचेत्क्षाथमष्टभागावशेषितम् ॥ १८५ ॥  
 तैलाढकं समावाप्य क्षीरं दधाच्छतुर्गुणम् ।  
 समालोड्य पचेदेतत् कल्काश्वैर्पां समावपेत् ॥ १८६ ॥  
 तगरं शतपुष्पां च मुस्तं व्याघ्रनखं त्वचम् ।  
 मधुकं गृह्णयेत् च पृथिवीं वलां स्थिराम् ॥ १८७ ॥  
 रालां पुष्करमूलं च भूतीकं सपुनर्नवप् ।  
 मञ्जिष्ठां नलदं पत्रं द्रवन्तीं मुरसां वचाम् ॥ १८८ ॥  
 श्वर्दपां च मृणालं च वयस्थां वहुपुत्रिकाम् ।  
 पलार्थश्चद्वृणपिष्ठांस्तु दत्त्वा गर्भं विपाचयेत् ॥ १८९ ॥

१ ‘एतदभ्यज्ञने तैलं गण्डमालो व्यपोहति’ इति पा० । २ ‘अजामूत्रैत-  
 शुग्नीर्मुकं सिद्धार्थैतेलकम्’ इति पा० ।

तत्सद्धविदग्धं च ततः समवतारयेत् ।

वस्तीं पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्यकर्मणि भोजने ॥ १९० ॥

यत्र यत्र विधातव्यं तन्मे निगदतः शृणु ।

खञ्जमूकजडत्वे च तिभिरे च तथाऽर्बुदे ॥ १९१ ॥

पक्षाघाते तथाऽऽयामे च्युतभशास्थिसन्धिषु ।

विधेयं पृष्ठभेष्टु हनुमन्याग्रहे तथा ॥ १९२ ॥

स्तम्भकम्पेषु शोफेषु रुजासु विविधासु च ।

ज्वरे च विपमे गुल्मे तथा मारुतशोणिते ॥ १९३ ॥

ष्टीक्ष्णि ष्टीहोदरे चैव विद्रधौ गृध्रसीषु च ।

नष्टशुक्रास्तथा पण्डा ये च क्षीणोन्द्रिया नराः ॥ १९४ ॥

भूतोपहतचित्ताश्च शस्यते तेषु नित्यशः ।

व्यापन्नयोनिवन्ध्यासु पाययेत् सदा भिपक् ॥ १९५ ॥

एतत्रदं परमं प्रोक्तं धन्वन्तरिविचो यथा ।

वातव्याधावश्वगन्धयं तेलम् ।

अश्वगन्धाशातं क्षुण्णं काथ्यं द्रोणे जलस्य च ॥ १९६ ॥

निःसाध्य विपचेत्तैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।

कल्कैर्मृणालशाल्मेकविशकिञ्जलकमालती— ॥ १९७ ॥

पुष्पैर्मधुकहीवैरसारिवावक्रैकेशरैः ।

मेदापुनर्नवाद्राक्षामज्जिष्ठावृहतीद्रव्येः ॥ १९८ ॥

त्रिफलेलावचापत्रमुस्तचन्दनपद्मकैः ।

पित्तरक्ताश्रयान्वातान् रक्तपित्तमसृग्दरम् ॥ १९९ ॥

हन्यात्पुष्टिकरं चैव कृशानां मांसवर्धनम्

रेतोयोनियिकारघ्नं व्रणदोपापकर्पणम् ॥ २०० ॥

पण्डानपि वृपान् कुर्यात्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ।

उद्गुमायं मुखकान्तिदं सैलम् ।

कुरुम्यं चन्दनं पत्रमुशीरं कमलोत्पले ॥ २०१ ॥

गारोचना हरिदेहे मज्जिष्ठा मधुयषिका ।

सारिवारोधपत्राङ्गपत्रगरिककेशरम् ॥ २०२ ॥

स्वर्णक्षीरी प्रियद्रुत्त्वं कालेयं रक्तचन्दनम् ।  
 एपामक्षसंभागेस्तेलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २०३ ॥  
 अभ्यह्नाद्राजपनीनां ये चान्ये धनिनो नराः ।  
 तिलकान् पिङ्कान् व्यज्ञान् नीलिकां मुखदूषिकाम् ॥ २०४ ॥  
 काईं चापि शरीरस्य दुश्छायां च विवर्णताम् ।  
 नाशयेज्जनयेचाशु रूपं चाथ मनोहरम् ॥ २०५ ॥  
 पद्मकेशरवर्णाभैं मुखं भवति कान्तिमत् ।  
 वातरक्ते यथैमधुकायं तैलम् ।

शतं पलानि यष्ट्यास्तु व्याथयेत् पादशेषिते ॥ २०६ ॥  
 तैलादकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ।  
 शतपुष्पावरीकुष्ठपयस्यागुरुचन्दनैः ॥ २०७ ॥  
 स्थिराहंसपदीमांसीद्रिमेदामधुपर्णिका-।  
 काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यर्धिपद्मकैः ॥ २०८ ॥  
 वचार्जीवकजीवन्तीत्वपत्रनखवालैः ।  
 प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवैन्द्रीवितुब्रकैः ॥ २०९ ॥  
 चतुर्धा तेत्ययोगेण हनित मारुतशोणितम् ।  
 सर्वगात्रानुगं साहशूलं सोपद्रवं तथा ॥ २१० ॥  
 वातासुकृष्टिचदाहार्तिज्वरस्त्रं वलवर्णकृत् ।  
 कर्णरोगे उषुकारतेलम् ।

शुष्कमूलकशुणीनां क्षारो छिह्नं महोपधम् ॥ २११ ॥  
 शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शिग्रू रसाञ्जनम् ।  
 मातुद्वाहरसश्वेत कदल्पा रस एव च ॥ २१२ ॥  
 तेलमेभिर्विंपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ।  
 वाधिर्यं कर्णनादश्च पूयास्तावश्च दारुणः ॥ २१३ ॥  
 कृमयश्च विनश्यन्ति तेलस्यास्य प्रपूरणात् ।

१ '०द्वा०' इति पा० । २ अभ्यह्नाद्राजपनस्यवास्तिषु चतुर्षु प्रयोगादित्वपे ।

३ 'शुरुं शुरुणं दश्वा तेलमेभिर्विशयेन्' इति पा० ।

कर्णरोगे वृहत्सारतैङ्गम् ।

शुष्कं मूलकशुण्ठानां क्षारो हिङ्गं महोपथम् ॥ २१४  
 शतपुण्पा वचा कुष्ठं दारु शियू रसाज्जनम् ।  
 ( सौवर्चलं यवक्षारः स्वर्जिकोद्दिदसैन्धवम् ।  
 भूर्जग्रन्थिर्विदं शुक्तं मधुशुक्तं तथैव च ॥ )  
 मातुलुडरसश्वेव कदल्या रस एव च ॥ २१५ ॥  
 तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ।  
 वाधिर्यं कर्णनादश्च पूयास्त्रावश्च दारणः ॥ २१६ ॥  
 पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ।  
 विनाशमाशु गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात् ॥ २१७ ॥  
 क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ।

नेत्ररोगे भृङ्गराजतैङ्गम् ।

भृङ्गरसस्य प्रस्थं तैलात्कुटव्यं पलं च मधुकस्य ॥ २१८  
 क्षीरप्रस्थविपक्तं गतमपि चक्षुर्निर्वर्तयति ।

केशभृद्दो द्वितीयं भृङ्गराजायं तैङ्गम् ।

भृङ्गरसत्रिफलोत्पलसारि लोहपुरीपसमान्वितकारि २  
 तैलमिदं पच दारणहारि लुभितकेशघनस्थिरकारि  
 केशभृद्दो तृतीयं भृङ्गराजतैलम् ।

मार्कवस्त्ररसभावितगुञ्जावीजचूर्णपरिपाचिततैलम् २  
 मिथ्रितं त्रुटिजटामुरकाष्ठेः केशवर्धनमिदं वनितायाः  
 वृहद्दृश्यमायं तैङ्गम् ।

आनूपदेशाने पुष्टं गृहीत्वा मार्कवं शूभम् ॥ २२१ ॥

प्रक्षालय जर्जरीकृत्य रसं तस्य प्रपीडयेत् ।

चतुर्गुणेन तेनेव तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २२२ ॥

द्रव्यरेभिः पयःपिण्ठेः संयोज्य मतिमान् भिपक् ।

मज्जिष्ठां पद्येकं रोधं चन्दनं गैरिकं वलाम् ॥ २२३ ॥

रजन्यौ केसरं दारु मियहुः मधुयष्टिके ।

पर्णाण्डरीकं सौम्यं च पलिकं तत्र दापयेत् ॥ २२४ ॥

कुष्ठं तगरमापांश्च सिद्धार्थशागुरुं तथा ।

मुस्तकं चाथं शैलेयं कर्चूरं परिकल्पतम् ॥ २२५ ॥

सम्यवपकं ततो शाल्वा थुमे भाण्डे निधापयेत् ।

केशशाते शिरोदुःखे मन्यास्तम्भे हनुग्रहे ॥ २२६ ॥

अकालपलिते चैव दारुणे चैव दारुणे ।

दन्तकर्णाक्षिरोगेषु नस्यमेतत्प्रदापयेत् ॥ २२७ ॥

मासं नस्यप्रयोगेण सीरान्नप्रतिभोजिनः ।

कुञ्चिताग्रान् हि केशांश्च स्त्रिग्राहान्कुर्याद्वृहंस्तथा ।

खालित्ये सेन्द्रलुपे च तैलमेतद्यथाऽग्रहतम् ॥ २२८ ॥

केशरोगे असनाद्यं तैलम् ।

असनसारकपायविपाचितं त्रिफलया मधुकेन च संयुतम् ।

भवति नावनतैलमनुचर्मं पलितनेत्रविकाररूपापहम् ॥ २२९ ॥

किरोगे वृद्धिन्दुतैलम् ।

तगरैरण्डमूले च रास्ता यष्टी च सैन्धवम् ।

जीवन्ती शतपुष्पा च विडङ्गं नागरं तथा ॥ २३० ॥

मधूकसारमित्यभिः कल्पपिष्ठेस्तिलोद्धवम् ।

भृङ्गरसे पचेत्तलं द्विगुणे गोपयस्यथ ॥ २३१ ॥

पद्धिन्दुनस्यदानेन हन्याच्छीर्पामयान् वहन् ।

चलतां द्रिजकेशानां पततां दाढ्यमानयेत् ॥ २३२ ॥

हृग्वलं परमं तेषां याहोः स्यादुचर्मं वलम् ।

बलिपलितहृत्तेलमिर्दं पद्धिन्दुसंक्षितम् ॥ २३२-॥

किरोगे द्वितीये पद्धिन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताद्वा जीवन्ती रास्ता लवणोत्तरं च ।

भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वापर्यं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ २३४ ॥

आजं पयस्तैलविमिश्रितं च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपकम् ।

पद्धिन्दवो नासिकया प्रयुक्ता निघन्ति सर्वाञ्छिरसो विकारान्

१ 'मुस्तं चण्डां च' इति पा० । २ 'जीवन्तिरण्डजटाशताद्वारास्तानतं स्वालयणोत्तरं च' इति पा० । ३ 'चेति समानि कुर्यात्' इति पा० ।

कर्णरोगे वृद्धशारतेष्वम् ।

शुष्कमूलकशुष्टानां क्षारो हिङ्ग महीपथम् ॥ २१  
 शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शियू रसाञ्जनम् ।  
 (सौवर्चलं यवक्षारः स्वर्जिकोद्दिदसैन्धवम् ।  
 भूर्जग्रन्थिविंडं शुक्तं मधुशुक्तं तर्यैव च ॥)  
 मातुखुडरसश्वेव कदल्या रस एव च ॥ २१५ ।  
 तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ।  
 वाधिर्यं कर्णनादश्च पूयासावश्च दारणः ॥ २१६ ।  
 पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ।  
 विनाशमाशु गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनाद् ॥२  
 क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ।

नेत्ररोगे भृङ्गराजतैलम् ।

भृङ्गरसस्य प्रस्थं तैलात्कुडवं पलं च मधुकस्य ॥  
 क्षीरप्रस्थविपक्तं गतमपि चक्षुनिर्वर्तयति ।

केशशूद्धौ द्वितीयं भृङ्गराजाशं तैलम् ।

भृङ्गरसविफलोत्पलसारि लोहपुरीपसमन्वितकारि  
 तैलयिदं पच दारणहारि लुभितकेशघनस्थिरकां  
 केशशूद्धौ द्वितीयं भृङ्गराजतैलम् ।

मार्कवस्वरसभावितगुञ्जावीजचूर्णपरिपाचिततैलम्  
 मिश्रितं शुद्धिजटामुरकाष्ठः केशवर्धनमेदं वजिताः  
 वृद्धहरणायं तैलम् ।

आनूपदेशाजं पुष्टं गृहीत्वा मार्कवं शुभम् ॥ २२१  
 मक्षाल्य जर्जरीकृत्य रसं तस्य प्रपीटयेत् ।

चतुर्गुणेन तेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २२२ ॥  
 द्रव्यरेभिः पयःपिण्ठः संयोज्य मतिमान् भिषक् ।

यज्ञिष्ठां पदंकं रोध्रं चन्दनं गैरिकं वलाम् ॥ २२  
 रजन्यां केसरं दारु प्रियहृष्मधुयष्टिके ।

प्रपीण्डरीकं सौम्यं च पलिकं तत्र दापयेत् ॥ २२१

कुष्ठं तगरमापांश्च सिद्धार्थीश्चागुरुं तथा ।

मुस्तकं चायं शैलेयं कर्चूरं परिकल्पितम् ॥ २२५ ॥

सम्प्रवपकं ततो ज्ञात्वा शुभे भोण्डे निधापयेत् ।

केशशाते शिरोदुःखे मन्यास्तम्भे हनुग्रहे ॥ २२६ ॥

अकालपलिते चैव दारुणे चैव दारुणे ।

दन्तकर्णाक्षिरोगेषु नस्यमेतत्पदापयेत् ॥ २२७ ॥

मासं नस्यप्रयोगेण क्षीरान्नप्रतिभोजिनः ।

कुञ्चिताग्रान् हि केशांश्च स्त्रिघान्कुर्याद्गृहंस्तथा ।

खालित्ये सेन्द्रलुम्बे च तैलमेतद्यथाऽगृहतम् ॥ २२८ ॥

केशरोगे असनाथं तैलम् ।

असनसारकपायविपाचितं त्रिफलया मधुकेन च संयुतम् ।

भवति नावनतैलमनुत्तमं पलितनेत्रविकाररुजापहम् ॥ २२९ ॥

शिरोरोगे पद्मिन्दुतैलम् ।

तगररण्डमूले च रास्ता यष्टी च सैन्धवम् ।

जीवन्ती शतपुष्पा च विडङ्गं नागरं तथा ॥ २३० ॥

मधूकसारमित्यभिः कल्कपिण्डिस्तिलोद्धवम् ।

भृङ्गरसे पचेत्तेलं द्विगुणे गोपयस्यथ ॥ २३१ ॥

पद्मिन्दुनस्यदानेन दृन्याच्छीर्पामयान् वहून् ।

चलतां द्विजकेशानां पततां दार्ढ्यमानयेत् ॥ २३२ ॥

दृश्वलं परमं तेषां वाहोः स्यादुत्तमं वलम् ।

वलिपलितहृत्तेलमिदं पद्मिन्दुसंज्ञितम् ॥ २३३ ॥

शिरोरोगे द्वितीये पद्मिन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताहा जीवन्ती रास्ता लवणोत्तमं च ।

भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वापयं कृष्णतेलस्य तैलम् ॥ २३४ ॥

आजं पयस्तेलविमिश्रितं च भृङ्गसिं विपक्वम् ।

पद्मिन्दो नासिकया तु विकारान्

‘व’ इति

‘त्रिपुष्पा’ इति पा०

‘त्रिपुष्पा’

‘तरण्डजटाशताहाराक्षानं

‘त्रिपुष्पा’ इति पा०

‘त्रिपुष्पा’

कर्णरोगे वृद्धत्वारतेष्टम् ।

शुष्कं मूलकशुण्डानां क्षारो हिङ्गु महीपथम् ॥ २१४ ॥

शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शियू रसाञ्जनम् ।

(सौवर्चलं यवक्षारः स्वर्जिकोद्दिदसैन्धवम् ।

भूर्जग्रन्थिविंदं शुक्रं मधुशुक्रं तर्थेव च ॥)

मातुलुड्नरसश्चैव कदल्या रस एव च ॥ २१५ ॥

तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशुलहरं परम् ।

वाधिर्यं कर्णनादश्च पूयासावश्च दारुणः ॥ २१६ ॥

पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ।

विनाशमाथु गच्छन्ति कृष्णाश्रेयस्य शासनात् ॥ २१७ ॥

क्षारतेलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ।

नेत्ररोगे भृङ्गरज्ञतेष्टम् ।

भृङ्गरसस्य प्रस्थं तैलात्कुडवं पलं च मधुकस्य ॥ २१८ ॥

क्षीरप्रस्थविपकं गतमपि चक्षुनिर्वतयति ।

केशवृद्धौ द्वितीयं भृङ्गरज्ञायं तैलम् ।

भृङ्गरसत्रिफलोत्पलसारि लोहमुरीपसमन्वितकारि ॥ २१९ ॥

तैलमिदं पच दारुणहारि लुधितकेशवनस्थिरकारि ।

केशवृद्धौ तृतीयं भृङ्गरज्ञतेलम् ।

मार्कवस्वरसभावितगुञ्जनावीजचूर्णपरिपाचिततेलम् ॥ २२० ॥

मिथ्रितं त्रुटिजटासुरकाँप्तः केशवर्धनमिदं वनितायाः ।

वृद्धवृग्रज्ञायं तैलम् ।

आनुपदेशजं पुष्टं गृहीत्वा मार्कवं शुभम् ॥ २२१ ॥

प्रसाल्य जनरीकृत्य रसं तस्य प्रपीडयेत् ।

चतुर्गुणेन तेनं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २२२ ॥

द्रव्यरेभिः पयः पिण्ठः संयोज्य मतिमान् भिषक् ।

मज्जिष्ठां पद्मकं रोध्यं चन्दनं गैरिकं वलाप् ॥ २२३ ॥

रजन्यां केसरं दारु मियहृमधुयस्तिके ।

पर्णाण्डरीकं रोम्यं च पलिकं तत्र दापयेत् ॥ २२४ ॥

कुष्ठं तगरमापांश्च सिद्धार्थागुरुं तथा ।

मुस्तकं चार्थं शीलेर्यं कर्चूरं परिकल्पतम् ॥ २२५ ॥

सम्पवपकं ततो ज्ञात्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ।

केशशाते शिरोदुःखे मन्यास्तम्भे हनुग्रहे ॥ २२६ ॥

अकालपलिते चैव दारुणे चैव दारुणे ।

दन्तकर्णाक्षिरोगेषु नस्यमेतत्पदापयेत् ॥ २२७ ॥

मासं नस्यमयोगेण क्षीरान्नप्रतिमोजिनः ।

कुञ्जिताग्रान् हि केशांश्च स्त्रिघ्यान्कुर्याद्वृहंस्तथा ।

खालित्ये संन्द्रलुपे च तैलमेतत्पथाऽमृतम् ॥ २२८ ॥

केशरोगं असनाथं तैलम् ।

असनसारकपायविपाचितं त्रिफलया मधुकेन च संयुतम् ।

भवति नावनतैलमनुच्चमं पलितनेत्रविकाररुजापहम् ॥ २२९ ॥

शिरोरोगे पद्मिन्दुतैलम् ।

तगरैरण्डमूले च रास्ता यष्टी च संन्धवम् ।

जीवन्ती शतपूष्पा च विडङ्गं नागरं तथा ॥ २३० ॥

मधूकसारमित्यभिः कल्कपिष्ठेस्तिलोद्धवम् ।

भृङ्गरसे पचेत्तैलं द्विगुणे गोपयस्यथ ॥ २३१ ॥

पद्मिन्दुनस्यदानेन हन्याच्छीर्पामयान् वहन् ।

चलतां द्रिजकेशानां पततां दार्ढ्यमानयेत् ॥ २३२ ॥

दग्धलं परमं तेपां वाहोः स्यादुच्चमं वलम् ।

बलिपलितहृत्तैलमिदं पद्मिन्दुसंज्ञितम् ॥ २३३ ॥

शिरोरोगे द्वितीये पद्मिन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताहा जीवन्ती रास्ता लवणोत्तमं च ।

भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौपर्धं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ २३४ ॥

आजं पयस्तैलविभिश्रितं च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपकम् ।

पद्मिन्दवो नासिकया प्रयुक्ता निघन्ति तर्वाच्छिरसो विकारान्

१ 'मुस्तकं चण्डां च' इति पा० । २ 'लौवन्तिकरण्डजटाशताहाराशतान्तं स्यालवणोत्तमं च' इति पा० । ३ 'चेति समानि कुर्यात्' इति पा० ।

च्युतांश्च केशान्पतितांश्च दन्तानावद्भूलांश्च हृषीकरोति ।  
सुपर्णादृष्टिपतिमं च चम्पुर्वाहोर्विलं चाभ्यधिकं करोति ॥२३६॥

दन्तरोगं बहुडायं तैलम् ।

बहुलस्य फलं लोध्रं वला वल्ली बुरण्टकः ।  
चतुरहुलवब्बूलवाजिकर्णारिमेदकम् ॥ २३७ ॥  
एपां कल्ककपायाभ्यां तैलं पकं मुखे धृतम् ।  
स्थैर्यं करोति दन्तानां चलतां नावनेन च ॥ २३८ ॥

दन्तरोगे नीलसहचराद्यं तैलम् ।

तुलां धृतां नीलसहचरस्य संक्षुद्य द्रोणे श्रपयेज्जलस्य ।  
दत्त्वा चतुर्भागरसं तु तेन तैलं पचेदर्धपलम्प्रयुक्तैः ॥ २३९ ॥  
कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रप्रयट्टीमधुकोत्पलानाम् ।  
तत्त्वैलमाश्वेव धृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां चलतां विदध्यात् ॥ २४०  
मुखरोगे शरिमेदाद्यं तैलम् ।

इरिमेदत्वकपलशतमभिनवमापोध्य खण्डशः कृत्वा ।  
तोयाढकैश्चतुर्भिर्निष्पवाध्य चतुर्थशेषेण ॥ २४१ ॥  
कवायेन भिपद्मतिमान् तैलस्यार्धाढकं शर्विंश्चेत् ।  
कल्कैरक्षसमाशैर्मञ्जिष्ठारोधमधुकानाम् ॥ २४२ ॥  
इरिमेदखादिरकदफललाक्षान्यग्रोधमुस्तम्भमैला- ।  
कर्पूरागुरुपद्मकलवज्रकझोलजातीफलानाम् ॥ २४३ ॥  
फलगुपचङ्गगैरिकवराङ्गगजकुम्भधातकीनां च ।  
सिद्धं भिपद्मिदध्यादिदं मुखोत्थितेषु रोगेषु ॥ २४४ ॥  
परिशीर्णदन्तविद्रधिशार्पिरशीताददन्तहर्षेषु ।  
कृषिदन्तदरणचलितप्रहृष्टमासावदीर्णेषु च ॥ २४५ ॥  
मुखदीर्गन्धे च तथा मागुक्तेष्वामयेषु नृणाम् ।  
धार्यं मुखेन मुखगेष्वरःषु संरोपणार्थाय ॥ २४६ ॥

दन्तरोगे द्वितीयमिरिमेदार्थं तैलम् ।

न वृद्धान्नातिवालाच्य त्वक्तुलामिरिमेदकात् ।  
अपां द्रोणे समावाप्य पचेत्पादावशेषितम् ॥ २४७ ॥  
ततस्तेन कपायेण क्षीरमस्थसमन्वितम् ।  
लाक्षारससमायुक्तं तैलप्रस्थं पचेन्नरः ॥ २४८ ॥  
लोध्रकदफलमञ्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः ।  
चन्दनोत्पलयष्ट्याहैः पालिकैर्धातकीसमैः ॥ २४९ ॥  
एतेदुजापहं नाम तैलं गण्डपधारणात् ।  
दारणं दन्तचालं च हनुमोक्षं कपालिकाम् ॥ २५० ॥  
शीतादं पूतिवक्त्वं शौपिरं विरसास्यताम् ।  
हन्यादाशु गदानेतान् कुर्यादन्तान् स्थिरानपि ॥ २५१ ॥  
दन्तरोगे खदिराद्यं तैलम् ।

शतं खदिरसारस्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।  
पादशेषे रसे लोध्रमञ्जिष्ठारक्तचन्दनैः ॥ २५२ ॥  
कट्टजोशीरलासैलात्वकपत्रामरदारुभिः ।  
रुद्राद्वायामिन्नेष्वा रुद्राद्वायामिन्नेष्वा ॥ २५३ ॥  
कल्कीकृतैः पचेदेभिस्तैलप्रस्थं भिषम्बरः ॥ २५४ ॥  
धार्यं स्यात्कृमिदन्तेषु दन्तेषु चलितेषु च ।  
शौपिरे दन्तनाढीषु विद्रधौ सुखजेषु च ॥ २५५ ॥  
हन्यादाशु तदभ्यङ्गात्कुष्ठं च कफपित्तजम् ।  
वातजानि तु कुष्ठानि व्यङ्गयुहातिसुसिताः ॥ २५६ ॥  
त्वग्दोषपिटकाकण्हरजस्तं वातशोणितम् ।  
व्रणं मासं च नस्येन वलिपलितनाशनम् ॥ २५७ ॥  
ज्वरे वृद्धाक्षादितेवम् ।

लाक्षा निशा च मञ्जिष्ठा फलिनी मधुकं वला ।  
गैरिकं चन्दनं नीलमुत्पलं ध्यामकं तथा ॥ २५८ ॥

<sup>१</sup> एतदुज्जाप्रभं ' हति पा० ।

एषां भागान् समान् कृत्वा पक्त्वा तोये चतुर्गुणे ।  
 त्र्युभागावशेषं तु गर्भं चेमं समावपेत् ॥ २५९ ॥  
 पद्मकं हयगन्धा च रेणुका च तथैव च ।  
 वेतसं चोरकं कुष्ठं देवदारु नखत्वचम् ॥ २६० ॥  
 पुण्डरीकं शताहा च मांसी मधुकमेव च ।  
 एषामक्षसमैः कल्कैः कपायेणाथ पेपितैः ॥ २६१ ॥  
 दधियुक्तारनालानामाढकाढकमावपेत् ।  
 क्षीराढकसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २६२ ॥  
 तदभ्यङ्गे प्रशंसन्ति तैलं दाहनिवारणम् ।  
 वातपित्तोद्घवं क्षिमं ज्वरमेतन्नियच्छति ॥ २६३ ॥  
 सपलापं सवृष्टं च तालुशोपमथ ग्रमम् ।  
 वालानां ग्रहपीडां च रक्तसंदूषिताश्च ये ॥ २६४ ॥  
 तैलं प्रशमयत्वेतल्लाक्षादिकमिति स्मृतम् ।

ज्वरे लघुलाक्षादित्वम् ।

लाक्षारसं समादाय तैलप्रस्थाचतुर्गुणम् ॥ २६५ ॥  
 मस्तुनश्चाढकं दधाद्व्यरेपिश कापिंकैः ।  
 मधुकेन हरिद्राभ्यां मुस्तेन सह मूर्वया ॥ २६६ ॥  
 रास्त्रया कटुरोहिण्या चन्दनेनाखगन्धया ।  
 शताहया च कुष्ठेन हरेण्या देवदारुणा ॥ २६७ ॥  
 मञ्जिष्ठापद्मकोशीरवलामांसीभिरेव च ।  
 तत्सद्गमथ पूतं च स्थापयेद्वाजने शुभे ॥ २६८ ॥  
 जीर्णज्वरपरीतानां श्वासकासातिर्ना तथा ।  
 गर्भिणीनां च नारीणां वालानां शुप्यतामपि ॥ २६९ ॥  
 क्षीणानां शोपिणां चाथ तैलं लाक्षादिकं हितम् ।

विपमज्वरमोक्षार्थं सर्वज्वरग्रहापहम् ॥ २७० ॥  
सन्त्रिपातज्वरे जात्यादितेलम् ।

नवपत्राङ्गुरा जाती द्वे हरिद्रे शतावरी ।  
जीवकर्पभक्तौ रास्ता सरलो देवदारु च ॥ २७१ ॥  
गुस्तातालीशमञ्जिष्ठापाठावरुणचित्रकाः ।  
कुञ्जं सर्पमुग्न्या च मधुकं द्वे च सारिवे ॥ २७२ ॥  
अनन्ताऽऽग्निलकं मूर्वा मधुकं करवीरकः ।  
देवपुष्पं शिरीपस्य मूलं स्योनाक एव च ॥ २७३ ॥  
बव्यं लाक्षा पयस्या च कल्कीकृत्याक्षसंमितान् ।  
पक्त्वा चाथ कपायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २७४ ॥  
एतदभ्यङ्गनाङ्गन्यात्सन्त्रिपातात्मकं ज्वरम् ।  
तैलं जात्यादिकं नाम वातपित्तकफापहम् ॥ २७५ ॥

ज्वरे पट्टवर्णं तैलम् ।

लाक्षाविश्वानिशामूर्वामञ्जिष्ठास्वर्जिंकामयैः ।

पहुणेन च तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरान्तकृत् ॥ २७६ ॥  
शोवे शिरीपावं तैलम् ।

मूलं त्वचं च पत्रं च प्रवालं स्वन्धेव च ।  
शिरीपाङ्गै तुले दथाङ्गर्भस्त्वेष प्रकीर्तिः ॥ २७७ ॥

वरुणः पारिभद्रश्च कुरुभथतुरङ्गुलः ।  
विल्वोऽग्निमन्थकटुङ्गकरघाटकवङ्गुलाः ॥ २७८ ॥

गन्धर्वहस्तकाकोल्यौ काश्मरी पाटली तथा ।

निदिग्धिकाऽथ वार्ताकी शालिपर्णी मयूरकः ॥ २७९ ॥

तुरंगी श्रेयसी चैव शतावर्ष्युदकं तथा ।

मुपव्यनिवला चैव दन्ती सिद्धमुखी तथा ॥ २८० ॥

पञ्चाशतपलिकान् भागान्मूलं पुष्पं च रोहिपात् ।

निष्काथस्त्रिफलायाश्च प्रस्थव्रयमितो भवेत् ॥ २८१ ॥

कोलकानां कुलत्यानां यवानां तत्समस्तथा ।

द्राक्षायाः शतपुष्पायाः कुर्याच्चाढकमेव च ॥ २८२ ॥

१ 'कुषं' इति पा० । २ 'विज्ञलाः' इति पा० । ३ 'मुखी' इति पा० ।

जगलस्य तु मांसस्य द्वे तुले तत्र दायेत् ।  
 एतन्सर्वं समालोहय तोयद्रोणेषु पश्चमु ॥ २८३ ॥

द्रिद्रोणेषुपूतं च तैलद्रोणेन संसुजेत् ।  
 पाठा मगधजा राजा मुपवी गोक्षुरं वला ॥ २८४ ॥

भियद्वृदें इरिदे च मांसी चैला छुटन्नम् ।  
 देवदारु बचा लोधं कुपुं व्याघ्रनखं शटी ॥ २८५ ॥

मजिष्ठा मधुकं मुस्तं रोधं द्वे चापि सारिवे ।  
 चन्दनं श्रीमियं चैव रक्तकं तैलपर्णिकम् ॥ २८६ ॥

समृणालत्वं पत्रं पतझं नीलमुत्पलम् ।  
 एपां द्रिपालिकान् भागान् कृत्वा कल्कं समावपेत् ॥ २८७ ॥

श्रीन्द्रोणान् दधितो दथात्ततः सिद्धं निधापयेत् ।  
 शैरीपमिति विरुद्यातमेतत्तेलं क्षयापहम् ॥ २८८ ॥

पश्चस्तं तु मुधातुल्यं पानाभ्यञ्जनस्तिंषु ।  
 अपस्मारं तथोन्मादं शोपान् सोपद्रवानपि ॥ २८९ ॥

अङ्गमर्दमयो दाहं पाण्डुत्वं स्वरवेकृतम् ।  
 अदितं गृधर्सी गुलमान् कम्पं पश्चवधं तथा ॥ २९० ॥

हुग्रहं खुडावातमाह्यवातापतानकौ ।  
 मूकत्वं गद्धदत्वं च वाधिर्यं कर्णवेदनाम् ॥ २९१ ॥

उर्मा जानुनि कुक्षी च विसर्पं वातशोणितम् ।  
 हन्याद्विवलोपेतो जीवेच शरदौ शतम् ॥ २९२ ॥

प्रयोगादस्य तैलस्य न चाकामन्ति तं गदाः ।  
 विपरीताथ दुष्टाथ भूतोपहतचेतसः ॥ २९३ ॥

ये पिवन्ति शिरीपादं नीरुजस्ते भवन्ति हि ।  
 मूलकर्मविकाराणां भूतानां दंष्टिणामपि ॥ २९४ ॥

अधृप्यं तदृहं यत्र तैलमेतद्विधीयते ।

१ 'सृक्षा' इति पा० । २ मूलकर्म अभिचारः सत्कृता विश्वामि मूलकर्म-  
 आराः, तेषाम् ।

शोषे मुकुमारतैलम् ।

मधुकस्य शतं दद्यात्काशमर्याद्य तथाऽऽढकम् ॥ २९५ ॥  
द्राक्षापरुपकाणां च वलाखर्जूरयोस्तथा ।

तथा मधृकपुष्पाणां तथा मौञ्जातमाढकम् ॥ २९६ ॥  
द्विद्रोणेऽपां विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ।

पूते तस्मिन् कपाये च पुनरमावधिश्रयेत् ॥ २९७ ॥  
आद्रामलककाशमर्यविदारीक्षुरसाढकम् ।

तैलाढकं च संयोज्य पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ २९८ ॥  
पत्त्यमाने तथा तस्मिन् कल्कांशैपां समावपेत् ।

पिप्पली शृङ्खवेरं च कदली च शतावरी ॥ २९९ ॥  
बला तालं कदम्बश्च सूक्ष्मैला पद्मवीजकम् ।

मृद्घाटकं कसेहश्च जीवनीयानि यानि च ॥ ३०० ॥  
द्वे द्वे पले पृथग्दत्त्वा विपचेन्मृदुनाऽग्निना ।

तत्सद्धं सावयित्वाऽऽशु शीतं क्षौद्रेण संसृजेत् ॥ ३०१ ॥  
नस्ये चाभ्यज्ञने पाने मशस्तं वस्तिकर्मणि ।

वातव्याधिषु सर्वेषु शतक्षीणे शिरोग्रहे ॥ ३०२ ॥  
पार्वशूले प्रभेहे च गुल्मे चार्शोभगन्दरे ।

वातभमाङ्गहीनानां कासे श्वासे च हृद्रहे ॥ ३०३ ॥  
ज्वरेऽहृत्यावतीसारे कर्णनादे स्वरक्षये ।

मुकुमारमिदं तैलं वालवृद्धसुखावहम् ॥ ३०४ ॥  
एतद्विद्वृत्यवल्यं च रक्तमांसविवर्धनम् ।

स्वरर्णकरं चैव शोपिणाममृतोपमम् ॥ ३०५ ॥  
पपकस्यास्य तैलस्य सम्यविसद्धस्य यो भवेत् ।  
उदभिदि विपत्यार्थे(?)सोऽपि कृत्यकरो भवेत् ॥ ३०६ ॥  
एकादशा च पदं चैव शोपिणां य उपद्रवाः ।  
शमयेत् मुकुमारं तान् मेयोऽग्निमिव दृष्टिमान् ॥ ३०७ ॥

भर्त्येषि वृषुद्धारीण तैलम् ।

कासीसलाहुलीदन्तीफरवीरोमलः पञ्चन् ।

तेलमर्कपयोमिश्रमध्यद्वात्पायुक्तीलनित् ॥ ३०८ ॥

भर्त्येषि वृषुद्धारीकार्यं तैलम् ।

कासीसं संन्धवं कृष्णा शृण्टी शृण्टुं च लाङ्गली ।

शिला द्रेक्षाभ्यपारथ जन्मुहूर्द्वनिनिव्रक्ता ॥ ३०९ ॥

हरितालं तथा स्वर्णक्षीरी चैतः पचेत्समैः ।

तेलं मुधार्कदुर्घेन गवा मूत्रे चतुर्गुणं ॥ ३१० ॥

एतदभ्यद्वात्पायुक्तीसि सारवन्यातयं द्वृवम् ।

सारकर्मकरं द्वेतन्न च दृपयते वलिम् ॥ ३११ ॥

भर्त्येषि विनिकार्यं तैलम् ।

चिवकं यद्दनं पीलुं शृङ्खवेरं शुकाननाम् ।

सौतोंजं संन्धवं दन्तीं हरितालं मनःशिलाम् ॥ ३१२ ॥

तालीसं करवीरस्य मूलं लाङ्गलिकां वचाम् ।

भद्रकं क्षीरिकां चैव स्वर्णक्षीरी च पेपयद् ॥ ३१३ ॥

शुडवौ पचपमाने तु स्त्रुगर्कपयसोः सिपेद् ।

मूत्रे चतुर्गुणे तैलं पक्षमशोहरं भवेत् ।

सारकर्मकरं द्वेतदभ्यद्वात्पायुक्तमुत्तमम् ॥ ३१४ ॥

कुषे शिथपायारतेलम् ।

देवद्वुदार्वीपशूनाटवाकुची-

तुम्बीफलान्मज्जहयारिदारुभिः ।

तुङ्गाफलत्वग्धरिमन्यवहिजैः

पस्थोन्मितैः सापलसारपद्मुण्डः ॥ ३१५ ॥

तैलादकार्धेन परिष्ठुत्तेस्तैलं विद्ध्याद्वलिवन्धयद्वे ।

रुचैलमध्यद्विधीं प्रदिष्टुं पृथ्याशिनां कुछुविष्णुतकृत्स्यात् ॥ ३१६ ॥

इषु वग्रं तैलम् ।

मूलं शतान्नात्वक् शिरीपाष्मारा-

दर्कान्मालत्याधित्रकास्फोतनिम्बात् ।

१ 'करवीरानलेः' इति पा० । २ 'सद्यवेत्र' इति पा० ।

वीजं कारञ्चं सार्पं प्रापुनाटं

श्रेष्ठा जन्तुर्यं च्यूपणं द्वे हरिद्रे ॥ ३१७ ॥

तैलं तैलं साधितं तैः समूचैस्त्वग्नोपाणां दुष्टनाडीवणानाम् ।

अभ्यङ्गेन श्लेष्मवातोद्वानां नाशायालं वज्रं वज्रतुल्यम् ॥ ३१८

कुष्ठे महावज्रं तैलम् ।

एरण्डतार्क्ष्यघननीपकदम्बभार्गी-

कोम्पिष्टवेष्टुफलिनीमुरवाहणीभिः ।

निर्गुण्ड्यरक्तरसुराद्विवर्णदुग्धा-

श्रीवेष्टगुण्डुशिलापद्मतालविश्वः ॥ ३१९ ॥

तुल्यं स्तुर्गकदुम्बं सिद्धं तैलं सृतं महावज्रम् ।

अतिशयति वज्रकगुणाज्ञूत्रार्ण्यग्रन्थिमालाघ्रम् ॥ ३२०

कुष्ठे भैतकरवीरायं तैलम् ।

श्वेतकरवीरपछ्यमूलत्वक्षुप्पाचित्रकविडङ्गानि ।

शुष्ठार्कमूलसर्पपशिशृत्यग्रोहिणीकदुकाः ॥ ३२१ ॥

एतैस्तैलं सिद्धं कल्कैः पादांशकैर्गवां मूत्रम् ।

दत्त्वा तैलचतुर्मुणमभ्यङ्गात्कुप्रकण्ठग्रम् ॥ ३२२ ॥

कुष्ठे छिन्दूरायं सूर्योपांकं तैलम् ।

सिन्दूरशङ्खचूर्णकद्वितालमनःशिलायवक्षारैः ।

कासीसकच्छसंभवगन्धाद्यसंयुतैस्तैलम् ॥ ३२३ ॥

दिनकरतसं पापाविचर्चिकादद्वकुष्ठकिटभादीन् ।

नाशयति लेपमात्राद्यो भूयः कपालकुष्ठमपि ॥ ३२४ ॥

कुष्ठे कुष्ठकालानलं तैलम् ।

क्षारत्रयं कदुबीणि पञ्चैव लत्रणानि च ।

वचा कुष्ठे हरिद्रे द्वे विडङ्गं चित्रको विषम् ॥ ३२५ ॥

द्वितीयालं शिला गन्धः सिन्दूरं तृत्यखर्षरम् ।

रामठं च रसीनश मदनं च रसाज्जनम् ॥ ३२६ ॥

एतन्सर्वं समांशं च स्तुर्यक्षपयसा पदुतम् ।  
 पद्मुणं सार्पिणं तैलं तैलान्मूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ३२७ ॥  
 सर्वे मन्दानले पहं ग्राणे तैलायशेपकम् ।  
 हन्त्यष्टादश कुष्ठानि मांसमेदोगतानि च ॥ ३२८ ॥  
 दुष्टवणानि शातानि जीर्णनाढीवणानि च ।  
 हन्ति विव्रमसाध्यं च दद्रुपामाविचर्चिकाः ॥ ३२९ ॥  
 एतर्तलं सदाऽभ्यङ्गालुगुष्टव्याधिहरं नृणाम् ।  
 शुष्टे कनकक्षीर्याद्यं तेऽम् ।

कनकक्षीरी शैलं भार्गा दन्तीफलानि मूलं च ॥ ३३० ॥  
 जातीप्रवालसर्पपलशुनविटझं करञ्जत्वक् ।  
 सप्तच्छदार्कपद्मवूलत्वद्विनिष्ठचित्रकासफोताः ॥ ३३१ ॥  
 गुर्जरण्डो वृहतीयूलकमुरसार्जकफलानि ।  
 कुष्टं तुम्बरु पाठा मूर्वा मुस्लं निशा च पद्मन्या ॥ ३३२ ॥  
 एषगजवीजशिग्रुष्यूपणभट्टातकक्षवकाः ।  
 हरितालमवाकपुष्पी तुत्यं कम्पिङ्गुकोऽभृतासङ्घः ॥ ३३३ ॥  
 सौराष्ट्री कासीसं दार्वी त्वक् स्वर्जिका लवणम् ।  
 कल्पेर्तस्तले करवीरकमूलपद्मयकपाये ॥ ३३४ ॥  
 सार्पपमयवा तैलं गोमूत्रचतुर्गुणं साध्यम् ।  
 कदुकालाद्वां स्थाप्य तत्सिद्धं तेन मण्डलान्याशु ॥ ३३५  
 छिन्द्याद्विपगभ्यङ्गात्कण्ठकोठांश विनिहन्यात् ।  
 पाम्रायो आद्वकायं तेऽम् ।

आद्रेकस्यार्किदुग्धस्य स्तुक्षीरस्य पृथक् पृथक् ॥ ३३६ ॥  
 द्वे द्वे पले तु सिन्दूरं द्रिपलं च समाहरेत् ।  
 भूर्जकर्पविभिश्चाणि कडुकलस्य पाचयेत् ॥ ३३७ ॥  
 पलानि दश चाभ्यङ्गात्कच्छ्रोगविनाशनम् ।  
 दद्रुरोपे दार्ढ्याद्यं सूर्यताकर्त्तव्यम् ।  
 दार्वींगण्डीरसंयुक्तेः कासमर्दकसंभवैः ॥ ३३८ ॥

मूर्लैर्महोटिकायास्तु स्वरसेन समन्वितैः ।

स्तुहीक्षीरनिशामूर्वागृहधूमफणिज्जकैः ॥ ३३९ ॥

विडङ्गपिप्पलीरालागौरसर्पेपनागरैः ।

चक्रमर्दकनाडीकावाकुचीनक्तमालकैः ॥ ३४० ॥

मूलकस्य च वीजैस्तु सुरसारग्वधच्छदैः ।

सक्षारलवणोपैतगेमूलपरिपेपितैः ॥ ३४१ ॥

कदुतैलंयुतैः पकैः सम्यग्रविगभस्तिभिः ।

कृतमाशु नराणां तु हन्यादस्य प्रलेपनम् ॥ ३४२ ॥

दद्म् विचर्चिकां कण्ठं पामां दुर्भक्तकं (?) तथा ।

कुषे गुगुञ्चाद्यं सूर्यपाद्यतेलम् ।

गुगुलुमपरिचविडङ्गैः सर्पपकासीसमुस्तसर्जरसैः ॥ ३४३ ॥

श्रीवेष्टतालगन्धीर्मनःशिलाकुपुकम्पिल्लैः ।

उभयहरिद्रासहितैः कदुतैलं विमित्रितेरभिः ॥ ३४४ ॥

आदित्यरश्मिपकं कुषुं विनिहन्ति संस्पर्शात् ।

कुषे विद्रावणं तैलम् ।

मनःशिलालसिन्दूरं सौराष्ट्री गन्धकस्तथा ॥ ३४५ ॥

सिद्धयकं सर्जनिर्यासं कासीसं पुरकुन्दरू ।

श्याहः शङ्खकिकम्पिल्लैः कदुकुषुं चाप्यरुज्जरम् ॥ ३४६ ॥

गवां मूत्रेण संसिद्धं कदुतैलं प्रयोजयेत् ।

पामाविचर्चिकादद्रूकण्ठकुपुकिमीन् व्रणान् ॥ ३४७ ॥

अभ्यङ्गाच्छमयत्येतनाम्ना विद्रावणं मतम् ।

कुषे महामुगन्धं तैलम् ।

चन्दनं कुदुमोभीरं पियङ्गुत्तुटिरोचनाः ॥ ३४८ ॥

तुरुज्जकागुरुकसूर्यः कर्पूरं जातिपत्रिका ।

जातीकङ्गोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च ॥ ३४९ ॥

नलिका नलदं कुषुं हरेणुस्तगरः प्रवम् ।

नरं व्याघ्रनसं सृष्टा धोलो दमनको मुरा ॥ ३५० ॥  
 चोरकं चैव शैलेयं स्थीणेयं संलवालुकम् ।  
 सरलः सप्तपर्णश्च च लाक्षा नामलक्षी तथा ॥ ३५१ ॥  
 कुमुपानि च थातवया लामज्जंकं च पद्मकम् ।  
 प्रपाण्डरीक्कर्णीर्गं समांशिः शाणमावैकः ॥ ३५२ ॥  
 महामुग्न्यमिन्येनत्प्रस्थं तंलस्य माधयेत् ।  
 प्रस्तेदपलदीर्गन्ध्यकण्ठकुष्टहरं परम् ॥ ३५३ ॥  
 अनेनाभ्यक्तगात्रमतु चुद्धः मासनिकांडपि वा ।  
 युवा भवति भुक्राहयः स्त्रीणां चान्यन्तवद्धभः ॥ ३५४ ॥  
 मुभगो दर्शनीयश्च गच्छेय प्रमदाशतम् ।  
 चन्द्र्याऽपि लभते गर्भं पण्डोऽपि पुरुषायने ॥ ३५५ ॥  
 अपुत्रः पुत्रमाप्नानि र्जविद्य शरदां शतम् ।  
 ३५६ मनीयां तेषम् ।

मरीचं विश्रुता मुस्तं हरितालं मनःशिला ॥ ३५६ ॥  
 देवदारु दरिद्रं ह्रेषु पांसी कुष्टं मनन्दनम् ।  
 विशाला करवीरश्च भानुक्षीरं शहृदसः ॥ ३५७ ॥  
 एतेषां कार्यिकान् भागान् विपस्थार्थपलं भवेत् ।  
 प्रस्थं च कदुर्तलस्य गोभूते द्विरुणे पचेत् ॥ ३५८ ॥  
 मृतपात्रे लोहपात्रे वा शर्नर्मुदधिना भिषक् ।  
 तंलेननिन नदयनित रोगा देहे शरीरिणाम् ॥ ३५९ ॥  
 पामा विचर्चिका चैव दद्रूविस्फोटकानि च ।  
 अभ्यङ्गेन प्रणायनित कोमलत्वं प्रजापते ॥ ३६० ॥  
 प्रच्छानितानि तंलेन श्वित्राण्यतेन मर्दयेत् ।  
 चिरोत्थमपि यच्छूत्रं सर्वणं भ्रषणाद्वेत् ॥ ३६१ ॥  
 कुष्टे आमरिक तेलम् ।

गुआमूलं फलं कुष्टं विपं सिन्दूरसिक्यकम् ।  
 दे दरिद्रे सलाहूल्यौ गुग्गुल्ये तथैव च ॥ ३६२ ॥

१ ‘इषुणे’ इति वा ।

कृकलाससमायुक्ते कदुतैलं विपाचयेत् ।

क्षिपेत्स्वरूपवस्तूनि सुदग्धान्यवतारयेत् ॥ ३६३ ॥

उद्गृत्य तैलमध्यातु मूक्षमचूर्णानि कारयेत् ।

चूर्णं तैले पुनः कृत्वा विशुलीं दापयेत्ततः ॥ ३६४ ॥

जीवन्तीं जीवनीभूलं तथा च व्रणरोहिणीम् ।

एतचूर्णं समालोड्य त्वेकरात्रं तु धारयेत् ॥ ३६५ ॥

शिरोरोगं व्रणं कुष्ठे पामां चैव विचरिंकाम् ।

ये व्रणा न प्ररोहन्ति गम्भीरा भैरवाश्च ये ॥ ३६६ ॥

तांस्तु नाशयते सर्वान् सक्षाहेन न संशयः ।

भियजां नात्र सन्देहस्तैलं भ्रामरिकं खलु ॥ ३६७ ॥

घणे महाकशायं तैलम् ।

उदुम्बरो वटश्चैव मुक्षः पिप्पल एव च ।

मधूक आम्रसज्जो च जम्बूद्यमथार्जुनः ॥ ३६८ ॥

कम्पिछुकः प्रियालश्च कदम्बसितन्दुकस्तथा ।

पलाशो रोध्रसंमिश्रं वदरं पद्मकेसरम् ॥ ३६९ ॥

शिरीयो वीजकर्ण्य तथा रक्ते च चन्दनम् ।

अयीपां काथकल्काभ्यां तैलं मन्दाश्रिसाधितम् ॥ ३७० ॥

नाम्ना महाकपायं तु क्षिग्मभ्यञ्जनाद्धरेत् ।

व्रणांस्तु देहिनामेतचिरकालभवानपि ॥ ३७१ ॥

वर्त्माके मनश्चिलायं तैलम् ।

मनश्चिलालभल्लात्मूलागुरुचन्दनैः ।

जातीपद्मवपत्रैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ ३७२ ॥

वल्मीकिं नाशयत्येतद्वहुच्छिद्रं वहुसवम् ।

गण्डमलाया फणिअकार्यं तैलम् ।

फणिज्जकश्च नादेयं क्षवको नवमालिका ॥ ३७३ ॥

अशमन्तको विडङ्गानि मयूरकफलानि च ।

कदूफले सहदेवा च देवदार वितुवकम् ॥ ३७४ ॥

वीजं कारञ्जपालाशं मूलकस्यार्जकस्य च ।  
 मेहापर्षटको मुस्तं विकुदु त्रिफला वचा ॥ ३७५ ॥  
 मुवर्चला च द्विन्दुश्च समभागानि कारयेत् ।  
 अक्षमात्रैः पचेदेभिस्तैलमस्यं मुखाग्रिना ॥ ३७६ ॥  
 अजामूत्रेण संयुक्तमजाक्षीरे चतुर्गुणे ।  
 नस्यं तदस्य दध्याच्च गण्डमालाविनाशनम् ॥ ३७७ ॥  
 विदारिकां गलग्रन्थं गलगण्डं च नाशयेत् ।  
 गण्डमालायों काकादनोत्तेष्ठम् ।

काकादनीविश्वलयाहानदीजतुष्टिकाफलैः ॥ ३७८ ॥  
 जीमूतवीजककोटीर्विश्वालाकृतवेधनैः ।  
 पाठान्वितैः पलार्धशैर्विपकर्षयुतैः पचेत् ॥ ३७९ ॥  
 प्रस्थं करञ्जतैलस्य निर्गुण्डीस्वरसाढके ।  
 अनेन गण्डमाला हि चिरजा पूयवाहिनी ॥ ३८० ॥  
 सिद्धस्यसाध्यकल्पाऽपि पानाभ्यञ्जननावनैः ।  
 रक्षिते मूर्वीर्यं तेलम् ।

द्राशामधूकमूर्वेशुरसचन्दनपद्मकैः ॥ ३८१ ॥  
 सारिवाद्रयनक्ताहैस्तैलमस्यं विपाचयेत् ।  
 क्षीरे चतुर्गुणे पकं कलकैरक्षसमैर्भिर्पक् ॥ ३८२ ॥  
 रक्षितचहरं त्वेतद्रण्ये वातग्रगुच्छम् ।  
 मूर्वीतैलमिदं नाम्ना सर्वणकरणे परम् ॥ ३८३ ॥  
 कुषे विपादनं तेलम् ।

कम्पिलुकनिशायुग्मैः शालनिर्यासचित्रकैः ।  
 पुरकीटारिसंयुक्तैः पालिकैः मुविचूर्णितैः ॥ ३८४ ॥  
 एकीकृत्य समरेभिर्विपस्य च पलद्रयम् ।  
 आतपे स्थापयेद्दीमान् कडुतैलपरिष्कृतम् ॥ ३८५ ॥  
 विपादनमिदं तंलं लेपात्सिध्मविचर्चिके ।  
 हन्ति पापापचीन्यद्वृष्टेणभगन्दरान् ॥ ३८६ ॥

१ 'महापद्मां पर्षटकं मुस्तं विकुदुकं वचाम्' इति पा० । २ 'विषाद-  
 मिद' हनि पा० ।

कुषु जीवन्त्यार्थं तेषम् ।

जीवन्ती मञ्जिष्ठा दार्वी कम्पिष्टकः पयस्तुत्यम् ।

एष धृतैलपाकः सिद्धः सर्जससंयुक्तः ॥ ३८७ ॥

देयः समधुच्छिष्ठे विपादिकाशामकोऽभ्यङ्गात् ।

चर्मकुषु किटिर्म सिध्रम् शाम्यत्यलसकं च ॥ ३८८ ॥

प्रमाणा जीर्खार्थं तेषम् ।

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्धपलं तथा ।

कदुत्तेलं पचेदेभिः सद्यः पामाहरं परम् ॥ ३८९ ॥

कृमिरोगे विड्जार्थं तेषम् ।

विड्जानि स्तुहीक्षीरमर्कक्षीरं तथैव च ।

गुड्जाफलानि गण्डीरं इयामा निर्दहनी तथा ॥ ३९० ॥

एतैर्गोमूत्रसंपिष्टस्तैलं मूर्ध्नि निधापयेत् ।

कृमयः पूरणादेव नश्यन्त्यपि विमार्गगाः ॥ ३९१ ॥

वातरोगे गुहूचीतेषम् ।

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुहूच्याः पादशेषितम् ।

क्षीरद्रोणयुतं कल्कैः पचेत्तलादकं शनैः ॥ ३९२ ॥

पिष्टर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीर्युर्युतं तथा ।

कुषुलागुरुमृद्रीकामांसीव्याधीनर्वैर्वैः ॥ ३९३ ॥

सारिवाश्रावणीव्योपमिशीशृङ्गीहरेणुभिः ।

त्वक्पत्रागुरुविकान्तास्थिरातामलकीघनैः ॥ ३९४ ॥

नतकेसरकोशीरपद्मकोत्पलचन्दनैः ।

सिद्धं तच्छनकैस्तैलं पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ ३९५ ॥

धन्यं पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तमुद् ।

तोदकम्परुजायामयिरःकम्पामयार्दितान् ॥ ३९६ ॥

हन्याद्वाणकृतान्दोपान् गुहूचीतैलमुत्तमम् ।

वातरोगे द्वितीयं गुहूचीतेषम् ।

गुला० पञ्चद्रोणेष्वाणस्यां पचेत् ॥ ३९७ ॥

पादशेषं तु सक्षीरं तैलस्यार्धाढकं पचेत् ।  
एलामांसीनतोगीरगारिवाकुष्ठचन्दनः ॥ ३९८ ॥  
शतपुष्पावलामेदामदामेदर्थिनीवर्कः ।  
काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्यतिवलानखेः ॥ ३९९ ॥  
महाश्रावणिकाजीवाविदारीकपिकच्छुभिः ।  
शतावर्याऽथ भूयाश्रीकिरदाल्याहरेणुभिः ॥ ४०० ॥  
यनागोशुरकैरण्डरास्ताकालासदाचर्चः ।  
द्विनीरकसदादाल्यपर्भश्चापि कार्पिकैः ॥ ४०१ ॥  
मञ्जिष्टायास्तिकर्पेण मधुकाष्टपलेन तु ।  
कल्फस्तत्क्षीणवीर्याश्रिवलसंमूढचेतसः ॥ ४०२ ॥  
युक्तानुन्मादकम्पापस्मारैश्च प्रकृतिं नयेत् ।  
वातव्याधिहरं श्रेष्ठं तैलाम्यममृताद्यम् ॥ ४०३ ॥  
इतरोगे गदवर्त्तीतेवम् ।

समूलशाखस्य सहाचरस्य तुलां सपेतां दशमूलतश्च ।  
पलानि पञ्चाशदभीखतश्च पादावशेषं विपचेद्रहेऽपाम् ॥ ४०४ ॥  
सहचरहस्तीनीलोत्पलशंतगात्रस्तुपातुरः पतितः ।  
सलिलद्रोणतदागे सुतसधर्माशुतम् इव ॥ ४०५ ॥  
तैलप्रस्थमतोऽस्मै दद्याच्चलाच्चतुर्गुणं च पथः ।  
मदगन्धसुरभिसैन्धवकल्कथाशोन्मितैर्लिङ्गः ॥ ४०६ ॥  
इतरोगे नीलसहचरतेवम् ।

सहचरहस्ती नीलोत्पलशंतगात्रस्तुपातुरः पतितः ।  
सलिलद्रोणतदागे सुतसधर्माशुतम् इव ॥ ४०७ ॥  
तैलप्रस्थमतोऽस्मै दद्याच्चलाच्चतुर्गुणं च पथः ।  
मदगन्धसुरभिसैन्धवकल्कथाशोन्मितैर्लिङ्गः ॥ ४०८ ॥

१ ‘०हृष्णुरण्डकैः’ इति पा० ।

एलामृणालकुष्टप्रियहृकाश्मीरपुरलोहैः ।  
 श्रीवैष्टकसर्जरसैश्रन्दनशैलेयरजनीभिः ॥ ४०९ ॥  
 दारुशताहापञ्च्याकेसररसपेलवयनैश्च ।  
 तीणों मालतीमुपैः सहचरनीलागवनपतितः ॥ ४१० ॥  
 मेदोस्थिमज्जमांसासृग्युधिरशुक्रसंश्रयांश्चिरोत्पन्नान् ।  
 हन्याद्रातविकारानशीतिपेतन्यहानीलिंग् ॥ ४११ ॥

बातरोगे दशमूलाद्यं तैलम् ।

दशाद्विकेशरारिष्टव्राह्मीपाठाकदुत्रिकैः ।  
 शटीपुनर्नवाभार्गीमुरसाम्बुफलत्रिकैः ॥ ४१२ ॥  
 शह्वपुपीत्वगेलार्कमुनिपादपपल्लवैः ।  
 अङ्गोटवरुणास्फोतशिरीपकटभीफलैः ॥ ४१३ ॥  
 कृमिन्द्रमूलशम्प्याकसर्पपामरदाखिः ।  
 प्रियहृहिङ्गमज्जिष्ठासुमुखातन्दुलीयकैः ॥ ४१४ ॥  
 गिरिकर्णीविचाकुष्टकहृष्टरजनीद्रवैः ।  
 मधूकसारसिन्धूत्थासेतनीलोत्पलाम्बुदैः ॥ ४१५ ॥  
 कदुतैलं सर्पेरभिः पर्क क्षीरे चतुर्गुणे ।  
 सोन्मादं हन्त्यपस्मारं पानाभ्यञ्जननावैः ॥ ४१६ ॥  
 ढाकिनीभूतवेतालनैगमेपादिकान् ग्रहान् ।  
 कृत्याभिचाररक्षांसि नाशयत्यखिलान्यपि ॥ ४१७ ॥  
 तैलमेतत्सुरेन्द्रेण नन्दस्य कथितं पुरा ।  
 वालस्य किल रक्षार्थं विष्णोरमिततेजसः ॥ ४१८ ॥

१ अनेकनीलपुष्टयुक्तं यहनरं शतपलमित समूडपत्रशाखमुखाद्यं खण्डया:  
 प्रकल्पयित्वा संभुव्य इवैगुभ्यप्रहश्विवानान् द्विदोणमिते जले प्रक्षिप्य तीत्रा-  
 नपे शोषयेत् । पादशेषे कषाये गालयित्वा, तैलप्रस्त्रदूयं, अष्टप्रस्थमितं दुग्धं,  
 मदगन्धा( सप्तर्णी) शीतो मालतीपुष्टशन्तानो प्रत्येके कर्पमिताना कर्क च  
 दस्त्रा मन्दामिमा तैलं साधयेदिति भावः ।

अभ्यज्य सर्वगात्राणि भोक्तव्यं रिषुवेशमनि ।

तैलमध्यञ्जनं श्रेष्ठं वसतोऽरातिसङ्कटे ॥ ४१९ ॥

अथ विलिप्तभगा भगशालिनी यदि रमेत नरं दिवंसे शुभे ।

मदनसायकं जरितोरसां भवति तस्य तयाऽपहृतं मनः ॥ ४२० ॥

ताम्बूलमुखवासेषु व्यञ्जनाहारयोगनः ।

अनामिकाग्रसंयुक्तं चशीकरणमुच्चमम् ॥ ४२१ ॥

मप्ते गन्धतेलम् ।

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले ।

दिवा दिवा विशोध्यापि गवां क्षीरेण भावयेत् ॥ ४२२ ॥

तृतीयं सप्तरात्रं तु भावयेन्मधुकाम्बुना ।

ततः क्षीरं पुनः पीतान् सुशृङ्खांश्चूर्णयेद्द्विधः ॥ ४२३ ॥

काकोल्प्यादिं सयष्ट्याद्वं मज्जिष्ठां सारिवां तथा ।

कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ ४२४ ॥

शतपुष्पां च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ।

पीडनार्थे प्रकर्तव्यं सर्वगन्धशृतं पयः ॥ ४२५ ॥

चतुर्गुणेन तोयेन तच्चैलं विपचेद्विपक् ।

एलामंशुमतीं पञ्चं जीरकं तगरं तथा ॥ ४२६ ॥

रोधं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुसारिवाम् ।

क्षीरथुलां च सेरेयमनन्तां समधूलिकाम् ॥ ४२७ ॥

पिष्ठा शृङ्खाटकं चैव पूर्वोक्तान्योपधानि च ।

एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाऽग्निना ॥ ४२८ ॥

एतच्चैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मस्तु ।

पक्षयाते तालुशोये शाकेष च तथाऽदिते ॥ ४२९ ॥

मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे ।

वाधियें तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥ ४३० ॥

पथ्यं पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ।

ग्रीवास्कन्धोरसां द्विद्विमुनैवोपजायते ॥ ४३१ ॥

मुखं च पद्मसंकाशं समुग्निधिसमीरणम् ।  
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुव् ।  
कार्यं राजाहेतत्तु राजामेव विचक्षणः ॥ ४३२ ॥

वृहत्सहचरतंत्रम् ।

काये साहचरे वरीपरियुते भुद्रामृतैरण्डजे  
व्यानाकारणिविल्वगोष्ठुरयुते सिंहाम्रिमन्थोद्वये ।  
रास्त्रोशीरविशालदारुतगैरस्त्वकपत्रमेदानखैः  
स्पृक्षाशैलघनैलवालुसरलैः कङ्कोलकुप्रेत्यलैः ॥ ४३३ ॥

कौन्तीकेशीवलादिसारिवनिशाऽयामाशताहानते-  
र्मजिष्ठापुरसिङ्गचन्दनवैथण्डादस्थौणेयकैः ।  
श्रीवेष्टगरुरोधकुडुम्बवरैः कल्कैः समार्शैः खलु-  
तैलं क्षीरसमं विपाच्य विधिना वस्तौ च नस्ये ध्रुवम् ॥ ४३४ ॥

पानाभ्यङ्गविधौ नियोजितमिदं वातादिसर्वामयान्  
गुलमाष्टीलशिरोर्तिशूलमुदरं श्वासामकासञ्चरम् ।  
शोफं भ्रीहगुदामयं च जठरं धातुक्षयाध्यानकं  
अर्शैः कुष्ठभग्नदरं च शमयेत्सर्वान् व्रणान् हन्ति च ४३५  
जयति पवनरोगान् कामलां विद्विवन्धं  
दिननिशितिमिरान्धयं गृध्रसां मूर्ध्नि चातम् ।  
सहचरामीति नाम्ना तैलमेतत्प्रसिद्धं  
धनपतिनृपयोग्यं भाषितं शम्भुनेव ॥ ४३६ ॥

तरक्षवाद्य तैलम् ।

तरक्षोद्ध शृगालस्य पादावच्छाणि संत्यजेत् ।  
कोष्ठसारादिकं सर्वपुत्काच्य वहुलेऽम्भसि ॥ ४३७ ॥

पादशेषं परिगृह्य छागगच्यपयोन्वितम् ।  
तैलं रससमं दक्षा मादिरामस्तुकाञ्जिकम् ॥ ४३८ ॥

देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ।  
करञ्जस्त्रिवृत्ता मुस्ता पत्राङ्गं रेणुकं त्वचम् ॥ ४३९ ॥

क्षारद्रयं तथा व्योषं पञ्चेव लघणानि च ।  
 वचा तुरगगन्धा च मजिष्ठा सर्जगुगुलूङ् ॥ ४४० ॥  
 मेदा रास्ता च वर्षाभूरेला श्वलेयकं घला ।  
 एतेरर्थपञ्चेव्यः शर्नमृदग्निना पचेत् ॥ ४४१ ॥  
 तैलं तेनव नश्यन्ति रोगा देहे शारीरिणाम् ।  
 अशीति वातज्ञान् रोगान् शोफं शूलं कटिग्रहम् ॥ ४४२ ॥  
 मांसमेदःश्रितं वायुं हर्षं चैव भगन्द्रसम् ।  
 लृतां सद्योवर्णं चैव नाडीदुष्ट्रणानि च ॥ ४४३ ॥  
 भूतग्रहमपस्मारमुन्मादं च नियच्छति ।  
 हन्ति वातमसाध्यं च पामादद्विचर्चिकाः ॥ ४४४ ॥  
 एतच्चेलं सदाभ्यङ्गात्सर्वरोगहरं नृणाम् ।  
 व्याघ्रेलम् ।

व्याघ्रशिरः समादाय काथयित्वा जले वहु ॥ ४४५ ॥  
 उल्लूखले तु संकुट्य रसं नीत्वा मुगालितम् ।  
 कटाहे मुट्ठे दत्त्वा पचेत्साधु विधानतः ॥ ४४६ ॥  
 द्रव्याण्येतानि वै वैशः पादमानेन दापयेत् ।  
 देवदारु वचा कुप्तं तगरं चन्दनं घनः ॥ ४४७ ॥  
 मजिष्ठा पुष्करं रास्ता चातुर्जितकसीन्धवम् ।  
 पिप्पली मरिचं शुण्ठी मांसी सहचरो जलम् ॥ ४४८ ॥  
 अश्वगन्धात्मगुमे च क्रमुकश्च शतावरी ।  
 श्वदंष्ट्रा केतकी मूर्वा मधुकं चागुरुस्तथा ॥ ४४९ ॥  
 जात्याः फलं तथा पत्री तथा कडुकरोहिणी ।  
 ग्रन्थिकं शुल्कन्दा च शतपुण्पा पुनर्नवा ॥ ४५० ॥  
 जीवनीयो गणश्वेत रालकेसरवोलकम् ।  
 नखं च कृष्णसारश्च वत्सनाभस्तथैव च ॥ ४५१ ॥  
 अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।  
 अशीति वातज्ञान् रोगान् हन्यादाशु प्रयोजितम् ॥ ४५२ ॥

अथानां वातभग्नानां शिथुनां करिणामपि ।  
 अंशशोपे सुडे वाते क्रोष्टीये कटिग्रहे ॥ ४५३ ॥  
 मन्यास्तम्भे हनुओवद्वाते मन्दे तथाऽनले ।  
 पुत्रोत्पादि तु व्यन्ध्यानां पण्डानां कामवर्धनम् ॥ ४५४ ॥  
 अश्विभ्यां निर्मितं चैव प्रजानां हितकारकम् ।  
 अनेनैव विधानेन तैलं तारक्षवं पचेत् ॥ ४५५ ॥  
 वातारिन्द्रियम् ।

शतावर्यस्तुलामेकां तुलां गोक्षुरकस्य च ।  
 तुलार्थं तिलतैलस्य चरणस्य पलानि पद् ॥ ४५६ ॥  
 एरण्डच्छदनद्रावपलानि नव कारयेत् ।  
 बुकशियुक्तर्कारीसिन्दुवारसूवर्णकात् ॥ ४५७ ॥  
 नीलिकाप्रनिविष्टपणाभ्यां करञ्जत्केशरञ्जकात् ।  
 पदपलं गुगुलोर्दत्त्वा तैलं मृद्ग्रिना पचेत् ॥ ४५८ ॥  
 कौबजाक्षेपकपाङ्गुल्यमुसल्वहमन्दगामिताः ।  
 पक्षावातहनुस्तम्भसन्धिरोगादिकानपि ॥ ४५९ ॥  
 नाशयेत्तत्क्षणादेव तमः सूर्योदयो यथा ।  
 तैलं वातारिनामेदं सर्ववातहरं परम् ॥ ४६० ॥  
 दारूणके सारिवायं तेलम् ।

सारिवोग्रामृतायष्टीत्रिफलानीलयुत्पलम् ।  
 नीलीभृद्धारकासीसम्हानिभ्यफलानि च ॥ ४६१ ॥  
 कदुतैलं पचेदेभिः सार्थं यवरसेन तु ।  
 कण्ठं दारूणकं हन्ति शिरोरोगे च शस्यते ॥ ४६२ ॥  
 वातरोगे दशाङ्गं तेलम् ।

तर्कारीभृद्धशियूणां निर्गुणीशणयोस्तथा ।  
 वातभृपजातीनां निभ्यभास्तरयोरापे ॥ ४६३ ॥  
 स्वरसं तु समादाय प्रत्येकं प्रस्थमानतः ।  
 प्रस्थं तु निलतैलस्य शनैर्मृद्ग्रिना पचेत् ॥ ४६४ ॥

एरण्डमूलवर्पाभूद्यगन्धाशतावरी-  
 रास्तागोक्षुरकार्थेव शतपुष्पा च सैन्धवम् ॥ ४६५ ॥  
 प्रत्येकं कर्पादादय कर्पार्थं त्रिकटोस्तथा ।  
 एलात्ववश्वमांसीनां कर्पार्थं च चिनिक्षिपेत् ॥ ४६६ ॥  
 तेलेनानेन नश्यन्ति वातरोगाः मुदारुणाः ।  
 आक्षेपकं हनुस्तम्भपतञ्जकमर्दितम् ॥ ४६७ ॥  
 अपवाहुकविश्वाचीपशाधातापतामकम् ।  
 स्त्रायुसनिधिगतं वातं सप्तधातुगतं नथा ॥ ४६८ ॥  
 ऊरुस्तम्भामवातीं च वातरक्तं मुदारुणम् ।  
 दशाङ्गसंज्ञकं तेलं हन्यादन्यांश्च वातजान् ॥ ४६९ ॥

कर्पूरार्थं तेलम् ।

कर्पूरचन्दनवचासुरदारुमूर्वी-  
 गन्धर्वमूलरजनीद्वयसिन्धुजातेः ।  
 मेदाद्यत्रिकदुपुष्करमूलकुष्ठ-  
 रास्ताद्यामुहारितालककुडुम्बश्च ॥ ४७० ॥  
 पथ्याक्षकास्थितगरागुरुसारेप-  
 शृङ्गीजटाद्ययुर्वेः खलु कलिकतैश्च ।  
 गोदुग्धयुक्त कदुकतेलमिदं विषकं  
 रुयातं निहन्ति सहसा विविधा रुजश्च ॥ ४७१ ॥

ज्वरे लाक्षादिकं तेलम् ।

लाक्षारससम्पं तेलं तेलान्मस्तु चतुर्गुणम् ।  
 अंशवगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठाब्जचन्दनेः ॥ ४७२ ॥  
 मूर्यारोहिणिकारास्ताद्यामधुक्तेः सह ।  
 सिद्धं लाक्षादिकं नाम तेलमभ्यज्जनादिभिः ॥ ४७३ ॥  
 सर्वज्वरविषोन्मादश्वासापस्मारकासनुत् ।  
 यक्षराक्षसभूतश्च गर्भिणीनां च शस्यते ॥ ४७४ ॥  
 पित्तज्वरेण तीव्रेण दक्षमानस्य देहिनः ।

प्रवातमन्दरस्यस्य कुर्याच्छीतामिमां क्रियाम् ॥ ४७५ ।  
अन्वासनं तैलम् ।

पिष्पली पौष्करं मूलं शतपुष्पा वचा शटी ।  
यष्टधाहं देवदारुथं चित्रको मदनात्पलम् ॥ ४७६ ॥  
चिल्वं कुष्ठं च कल्केन तैलात्पादांशकेन हि ।  
तैलतो द्विगुणं क्षीरं दत्त्वा मृदग्निना पचेत् ॥ ४७७ ॥  
एतदन्वासनं नाम गुदस्तावं प्रवाहिकाम् ।  
गुदव्यथां पुरीपस्य भृत्यं च एुनः एुनः ॥ ४७८ ॥  
वड्डणस्यावरोधं च गलरोधं कटिग्रहम् ।  
निहन्ति वातजान् रोगान् दीपयत्यपि चानलम् ॥ ४७९ ।

महानीलं तैलम् ।

ककुभस्य श्रीपर्णीः पुष्पं जम्बूफलं प्रियहृष्टं ।  
मञ्जिष्ठा त्रिफलाऽगुरुमदनफलं चित्रकथैव ॥ ४८० ॥  
नीलोत्पलमृणालकवीजककर्दमकनील्यश्च ।  
भृत्यातः स्रोतोऽनमात्रास्थिकासीसपौण्डरीकं च ॥ ४८१ ॥  
मदयन्ती वाकुचिका रोधं चैतैस्तु समभागैः ।  
तुलसीपत्रं वीजं सणस्य सूर्यभक्ता च ॥ ४८२ ॥  
काकमाचीदारुकयष्टीपधुमार्कवं च सेरेयः ।  
ऐर्द्धिगुणैः कल्कीकृतैर्भीतमज्जतैलं च ॥ ४८३ ॥  
कलकाचतुर्गुणितं, तत्तुर्गुणोऽय धात्रीस्वरसः ।  
मूर्यातपे विपाच्यं नाम्ना तैलं महानीलम् ॥  
पलितादिषु प्रयोज्यं जट्रूर्ध्वंगेषु च निषुणतरैः ॥ ४८४ ॥

पलिते नील्याद्यं तैलम् ।

नीलीदलं भृङ्गरजोऽर्जुनत्वक् पिण्डीतकं कृष्णमयोरजश्च ।  
वीजोऽद्रवं साहचरं च पुष्पं पव्याक्षथात्रीसहितं विपाच्य ॥ ४८५ ॥  
एकीकृतं सर्वमदः प्रमाणं पक्षेन तुल्यं नलिनीभवेन ।

संयोज्य पक्षं कलशे निधाय लौहे द्वे पद्मनि सापिधाने ॥४८६  
एतेन तैलं विपचेद्विमृश्य रसेन भृङ्गत्रिफलाभवेन ।

आसन्नपाके च परीक्षणार्थं पक्षं बलाकाभवमाक्षिपेत् ॥४८७॥  
भवेद्यदा तद्वमराङ्गनीलं तदा विपकं विनिधाय पात्रे ।

कृष्णायसे मासमध्यस्थितं तदभ्यङ्गयोगात्पलितानि हन्यात् ॥४८८

अहस्तमें द्विपदमूल्याद्य तेलम् ।

त्रिफला पञ्चमूल्यौ द्वे चित्रको देवदारु च ।

एकाष्ठीला त्वपामार्गः श्रेयसी चायसी मुभा ॥ ४८९ ॥

काला भार्गी पृथक्पर्णी मुवहा मदयन्तिका ।

विशल्योशीरकाइमर्यहिस्तादार्व्यस्तथाऽम्लिका ॥४९०॥

चिरविल्वो विशोकश्च बला चांशुमती तथा ।

पयस्या पीलुपर्णी च सगुड्चो शतावरी ॥ ४९१ ॥

एपां पञ्चपलान् भागान् जलद्रोणेषु सप्तमु ।

अष्टभागावशेषेण पचेत्तलं शनैः शनैः ॥ ४९२ ॥

कुटुं च शतपुण्या च चित्रकरुद्युपणं चया ।

देवदार्वगुरु श्रेष्ठुं विडङ्गं मुस्तमेव च ॥ ४९३ ॥

अश्वगन्धा स्थिरा पात्रा मूर्वा श्योनाकमेव च ।

पिष्पली शृङ्गवेरं च दन्ती हिंगम्लवेतसौ ॥४९४॥

भिपगेपां तु गर्भेण कपायेण च साधयेत् ।

सिद्धं शीतं च पूतं च क्षीद्रेण सह संसृजेत् ॥ ४९५ ॥

दद्याच्चदस्य पानार्थं तदेवाभ्यङ्गने भवेत् ।

अहस्तम्भाश्चिरोत्पन्नस्तैलेननेन शाम्यति ॥ ४९६ ॥

श्लीषदं चाढ्यवातं च सुडवातांश्च नाशयेत् ।

अर्द्धसिं दन्तशयं तेलम् ।

दन्तीकाशीसिसिन्धूत्थंकरवीरानलैः पचेत् ॥ ४९७ ॥

तैलमर्क्षपयोनिष्ठश्रमभ्यङ्गात्पायुक्तीलग्नित् ।

कृमिरोगे महावीर्यं तैलम् ।

शशमार्जारयोर्ब्रोः कपेर्टपवराहयोः ॥ ४९८ ॥  
 मांसानां द्रेतुले सम्यक् पचेद्वोणेषु सप्तसु ।  
 अष्टभागावशेषेण तेन तैलाढकं पचेत् ॥ ४९९ ॥  
 भासवायं सकाकानां गृध्रस्याख्योः शुकस्य च ।  
 कलविङ्कुलिङ्गानां कुकुटस्य च वै वसाम् ॥ ५०० ॥  
 मज्जानं दापयेदेषां पित्तान्यपि च लाभतः ।  
 अपामार्गफलं भार्गी वीजं शैरीपमेव च ॥ ५०१ ॥  
 फणिज्ज्ञकं विड्ज्ञानि शिग्मुकस्य त्वचस्तथा ।  
 उद्युपणं हिङ्गुनिर्यासां वचा कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ५०२ ॥  
 हस्तिपर्ण्याः शिरीपस्य कुभस्यासनस्य च ।  
 पलाशस्यारिमेदस्य मूलं वीजं च संहरेत् ॥ ५०३ ॥  
 पिचुमन्दस्य निर्यासः शङ्खक्या गुग्गुलोस्तथा ।  
 हिङ्गवम्लवेतसां चापि तथा ग्राहा निदिग्धिका ॥ ५०४ ॥  
 तुल्यान्येतानि गर्भाणि तैलं कर्णप्रपूरणम् ।  
 नावनं चावगाहश्च शीर्पकृमिविनाशनम् ॥ ५०५ ॥  
 तैलस्यास्य प्रणीतस्य गन्धेन कृमयः स्थिराः ।  
 नश्यन्ति न विवर्धन्ते वलात्मुवहवोऽपि च ॥ ५०६ ॥  
 युक्त्याऽस्मिन् कृमयस्तैले नस्ये तु प्रतिपादिते ।  
 ताङ्गं भिलाऽऽथ मूर्वस्तु प्रदवन्त्युपपीडिताः ॥ ५०७ ॥  
 सर्वकृमिद्वयं शेतत्तैलं शिरसि देहिनाम् ।  
 वलावलं विचार्येवं नस्ये तदवचारयेत् ॥ ५०८ ॥  
 कृमिभिर्भृत्यमाणानां नराणामेतदुच्चमम् ।  
 तैलमेतन्महावीर्यं सर्वकृमिविनाशनम् ॥ ५०९ ॥  
 अन्तर्मुद्दो गन्धवेतैलम् ।  
 शतमेरण्डमूलस्य पलं शुण्ठीयवाढम् ।  
 जलद्रोणेऽयं दुर्घेन पचेदप्तुणेन तु ॥ ५१० ॥

प्रस्थमेरण्डतेलस्य समुला द्विपला तथा ।  
 द्विपलं शृङ्खलेरस्य गर्भं दत्त्वा शान्तः पचेत् ॥ ५११ ॥  
 पित्रेचन्नियतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् भवेत् ।  
 अन्तरुद्धिं निहन्त्याशु तेलं गन्धर्वसंज्ञितम् ॥ ५१२ ॥

कर्णरोगे कुषायां तैलम् ।

कुषुं मरिचलाङ्गल्यौ शुण्डी मागधिका घनम् ।  
 सरसाङ्गनकासीसं जतुसंन्धवगुगुलु ॥ ५१३ ॥  
 तालं गिला च निर्गुण्डी विल्वं भद्वातकं तथा ।  
 कापिकेद्वदारुत्यतेलस्य द्विपलेन च ॥ ५१४ ॥  
 कुडवं तिलतेलस्य पचेन्मूत्रे चतुर्गुणे ।  
 तत्कर्णपूरणात्क्षिमं पूयसावनिवारणम् ॥ ५१५ ॥  
 कृमिद्वं दुष्टनादीद्वं व्रणानां चेव रोपणाम् ।  
 द्विरोगेण मद्वानीलं तैलम् ।

आदित्यविष्णुमूलानि कृष्णसैरेयकस्य च ॥ ५१६ ॥  
 मुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णसणस्य च ।  
 मार्कवः काकमाची च मधुकं देयदारु च ॥ ५१७ ॥  
 पृथक् दशपलांशानि पिष्पली त्रिफलाऽङ्गनम् ।  
 प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा रोधं कृष्णागुरुत्पलम् ॥ ५१८ ॥  
 आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणालं रक्तचन्दनम् ।  
 नीली भद्वातकास्थीनि कासीसं पद्यनितिका ॥ ५१९ ॥  
 सोमराज्यसनात्पुण्यं कृष्णपिण्डतनित्रकौ ।  
 पुण्याण्यर्जुनकाशमर्योः इयामा जम्बूफलानि च ॥ ५२० ॥  
 पृथक् पञ्चपलांशानि तैः पिष्टेराढकं पचेत् ।  
 विभीतकस्य तेलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ॥ ५२१ ॥  
 कुर्यादादित्यपाकं च यावच्छुप्को भवेद्रसः ।  
 लोहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमय योजयेत् ॥ ५२२ ॥

कुषे गुजामूलायां तैलम् ।

त्रिफलागुञ्जिकामूलत्रिशूलीपुरतालकैः ।

॥ ५२३ ॥

पृथक्पलार्धकैः पिण्ठस्तैलमर्थाद्वकं कदु ॥ ५२४ ॥  
 समालोड्य पचेत्सम्यगवां मूत्रे चतुर्गुणे ।  
 विपाच्य मतिमान् वैद्यः सर्वकुष्टवणापहम् ॥ ५२५ ॥  
 तैलं कुष्टहरं चर्ष्णं फणिकीटविपापहम् ।  
 कण्ठविचर्चिकासिध्यवातासृक्षमनं परम् ॥ ५२६ ॥

मजिष्ठाय तैलम् ।

मजिष्ठा पद्मकं कुष्टं चन्दनं गैरिकं वला ।  
 हरिद्रे द्वे प्रियद्वयं नागं यष्टी सवाकुची ॥ ५२७ ॥  
 दारु प्रपौण्डरीकं च पिष्ठार्थपलिकानि तु ।  
 तैलस्यं गवां क्षीरं दत्त्वा कार्थं तथाऽसनाद् ॥ ५२८ ॥  
 भृङ्गद्रवं चतुर्प्रस्थं शर्नैर्पृद्विना पचेत् ।  
 अस्य तैलस्य पंक्तस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ५२९ ॥  
 केशशाते शिरोदुःखे मन्यास्तम्भे हनुग्रहे ।  
 दन्तकर्णाक्षिशूले च नस्येऽभ्यङ्गे च योजयेत् ॥ ५३० ॥  
 आकुडिनायान् सुखिग्यान् केशान् संजनयेद्वृन् ।  
 पलिते चेन्द्रलुपे च तैलमेतत्प्रश्यस्यते ॥ ५३१ ॥  
 मजिष्ठायमिदं नाम्ना शिरोरोगनिवारणम् ।  
 कुष्टं खिद्यायंकैलम् ।

करवीरवचातुम्बुरसाज्जनकरञ्जभृङ्गलाक्षाभिः ॥ ५३२ ॥  
 सारुक्करसिद्धार्थकमूलबीजायिगण्डीरैः ।  
 रजनीद्रियमउष्टारग्वधविड्हमाक्षीकैः ॥ ५३३ ॥  
 सैन्धवकड्कालादुपिचुमर्दास्फोटमालतीभिश्च ।  
 सर्पपत्तैलं कारञ्जं वा गवां मूत्रेण वै सिद्धम् ॥ ५३४ ॥  
 द्विगुणेन साधितमचिराद्भ्यङ्गादन्ति कुष्टानि ।  
 अष्टादशापि सिद्धं तैलं सिद्धार्थकं नाम ॥ ५३५ ॥  
 इति भीर्यवसोट्टलप्रथिते गदनिप्रदे द्वितीयसैलाधिग्रामः ।



शुलानि नाशयति वातवलासजानि

हिङ्गवायमुक्तमिदमाभिनसंहितायाम् ॥ ९ ॥

गुर्मे शार्दूलं चूर्णम् ।

हिङ्गग्राविदशुष्क्यजाजिविजयावात्याभिधानामयै-

शूर्णं कुम्भनिकुम्भमूलसहितभागोत्तरं वर्धितेः ।

पीतं कोष्णजलेन कोष्टकरुजागुलमोदरादीनर्यं

शार्दूलं प्रसर्वं प्रमथ्य हरति व्याधीन्मृगोघानिव ॥ १० ॥

गुर्मे नाराचकं चूर्णम् ।

सिन्धूत्यपथ्याकणदीप्यकानां चूर्णानि तोयैः पिवतां क्वोष्णैः ।

प्रयाति नाशं कफवातजन्मा नाराचनिर्भिन्न इवामयौयैः ॥ ११ ॥

गुर्मे पूतीकायं चूर्णम् ।

पृतीकपत्रगजचिर्भट्टचब्यवदि-

व्योपं च संस्तरचितं लवणोपधानम् ।

दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं

गुलमोदरश्वयथुपाण्डुगुदोद्दवेषु ॥ १२ ॥

गुर्मे दिग्बायं चूर्णम् ।

हिङ्गत्रिगुणं सैन्धवमस्मात्रिगुणं च तैलमैरण्डम् ।

तत्रिगुणरसोनरसं गुलमोदावर्तशूलग्नम् ॥ १३ ॥

श्वसे विजयं चूर्णम् ।

त्रिकत्रयं वचा हिङ्गः पाठा क्षारो निशाद्यम् ।

चब्यतिक्ताकलिङ्गाभिशताहालवणानि च ॥ १४ ॥

ग्रन्थिविल्वाजमोदं च गणोऽष्टाविंशको मतः ।

एतानि समभागानि शूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १५ ॥

एरण्डतैलसंयुक्तं सद्यो लिहात्ततो नरः ।

विडालपदकं चापि पिवेदुपेण वारिणा ॥ १६ ॥

श्वासं हन्यात्तथा शोपमशीसि च भग्नदरम् ।

हृच्छुलं पार्वशुलं च वस्तिशुलमरोचकम् ॥ १७ ॥

## अथातस्तृतीयचूर्णधिकारः ।

२१२-३३८४

गुल्मे हिश्वायं चूर्णम् ।

हिङ्गं त्रिकटुकं पाठां हपुपामभयां शटीम् ।  
 अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसम् ॥ १ ॥  
 दाढिमं पौष्टकरं धान्यमजार्णि चित्रकं वचाम् ।  
 द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चत्वयं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ २ ॥  
 चूर्णमेतत्पयोत्तरव्यमवपानेष्वनत्ययम् ।  
 प्राग्भक्तमयवा पेयं मधेनोष्णोदकेन वा ॥ ३ ॥  
 पार्श्वहृदस्तिथूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।  
 आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च गुदयोनिरुजासु च ॥ ४ ॥  
 ग्रहणशोऽविकारेषु पुष्टिहपाण्डामयेऽरुचौ ।  
 उरोविवन्धहिकासु श्वासे कासे गलग्रहे ॥ ५ ॥  
 भावितं मातुलुड्स्य चूर्णमेतद्सेन वा ।  
 वहुगो गुटिकाः कार्याः कार्मुकाः स्युस्ततोऽधिकाः ॥ ६ ॥

श्ले द्वितीयं हिश्वायं चूर्णम् ।

हिङ्गंगन्धिकधान्यदीप्यकवचाचव्याशिपाठाः शटी  
 दृशाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाढिमम् ।  
 पथ्यापुष्टरवेतसाम्लहपुपाजाज्यस्तदेभिः कृतं  
 चूर्णं भावितमेतद्दर्दिकरसैः स्याद्वीजपूरस्य च ॥ ७ ॥  
 आध्मानं ग्रहणीविकारगुदजान् गुल्मानुदायत्कान्  
 प्रत्याध्मानगरोदराश्मरिल्लस्तुनीद्रियारोचकान् ।  
 ऊरुस्तम्भमतिप्रमं च मनसो धारिष्यमष्टीलिकां  
 प्रत्यष्टीलिकाया सहापहरति भावपीतमुण्णाम्बुना ॥ ८ ॥  
 रुक्षिवद्वृणकटीजठरान्तरेषु  
 वस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च ।

अस्थिसन्धिगतं वायुं स्त्रायुपज्जाभितं तथा ।  
 गृध्रसीं च कटिस्तम्भं मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ॥ ३० ॥  
 ये च कोषुगता रोगास्तांश्च सर्वान् प्रणाशयेत् ।  
 आभाद्यं चूर्णमेतत्तु सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३१ ॥

अतिसारे कपित्याष्टकम् ।

यवानीपिष्ठलीमूलचातुर्जातकनागरैः ।  
 मेरिचेन्द्रयवाजाजीयान्यसौबर्चलैः समैः ॥ ३२ ॥  
 वृक्षाम्लधातकीकृष्णाविलवदाडिमदीष्यकैः ।  
 त्रिगुणैः पदसितायुक्तैः कपित्याष्टगुणैः कृतः ॥ ३३ ॥  
 चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुलमगलामयान् ।  
 कासश्वासाग्रिसादार्शः पीनसारोचकाङ्गेत् ॥ ३४ ॥

प्रहृण्यां द्वितीयं कपित्याष्टकम् ।

कपित्यत्रुटिवराङ्गविश्वौपर्धं धान्यका  
 चव्याजाजीयवान्यश्च तुल्यांशकाः ।  
 मरिचदहनदाडिमं धातकी चुक्रिका  
 विलवसौबर्चलं पिष्ठलीमूलवृक्षाम्लकम् ॥ ३५ ॥  
 अपरमपि कपित्याष्टं पहुणा  
 पिष्ठली सर्वतुल्यांशका शर्करा ।  
 ग्रहणिनाशनं वह्निसन्दीपनं  
 कासहृद्रोगगुलमार्शसां नाशनम् ॥ ३६ ॥

प्रहृण्या दाडिमाष्टकम् ।

कर्पोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं दिक्कार्पिकम् ।  
 यवानीयान्यकाजाजीग्रन्थिव्योपं पलांशकम् ॥ ३७ ॥  
 पलानि दाडिमादृष्टैः सितायाथैकतः कृतः ।  
 कपित्याष्टकवद्यायं गुणैः स्यादाडिमाष्टकः ॥ ३८ ॥

१ ‘मरिचमिजलाजाजी’ इति पा ।

भीषकासप्रमेदांश्च कामलां पाण्डुरोगिताम् ।  
 आमवातमुदावर्तमन्वयद्विं शुद्धकृमीन् ॥ १८ ॥  
 हन्याश्च ग्रहणीरोगान् ये मया परिकीर्तिताः ।  
 महाज्वरोपस्थानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ १९ ॥  
 अम्रजानां च नारीणां म्रजावर्धनमेव च ।  
 विजयो नाम चूर्णोऽयं सर्वव्याधिहरः परः ॥ २० ॥  
 वातरोगे अजमोदार्थं चूर्णम् ।

अजमोदमरिचपिष्पलिविड्द्विद्वारुचित्रकशतासाः ।  
 सैन्धवपिष्पलिमूलं भागा नवानां पलिकाः स्युः ॥ २१ ॥  
 शुण्डी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति द्विद्वारुकस्यापि ।  
 अमया पलानि पञ्च सर्वाण्येकत्र कारयेचूर्णम् ॥ २२ ॥  
 समगुडवटकानदतस्तचूर्णं कोण्णवारिणा पिवतः ।  
 नद्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुदारुणाः शीघ्रम् ॥ २३ ॥  
 विश्वाचीमतितूनीतूनीरोगाश्च गृध्रसी चोग्रा ।  
 कटिपृष्ठगुदस्फुटनं स्फुटनं चैवास्थिजहृन्योस्तीव्रम् ॥ २४ ॥  
 श्वययुः स्तम्भोऽधिसन्धि ये चान्ये चामवातसंभूताः ।  
 सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव शूर्याशुविधस्तम् ॥ २५ ॥  
 कुद्रोधमरोगित्वं स्थिरर्यौवनतां च वलीपलितनाशम् ।  
 कुरुते च तदभ्यासाद्वृनन्यानपि गुणांश्चेव ॥ २६ ॥

वातरोगे आमार्थं चूर्णम् ।

आभां रास्तां गुहूर्चीं च शतमूर्लीं महीपथम् ।  
 शतपुष्पाऽश्वगन्धे च हृपुर्पां द्विद्वारुकम् ॥ २७ ॥  
 यवानीं चाजमोदां च समभागं तु कारयेत् ।  
 सूक्ष्मचूर्णमिदं कृत्वा विडालपदकं पिवेत् ॥ २८ ॥  
 मद्यमासरसैर्यूपैस्तकेणोप्पोदकेन वा ।  
 सर्पिष्या वापि लेखं तु दधिमण्डेन वा पुनः ॥ २९ ॥

अस्थिसन्धिगतं वायुं स्त्रायुमजाश्रितं तथा ।  
 गृध्रसीं च कटिस्तम्भं मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ॥ ३० ॥  
 ये च कोष्ठगता रोगास्तांश्च सर्वान् प्रणाशयेत् ।  
 आभाद्यं चूर्णमेतत्तु सर्वब्याधिविनाशनम् ॥ ३१ ॥

अतिसारे कपित्थाष्टकम् ।

यवानीपिष्पलीमूलचातुर्जातकनामरैः ।  
 मंरिचेन्द्रयवाजाजीधान्यसौवर्चलैः सर्पैः ॥ ३२ ॥  
 वृक्षाम्लधातकीकृष्णाविल्वदाडिमदीप्यकैः ।  
 त्रिगुणैः पद्मितायुक्तैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ ३३ ॥  
 चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुलमगलामयान् ।  
 कासश्वासामिसादार्शः पीनसारोचकाङ्गयेत् ॥ ३४ ॥

प्रहृष्टा द्वितीयं कपित्थाष्टकम् ।

कपित्थञ्चुटिवराङ्गविश्वीपदं धान्यका  
 चब्याजाजीयवान्यश्च तुल्यांशकाः ।  
 मरिचदहनदाडिमं धातकी चुकिका  
 विल्वसौवर्चलं पिष्पलीमूलवृक्षाम्लकम् ॥ ३५ ॥  
 अपरमपि कपित्थाष्टकं पद्मूर्णा  
 पिष्पली सर्वतुल्यांशका शर्करा ।  
 ग्रहणिनाशनं वह्निसन्दीपनं  
 कासहृद्रोगगुलमार्शसां नाशनम् ॥ ३६ ॥

प्रहृष्टां दाडिमाष्टकम् ।

कर्मोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं द्रिकार्पिकम् ।  
 यवानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योपे पलांशकम् ॥ ३७ ॥  
 पलानि दाडिमादृष्टी सितायाशैकतः कृतः ।  
 कपित्थाष्टकवद्यायं गुणैः स्यादाडिमाष्टकः ॥ ३८ ॥

१ ‘मरिचामिजलाजाजी’ इति पा० ।

अतिथे द्वितीयं दाढिमाष्टचूर्णम् ।

दाढिमस्य पलान्यष्टं चानुजातं पलद्रयम् ।

अजाजीनां पलार्थं तु पलार्थं धान्यकस्य च ॥ ३९ ॥

पृथक्तुपालिकान् भागांस्तिकटोर्ग्रन्थिकस्य च ।

त्वक्षीरी वालकं चैव द्वात्कर्पसमान् भिपरु ॥ ४० ॥

शर्करायाः पलान्यष्टवेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।

आपातीसारकासम्बन्धया हत्पार्थशूलनुन् ॥ ४१ ॥

हृद्रोगपरुचिं गुलम् ग्रहणीमधिमार्दवम् ।

भयुक्तो नाशयत्याशु चूर्णोऽर्थं दाढिमाष्टकः ॥ ४२ ॥

गलयेषो एलायं चूर्णम् ।

एला त्वग्दलनागपुष्पमरिचं स्यात्पिष्पली नागरं

भागः स्यात्कर्मवर्धितः किल युतं सर्वंथ तुल्या सिता ।

एतचूर्णपञ्जीणगुलमजठरेऽप्यर्थः मु हृद्रोगिषु

कासश्वासिषु रक्तपित्तिषु हितं कोषामयध्वंसनम् ॥ ४३ ॥

अरोचके इदैत्यं चूर्णम् ।

हृदेला पिष्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।

मरिचं दीप्यकं चैव उक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ ४४ ॥

अजमोदाऽजगन्या च कपित्यं चार्धकापिकम् ।

अत्यन्तपरिशुद्धायाः शर्करायाथनुप्पलम् ॥ ४५ ॥

चूर्णं सेव्यमिदं पुम्भः परमं रुचिवर्धनम् ।

ष्टीहकासमयार्शसि श्वासशूलं वर्मिंज्वरम् ॥ ४६ ॥

निहन्ति दीपयत्यमिं वलवर्णकरं परम् ।

वातानुलोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वाविशोधनम् ॥ ४७ ॥

अरोचके कर्मार्थं चूर्णम् ।

कर्पूरचूचकझोलजातीफलदलाः समाः ।

लवझोपणनागाहकृष्णाशुण्ठयो विवर्धिताः ॥ ४८ ॥

चूर्णं सितासमं हृदयं रोचनं क्षयकासनित् ।

वैस्वर्यश्वासगुल्मार्गश्चर्दिकण्ठामयापहम् ॥ ४९ ॥

प्रयुक्तं चान्नपाने हि भेपञ्चेपिणां वरम् ।

अरोचके त्वगेलाद्यं चूर्णम् ।

त्वगेलाव्योपथान्याम्लनागकेसरजीरकम् ।

लब्धलीफलकङ्कोलं लब्धङ्गं जातिपत्रिका ॥ ५० ॥

भागानेपां समान् कृत्वा दध्याद्विगुणितां सिताम् ।

ईपत्कर्पूरसंयुक्तं चूर्णं रुचिकरं परम् ॥ ५१ ॥

गुणं त्रिलब्धाद्यं चूर्णम् ।

त्रिलब्धण्डपुष्पाजमोदाजगन्धावचाहिङ्गुपाठेपकुञ्चीशटीजीरकाजाजिकुस्तुम्बरीवाण्पिकाः कारबी तुम्बरुः स्वर्जिका यावश्चको जटा पौष्टकरं दाढिमं तिनितिडीकं विडङ्गानि भार्गी वरीवेषको, मिशिमरिचगजोपकुल्याऽभयाः पञ्चकोलं निकुम्भाविशाला यवानी मुराहं च तत्सर्वमेकत्र चूर्णाकृतं वीजपूरार्द्रकेनासकृद्धाचितं यः पितृःप्राप्नग्नाग्नाग्नाके— त्रिलब्धाद्यं हिताश्वनरः,

कोलाम्भ

सा मस्तुना सापपाण्डूण दुग्धेन कोलत्ययुपेण वा क्षारनिश्चोत्तोयेन वा दाढिमस्यैव वाराऽत्मवानेभिरेवीपथैः साधितं वा धृतं हृदयशुदकटीयकृत्पुहजं तस्य शूलं प्रणद्येत्तथा गुलमविएम्भदुर्नीपकृञ्जोदराध्यानहिःयासचिश्चीपदश्वासकासाः प्रपञ्चुशक्तो भवेत्पावकः प्राश्यमानानि पापाणचूर्णान्यपि ॥ ५२ ॥

अरोचके सूक्ष्मठाद्यं चूर्णम् ।

सूक्ष्मला केसरं त्वक्च पत्रं तालीसकं तुगा ।

पृथ्वीका दाढिमं धान्यं जीरकं च द्रिकार्पिकम् ॥ ५३ ॥

पिष्पलयः पिष्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।

१ अप्य दण्डश्वस्थरुद्धः । तत्र प्रथमे द्वौ नगणो, अनन्तरं द्वाविद्वर्णानां देवाः ।

मरिचं दीप्त्यकं चेव दृक्षाम्लं साम्लेवतसम् ॥ ५४ ॥

अजमोदाजगन्धे च दधित्यं चेति कापिंकम् ।  
चूर्णमयिषदं हेततपरमं रुचिवर्धनम् ॥ ५५ ॥

अरोचके लवङ्गायं चूर्णम् ।

लवङ्गकङ्गोलमुशीरचन्दनं  
नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् ।

एला सकृष्णाऽगुरुभृङ्गकेसरं

कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुना ॥ ५६ ॥

कर्पूरजातीफलवंशरोचनाः

सितार्थभागं सकलं तु चूर्णितम् ।

सुरोचनं तर्पणमयिदीपनं

बलमदं वृत्प्यतमं त्रिदोपजित् ॥ ५७ ॥

उरोचिवन्धं तमकं गलग्रहं

सकासहिध्मारुचियक्षमपीनसम् ।

ग्रहण्यतीसारमथासूजः क्षयं

प्रमेहगुलमांशं निहन्ति सत्वरम् ॥ ५८ ॥

अरच्छा द्वितीयं लवङ्गायं चूर्णम् ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागं सम कर्पमितं प्रकुर्यात् ।

पलार्धमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महीपथस्य ॥ ५९ ॥

सितासमं चूर्णमिदं प्रयुक्तं मसद्य रोगान् प्रबलान्त्रिहन्यात् ।

कासक्षयारोचकमेहगुलममर्शीसि चोग्रान्य्रहणीपदोपान् ॥ ६० ॥

हृत्कण्ठनासावदनप्रवोधं करोति सन्दीपयते च वह्निम् ।

दृनीयं लवङ्गायं चूर्णम् ।

लवङ्गकङ्गोलकणावराङ्गतालीसचब्युत्तिग्रन्थिकान्त्यः ।

ऐलेयगृह्णी लवली तुरङ्गी सकेसरा सोपणपत्रिका च ॥ ६१ ॥

द्विदादिमं तिन्तिदिकोलमम्लं रोधत्वचा तूणभेवं च तैलम् ।  
कर्पीशमानानि पलं च शुण्ठ्याः शैशी कलांशः समशक्तरोऽयम् ॥६२  
लवहङ्कार्यो खचिपक्षिदाता सुगन्धिहृदयः क्षयरोगहन्ता ।  
बलायिसंवर्धनं एष चूर्णो वरः प्रयोज्यो नृपतेहिताय ॥ ६३ ॥  
रक्षिते चन्दनत्वं चूर्णम् ।

चन्दनं नलदं रोधमुशीरं पद्मकेसरम् ।  
नागपुष्पं तथा विलवं भद्रमुस्तं सशक्तरम् ॥ ६४ ॥  
शैवेरं चैव पाढा च कुटजस्य फलं त्वचम् ।  
शूद्रवेरं विषा चैव धातकी च रसाञ्जनम् ॥ ६५ ॥  
आम्रास्थि जम्बुसारं च तथा मोचरसः स्मृतः ।  
नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दादिमत्वचः ॥ ६६ ॥  
चतुर्विंशतिमेतानि समभागानि कारयेत् ।  
तन्दुलोदकसंयुक्तं क्षौद्रेण सह योजयेत् ॥ ६७ ॥  
चलतां चामगर्भाणां स्तम्भनं परमुच्यते ।  
अभिभ्यां विहितं पूर्वं रक्तपित्तविनाशनम् ॥ ६८ ॥  
हितं लोहितपित्तभ्यो धर्शस्मु लोहितेषु च ।  
तमोमूर्च्छेऽपश्चानां तृपार्वानां च दापयेत् ॥ ६९ ॥  
प्रतिद्यथे व्यापादिचूर्णम् ।

व्योपचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लयेतस्मैः ।  
जीरचव्यैश तुल्यांशैः पादैस्त्वक्षत्रुटिपत्रैः ॥ ७० ॥  
व्योपादिकमिदं नाम पुराणगुडसंयुतम् ।  
पीनसधासकासग्रं खचिस्वरकरं पायम् ॥ ७१ ॥

१ ‘क्षुद्रपूर्णसंयुतं तोय तुगोऽर्द्धं विदुः । महामिकरणं तथा दग्धदाढर्यवपम् ॥’ अति हस्तलिखितपुस्तके टिप्पण्मुक्तम्भयते । ‘चूर्णमयं च धस्तकम् दाति पाठ ।

२ पश्चो अर्थः ।

शोये खादवं चूर्णम् ।

पिष्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ।  
 सिता पलचतुष्कं च नागरार्धपलं तथा ॥ ७२ ॥  
 धान्यसौवचेलाजाजीत्वगेलाश्वार्धकार्पिकाः ।  
 कोलदाडिमट्टाम्लयवान्यथाम्लवेतसः ॥ ७३ ॥  
 कार्पिकांशूर्णयेत्सर्वान् हृदं त्वन्नपरोचकम् ।  
 शुहृद्दृहणीदोपपञ्चकासनिवहर्णम् ॥ ७४ ॥  
 खादवं नाम गुलमार्तिविवन्धानाहशूलनुद ।

शोये महापादवं चूर्णम् ।

तालीसोपणचव्यनागलवणैः सर्वैः समाशीस्ततो  
 द्विष्ट्रैर्ग्रन्थिकतिन्तडीकहुतभुवत्वग्नीरकृष्णायुर्तः ।  
 विष्टैलावदराम्लवेतसवैर्धान्याजमोदायुर्त-  
 रुद्यंशैर्दाडिमवीजपादसहितैः श्रेष्ठैः सितार्धशकः ॥ ७५ ॥  
 कण्ठास्योदरहृद्रिकारशमनः कायाम्रिसन्दीपनो  
 गुलमाध्मानविसूचिकागुदरुजाश्वासकृमिच्छदिंहा ।  
 कासारुच्यतिसारमूढमरुतां हृद्रोगिणां कीर्तित-  
 शूर्णोऽयं भिपजामतीव दयितः ख्यातो महापादवः ॥ ७६ ॥

अरोचके दाडिमाद्यं चूर्णम् ।

द्वे पले दाडिमादप्ती खण्डाद्योपात्पलत्रयम् ।  
 त्रिमुगन्धिपलं चैकं चूर्णमेतत्त्वं कारयेत् ॥ ७७ ॥  
 रोचनं दीपनं स्वर्यं पीनसश्वासकासगित् ।

कासे लघुनालासाद्यं चूर्णम् ।

मरिचं चैव तालीसं नागरं पिष्पली शुभा ॥ ७८ ॥  
 यथोत्तरं भागदृदध्या त्वगेले चार्धभागिके ।  
 पिष्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ॥ ७९ ॥  
 श्वासकासारुच्छीर्णित चूर्ण दीपनं परम् ।

हृत्पाण्डुग्रहणीदोपमूर्तीहशोफज्वरापदम् ॥ ८० ॥  
 छर्धतीसारशूलग्रं मृद्वातानुलोमनम् ।  
 कल्पयेहृषिकां च च चूर्णं पक्षत्वा सितोपलाम् ॥ ८१ ॥  
 गुटिका ह्यग्रिसंयोगाच्चूर्णालिघुतरा भता ।  
 गुरुम् शार्दूलं चूर्णम् ।

भागदृद्ध्योत्तरं हिद्गुवचाविडमहीपधम् ॥ ८२ ॥  
 यवानामभयां चैव चूर्णं पस्त्वादिभिः पिवेत् ।  
 विवन्धानाहशूलाशोवर्धम्यथासोदरापदम् ॥ ८३ ॥  
 ग्रहणीरोगशूलग्रं शार्दूलं नाम दीपनम् ।  
 उदरे नारायणं चूर्णम् ।

यवानी त्रिफला धान्यं हृपुपा सोपकुञ्चिका ॥ ८४ ॥  
 पृथ्वीका पिष्पभीमूलपजगन्धा शटी वचा ।  
 शताहां जीरकं व्योपं स्वर्णक्षीरी सचित्रका ॥ ८५ ॥  
 द्वौ क्षारौ पीकरे मूलं कुपुं लवणपञ्चकम् ।  
 विडङ्गं च समांशानि दन्तीभागत्रयं तथा ॥ ८६ ॥  
 द्विगुणे तु त्रिवृद्धिवे सातला च चतुर्गुणा ।  
 एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः ॥ ८७ ॥  
 एतं प्राप्य निवर्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ।  
 तक्रेणोदरिभिः पेयो गुलिमभिर्दराम्बुना ॥ ८८ ॥  
 सुरया वद्वाते च वातरोगे प्रसन्नया ।  
 दधिमण्डेन विद्सङ्गे दाढिमाम्बुभिरश्चासि ॥ ८९ ॥  
 परिकर्तेषु दक्षाम्लैरुष्णाम्भोभिरजीर्णके ।  
 भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥ ९० ॥  
 दंष्टाविषे विषे मौले सगरे कृत्रिमे विषे ।  
 यथादिलिङ्गकोष्ठेन पेयमेतदिरेचंनम् ॥ ९१ ॥  
 उदरं हृपुपाद चूर्णम् ।

हृपुपो काशनक्षीरीं त्रिफलों कडुरोहिणीम् ।  
 नीलिनीं त्रायमाणां च सप्तलों त्रिवृतां वचाम् ॥ ९२ ॥

कान्चलवणसिन्धूत्ये पिष्पलीं चेति चूर्णयेत् ।  
 दाढिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकः ॥ ९३ ॥  
 पेयोऽप्य सर्वगुलमेषु ल्लीक्षि सर्वोदरेषु च ।  
 शिंचुष्टेष्वजीर्णेषु सदने विषमाग्रिषु ॥ ९४ ॥  
 शोफार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीभक्ते ।  
 वातपिचकफोद्भूतान् विकारान् सञ्जिवारयेत् ॥ ९५ ॥

उदरे नारायणं चूर्णम् ।

विट्ठ्लाजानिकाचव्यत्रिफलाधान्यकं वचा ।  
 पट्टनि पथं च शारी ग्रन्थिकं पुष्टरं शटी ॥ ९६ ॥  
 यवानी कुक्षिका कुष्टं विशाला धान्यकं वचा ।  
 शतपुष्पाऽजगन्धा च हेमक्षीरी सर्वलिका ॥ ९७ ॥  
 हपुपा त्रिष्टुता दन्ती सातला द्विगुणोत्तरम् ।  
 चूर्ण नाराचकं पीतं मधमस्त्वम्लकाङ्गिकः ॥ ९८ ॥  
 गुल्माशारोग्यदणीरोगान् शासं फासोदरे जयेत् ।

उदरे मुवर्णसमकं चूर्णम् ।

मरिचं पश्चकोलं च द्वौ शारी त्रिफला वचा ॥ ९९ ॥  
 यवानी कुक्षिका हिङ्गु तिनिटीकाम्लवेतसौ ।  
 ब्रायन्ती दाढिमं धान्यमंजगन्धा यवाग्रजम् ॥ १०० ॥  
 कडुका कौटनं वीजं सैन्धवं च समं पृथक् ।  
 द्विगुणा त्रिष्टुता दन्ती कम्पिल्लो नीलिकाऽभया ॥ १०१ ॥  
 स्वर्णक्षीरी समला च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।  
 उद्धमूत्रे तथा गव्ये समाहं परिभावयेत् ॥ १०२ ॥  
 द्विगुणां शर्करा चात्र दापयेत्ततिपिवेत्यहम् ।  
 गोमूत्रत्रिफलाक्षाररसैर्मध्यैः सुखाम्बुना ॥ १०३ ॥  
 मुवर्णसमकं चूर्ण सर्वरोगार्तिभेषजम् ।  
 ल्लीहानमुदरं हान्ति गुल्मं हृद्रोगमेव च ॥ १०४ ॥

१. भिष्मकोष्ठेषु 'इति पा० । २. 'अजामूत्रे' इति पा० ।

वातापुरीलामथानाहं श्वयथुं सर्वगात्रजम् ।

हलीमकं कामलां च पाण्डुं मेहं ज्वरं तथा ॥ १०५ ॥  
कुषे पद्मोलायं चूर्णम् ।

मूलं पटोलस्य तथा रजन्यौ फलधिकं चेति समानि पद्च ।  
स्पान्नोलिनी द्रिस्तिगुणा विशाला कम्पिष्ठुकशापि चतुर्भिरंशैः ॥  
त्रिवृत्तया पञ्चगुणेति योगं चूर्णांकृतं सुष्टिमितं पिवेद्धि ।  
कुषेषु मूत्रेण तु रोहिणीन श्वित्रे गरे वाथ हलीमके च ॥ १०७ ॥  
जातोदकान्यप्युदराणि हन्यात्पाण्डवामयार्शः श्वयथुपमेहान् ।  
एनं प्रयोगं च पिवन् हि कुषी सोदेद्रसैर्धन्वमृगाद्रिजानाम् ॥ १०८  
कुषे द्राक्षायं चूर्णम् ।

द्राक्षा निशा च माङ्गेष्टा त्रिफला देवदारु च ।

नागरं पञ्चमूले द्वे मुस्ता मधुरसा तथा ॥ १०९ ॥

सत्पणों द्विपामागः पित्रुयन्दाटरूपकी ।

यिद्वर्ज्ज चित्रको दन्ती पिप्पल्यो मारिचानि च ॥ ११० ॥

एतेषां समभागानां कुषी चूर्णं पलं पिवेत् ।

मासं गोमूत्रसंयुक्तं तथा कुषात्प्रमुच्यते ॥ १११ ॥

आमवाते अलम्बुपायं चूर्णम् ।

अलम्बुपाऽमृता शुण्ठी चित्रकस्त्रिफला कणा ।

याचन्त्येतानि चूर्णानि दृढ़दारु च तत्समम् ॥ ११२ ॥

मूक्षमचूर्णांकृतान् सर्वान् स्वेच्छाहारविहारिणः ।

पिवतो मादिरातक्कान्निकोणोदकैर्जेयेत् ॥ ११३ ॥

प्लीहानमामवातं च यकृत्पाण्डुविशुचिकाः ।

उक्तं काङ्क्षायनेनेदं चूर्णमग्निकरं परम् ॥ ११४ ॥

आमवाते द्विलोक्यमष्टम्बुशायं चूर्णम् ।

अलम्बुपा घदेष्टा च त्रिफला नागरामृते

यथोत्तरं भागद्वद्वाः उयामाचूर्णं च तत्समम् ॥ ११५ ॥

पिवन्मस्तुसुरातक्रपयोगांसरसादिभिः ।

\* 'शब्दवशयकाना' इति पा० । २ 'प्रिहण्ट' इति पा० ।

आपवातं निहन्त्येतत्सशोपं वातशोणितम् ।

अलम्बुपादिकं चूर्णं वहुरोगविनाशनम् ॥ ११६ ॥

शास्त्रसे विद्वान् यं चूर्णम् ।

विद्वश्चित्रको मुस्ता ग्रन्थिकं देवदारु च ।

वराङ्गचयिकाजाजीविभीतकफलानि च ॥ ११७ ॥

शुण्ठी खदिरसारश्च मेपशृङ्गी सपिष्पली ।

भार्गी शृङ्गी तथा छत्रा कर्चूरो मरिचानि च ॥ ११८ ॥

एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।

उष्णेन वारिणा पीतं दन्ति श्लेष्मगलानयान् ॥ ११९ ॥

हृद्रोगांश्चैव कासांश्च कण्ठरोगांश्च दारुणान् ।

अन्ये च कफजा रोगा विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ १२० ॥

मन्दासौ वद्वानलं चूर्णम् ।

सैन्धवसमूलपगधाचव्यानलनागरं हर्तातक्यः ।

क्रमहृदमधिष्टद्धि करोति वद्वानलं चूर्णम् ॥ १२१ ॥

मन्दासौ द्वितीयं वद्वानलं चूर्णम् ।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जवेलामिभिः सितातुर्ल्यः ।

वद्वानलं जरयति वहुरुर्वपि भोजनं चूर्णम् ॥ १२२ ॥

प्रहृष्टाममिमुखं चूर्णम् ।

त्रिकदुत्रिफलाभागाः पञ्चपदं च पृथक् चव्यचित्रकयोः ।

विद्वसैन्धवसौवर्चलमेकद्वितीयि कपाणि ॥ १२३ ॥

इति चूर्णं ग्रहणीगदगुदजोदरशुल्मशूल्मध्मम् ।

जनयति च जातवेदसमल्पभुजमितदग्निमुखम् ॥ १२४ ॥

शुल्मे द्वितीयममिमुखं चूर्णम् ।

चित्रकहपुषाग्रन्थिकसैन्धवसौवर्चलाजमोदाभिः ।

विद्धान्यशटीपुष्करकर्चूराजाजितिनितीकैश्च ॥ १२५ ॥

चव्ययवानीदादिमपृथ्वीकैलाम्लवेतसैश्च समैः ।

अग्निमुखोऽयं चूर्णः काञ्जिकमसूणवारिसीधूनाम् ॥ १२६ ॥

पीतोऽन्यतमेन वृभिरुलमारुचिवहिसादशुलानि ।  
दुर्नामधुरोदरकफवातगदान्विनाशयति ॥१२७॥  
गुर्वं सूददशिमुर्वं चूर्म् ।

द्वौ क्षारी चित्रकः पाठा विडङ्गं लवणानि च ।  
सूक्ष्मैला तगरं भार्गी कारवी दिङ्गु पीप्करम् ॥१२८॥  
शटी द्रवी त्रिवृन्मुस्ता वचा चेन्द्रयवास्तथा ।  
पात्रीजीरकवृक्षाम्लश्रेयस्यः सोपकुञ्चिकाः ॥ १२९ ॥  
अम्लवेतसमम्लीका दाढिमं सकदुत्रयम् ।  
भद्रातकाजमोदे च यवानी मुरदारु च ॥ १३० ॥  
अधयाऽतिविपा चब्या हपुपाऽरम्बधस्तथा ।  
तिलमुक्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ॥ १३१ ॥  
क्षारा अपूनि तुल्यानि सूक्ष्मनूणानि कारयेत् ।  
लोहकिंदं च सप्ताहं तस्मै गोप्यत्रसेचितपू ॥ १३२ ॥  
विद्वान्सुभावितं कृत्वा योगेऽस्मिन्नक्षिपेत्ततः ।  
मातुलुहरसेनैव भावयेत् दिनत्रयम् ॥ १३३ ॥  
दिनत्रयं तु शुक्लेन तथाऽर्द्धकरसेन च ।  
सुभावितं ततः कृत्वा भक्तमध्ये प्रयोजयेत् ॥१३४  
एषोऽग्निकल्पचूर्णस्तु नाशयत्यचिराद्रदान् ।  
अजीर्णकं तथाऽनाहं पञ्च गुलमान् सुदुस्तरान् ॥१  
ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च भासकासांश्च दासणान् ।  
प्रतिश्यायं क्षयं शोषं विद्विधि कफवातजाम् ।  
उदराण्ड्यवृद्धिं च शृष्टीर्लोकातशोणितपू ।  
कुष्ठानि च विशीर्णानि सक्रियातं सुदुर्जयम् ।  
अर्शांसि वातरक्तं च कुण्डप्रस्य शुद्धिताम् ॥१  
अपस्थारं तथोन्मादं विश्रमं च मदात्ययम् ॥१  
प्रशुदत्युल्यणानेतान्नपृष्ठि च दीपयेत् ।  
समस्तव्यज्ञनोपेतं भक्तं कृत्वा तु भोजने ॥१३५

प्रदद्यादस्य चूर्णस्य विडालपदकं भिषक् ।

ततस्तद्वतां याति कोणत्वं च प्रपद्यते ॥१३८॥

एष चान्तिमुखश्रूणश्रूणराजो निगद्यते ।

ब्रह्मणा निर्मितश्रैप शश्विभ्यां परिकीर्तिः ॥१३९॥

अमिमान्य वैश्वानरं चूर्णम् ।

लवणयवानीदीप्य कपिष्पलीनागरमुत्तरोत्तरं दृढम् ।

सर्वसमांशा पथ्या चूर्णो वैश्वानरः साक्षात् ॥१४०॥

इल्ल द्विनाथ वैश्वानरं चूर्णम् ।

सैन्धवलवणात्कर्पौ द्वौ च यवान्यास्त्वयोऽजमोदायाः

पिष्पल्याश्वापि पलं पञ्चकर्पाणि शुण्डयाश्च ॥ १४१

द्वादश हरीतकीनां चूर्णमिदं कारयेच्छृणम् ।

मध्योप्तोदकयूपैः पिवेद्दि तक्रेण सर्पिष्पा वापि ॥ १४२

गुलमे तथा रुजायां पाञ्चोदरवस्तियोनिशूलेषु ।

वातानुलोभनकरं चूर्ण वैश्वानरं नाम ॥१४३॥

गुणे तुनीय वश्वानरं चूर्णम् ।

माणिमन्यस्य भागी द्वौ यवान्यास्तद्वदेव च ।

भागास्त्वयोऽजमोदाया नागराज्ञागपञ्चकम् ॥१४४॥

दश चैव हरीतक्याः सूक्ष्मचूर्णीकृताः शुभाः ।

मस्त्वारनालमध्येश सर्पिष्पोप्तोदकेन वा ॥१४५॥

आमवातं जयेत्पीतं गुलमं हृष्टस्तिजं गदम् ।

वातानुलोभनं श्रेष्ठं चूर्ण वैश्वानरं सृष्टम् ॥१४६॥

अमिरीहर्य ज्वालामुखं चूर्णम् ।

दिहूम्लवेतसकदुत्रिकचित्रकेभ्यः

सक्षारपांकरफलत्रिकदादिमेभ्यः ।

कर्णन्पृथग्गुडपलान्यवचूर्णं भुक्तो

ज्वालामुखोऽयमनलस्य करोति दीक्षिम् ॥१४७॥

उदावाने नाराचक चूर्णम् ।

दिहू कुष्ठं वचा चैव स्वर्जिका विडमेव च ।

१ प्रयेकं कर्षिमेनाना इहवादीनो यावन्तः कपास्तापन्ति गुडपलामीहर्य

एको द्वावथ चत्वारस्तथाऽष्टौ पोडशैव च ॥१४८॥  
 यथाक्रमकृतान् भागांशुर्णमानाहभेदनम् ।  
 नाराचविवृतो हेष योगो नाराचको मतः ॥१४९॥  
 उदावतेषु शूलेषु गुलमेष्वथ भगन्दरे ।  
 हृद्रोगस्य प्रमहस्य योगोऽयं शमनः परः ॥१५०॥

चारस्वतं चूर्णम् ।

कुष्ठाखगन्धसैन्धवपिष्पलिमरिचं द्रिजीरकं थुण्ठी ।  
 पाठाऽजमोदसहिता समभागा चूर्णिता च वचा १५१  
 प्रातर्मधुसर्पिभ्यां विडालपदमात्रेमतद्वलिह ।  
 सप्ताहं पथ्याशी किन्नरमधुरस्वरो भवति मर्त्यः ॥१५२॥  
 द्रिगुणीकृते च तस्मिन्मेधावी भवति भिष्टाक्यश्च ।  
 त्रिगुणीकृते च तस्मिन्त्वाकसहस्रं पठत्याशु ॥१५३॥  
 दुर्मेधसः किलायं भिक्षोराचार्यलोकसेनेन ।  
 अप्रार्थितेन दत्तो योगवरो नन्दविहारे ॥१५४॥

बृहस्पतरस्वतं चूर्णम् ।

कुष्ठाखगन्धे लवणाजमोदे हे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा ।  
 माङ्गल्यपुष्पी च समानि चूर्णं कृत्वा तु चूर्णेन वचोद्रवेन १५५  
 तुल्येन मुक्तं वहुशो रसेन तद्वावितं ब्रह्मविनिर्मितायाः ।  
 सर्पिमधुभ्यां च ततोऽसमात्रं लिहान्नरः सप्तदिनं हिताशी १५६  
 सौस्वर्यमिच्छन्मनसश्च धैर्यं मेधां तथेच्छन्दिगुणं च कालम् ।  
 एठान्नरः श्लोकसहस्रात् तदत्मयुक्तं त्रिगुणं च कालम् ॥१५७॥

सारस्वतमिदं चूर्ण ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ।

जगद्विताप लोकानां दुर्मेधसां विचेतसाम् ॥१५८॥

अशोरोगे यथानिवायं चूर्णम् ।

यवान्यतिविपा कुष्ठं वचा हिहूँ हरीनकी ।  
 कर्त्रूणं रोहिणं मुस्तं रास्ता विवृथद्वारा च ॥१५९॥

मातुलुइस्य मूलानि पालाशं मूलमेव च ॥१६०॥

त्रिफलाशटिमूस्मलाः पाँधरं त्वग्यरीतकी ।

अजाजी चेति तशूर्णं पिष्ठेदुष्णोदकासर्वः ॥१६१॥

एतदर्गोविवन्धानां प्रयोगादमृतोपमम् ।

भाष्यादेष विभीताद्य चूर्णम् ।

विभीतकं विपा चेत्र भद्रमुस्ता च पिष्पली ।

भार्गी च शृङ्गेयरं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥१६२॥

तानि चूर्णानि पथेन पीतान्युष्णोदकेन वा ।

नाशयन्ति नृणां क्षिपं भासकासापनश्चकान् ॥१६३॥

दिक्षाहरे रेणुदायं चूर्णम् ।

द्वेषुश्चोरकं मुस्तं सूक्ष्मेलाशटिनागरम् ।

त्वगेला पुष्करं शृङ्गी हीवेरागरुकेसरम् ॥१६४॥

यवान्यामलकी भार्गी पिष्पली सुरसा तथा ।

सिताचतुर्गुणं चूर्णं तत्पीतं लीढमेव वा ॥१६५॥

अन्नपानप्रयुक्तं वा भक्षितं वापि केवलम् ।

कासदिक्षाज्वरश्चासपार्खशूलं च नाशयेत् ॥१६६॥

दिक्षाखे मुरस द्यं चूर्णम् ।

सुरसा चोरकं शृङ्गी सूक्ष्मेला पुष्करं शटी ।

पिष्पलीत्वग्निविडक्षारशुष्टीहिङ्गम्लवेतसम् ॥१६७॥

भार्गी तामलकी जीवा वृक्षामलथेति चूर्णितम् ।

दिक्षाच्चासविवन्धार्शःकासहृत्पार्खशूलनुद् ॥१६८॥

समाभासे दात्याद्यं चूर्णम् ।

शटीचोरकजीवन्तीत्वहसुस्तापुष्कराद्यम् ।

सुरसातामलवयेलापिष्पलयगरुनागरम् ॥१६९॥

वालकं च समं चूर्णं कृत्वाऽप्यगुणशक्तरम् ।

सर्वथा तमके भासे दिक्षायां च प्रयोजयेत् ॥१७०॥

दम्तरोगं तिक्तकं चूर्णम् ।

मुस्तं त्रिकदुकं पाठां त्वग्वीजं वत्सकस्य च ।

पटोलकदुके निम्बं हरिद्रां घनव्यासकम् ॥१७१॥  
जातीप्रवालभूनिम्बौ पधुकं सरसाङ्गनम् ।  
त्रायमाणां गुह्यचीं च त्रिफलां चेति चूर्णयेत् ॥१७२॥  
चूर्णोऽयं तिक्तको नाम कवलः प्रतिसारणः ।  
दन्तमूलास्यकण्ठस्थाव्रोगानाथु अपोहति ॥१७३॥

दन्तरोगे पीतकं चूर्णम् ।

दार्ढीपटोलयष्ट्याहप्रियङ्गतिविपा घनम् ।  
त्रायन्ती नामपुण्यं च भूनिम्बस्तिक्तरोहिणी ॥१७४॥  
दाढिमत्वग्निभीतं च हरितालं मनःशिला ।  
समांशानि त्रिभागांशं सश्वलेयं रसाङ्गनम् ॥१७५॥  
पीतकं चूर्णमेतद्वि मध्वकं प्रतिसारणम् ।  
दन्तमूलगलास्योष्टजिहातालुविकारिणाम् ॥१७६॥

गुबरोगे कालकं चूर्णम् ।

गृहधूमं यवक्षारं पाठो व्योपं रसाङ्गनम् ।  
तेजोद्वां त्रिफलां रोध्रं चित्रकं चेति चूर्णयेत् ॥१७७॥  
सक्षीदं धारयेदेतद्वलरोगचिनाशनम् ।  
कालकं नाम चूर्णं तु दन्तास्यगलरोगञ्जुत् ॥१७८॥

मुखरोगे द्वितीयं पीतकं चूर्णम् ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्यव्रम् ।  
दार्ढी त्वकेति तच्चूर्णं माक्षिकेण सपायुतम् ॥१७९॥  
मूळितं धृतपण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।  
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम चूर्णकम् ॥१८०॥

काले त्रिवस्त्रायं चूर्णम् ।

जीवन्ती पधुकं पाठ त्वक्तीरी त्रिफला शूद्री ।  
मुस्तैलापयकं द्राक्षा द्वे चूहत्यौ विनुभकम् ॥१८१॥  
सारिवा पांश्चरं मूलं कवलारुया रसाङ्गनम् ।  
पर्वन्वा लोहाजग्नाम् ॥१८२॥

भागों तामलकी वृद्धिर्विडङ्गं धन्वयासकम् ।  
क्षारचित्रकचव्याम्लवेतसव्योपदारु च ॥१८३॥  
चूर्णिकृत्य समांशानि लेहयेन्यथुसर्पिषा ।  
चूर्णं पाणितलं कृत्वा पञ्चकासान्वयपोहति ॥१८४॥  
आतिसारे भूनिम्बायं चूर्णम् ।

भूनिम्बकटुकाव्योपमुस्तकेन्द्रयवान् समान् ।  
द्वौ चित्रकात्कलिङ्गत्वभागान् पोदश चूर्णयेत् ॥१८५॥  
चूर्णं मस्त्रम्बुना पीतं ग्रहणीदोपगुलमजित् ।  
कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारजित् ॥१८६॥  
प्रधन्दो पाठायं चूर्णम् ।

पाठाशतितिपामुस्तव्योपभूनिम्बवत्सकाः ।  
तिक्ताचित्रकटुस्पर्शास्तुलयेस्तैः कुटजः समः ॥१८७॥  
गुडशीताम्बुना पीतो ग्रहणीहारमिकारकः ।  
प्रहर्ष्या नागरायं चूर्णम् ।

नागरातिविपामुस्तं भूनिम्बं सरसाञ्जनम् ।  
वत्सकल्पकफले विलवं पाठां कटुकरोहिणीम् ॥१८८॥  
पिवेत्समांशकं चूर्णं सक्षाद्रं तण्डुलाम्बुना ।  
पैतिके ग्रहणीदोषे रक्तं यथोपवेश्यते ॥१८९॥  
‘ राजयमणि सितोपलायं चूर्णम् ।

सितोपलां तवक्षीरीं पिष्पलीं वहुलां त्वचम् ॥१९०॥  
अन्त्यादूर्ध्वं द्रिगुणितं लेहयेत्क्षीद्रसर्पिषा ।  
चूर्णकं पाशयेत्तच्छ्रासकासकफादुरम् ॥ १९१ ॥  
सुसजिह्वारोचकिनं मन्दाग्नि पार्वशुलिनम् ।  
इस्तपादांशदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वंगे ॥ १९२ ॥  
योनिदोषे मुधादुगं चूर्णम् ।

पाठा जम्ब्वाम्ब्रयोर्मज्जा शिलोद्देशो रसाञ्जनम् ।  
अम्बष्टा मोचनिर्यासः समझा पद्मकेशरम् ॥१९३॥

वाहिकातिविषे विल्वं रोधो मुस्तं सर्गैरिकम् ।  
 कद्रूफलं मरिचं शुण्ठी मृद्धिका रक्तचन्दनम् ॥ १९४ ॥  
 कद्रुहृत्सकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम् ।  
 पुष्पेणोदृत्य तुल्यानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १९५ ॥  
 तानि क्षीद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना ।  
 अर्शःसु चातिसारेषु रक्तं यशोपवेशयते ॥ १९६ ॥  
 दोपा दन्तकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ।  
 योनिदोपं रजोदोपं जलं श्वेतं सपाण्डुरम् ॥ १९७ ॥  
 स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च प्रसाद विनिर्वत्येत् ।  
 चूर्णं पुष्पानुगं नाम हितमाश्रेयपूजितम् ॥ १९८ ॥  
 पाण्डुरोगे योगराजं चूर्णम् ।

श्रिफलायाख्यो भागास्त्रयत्तिकदुकस्य च ।  
 भागश्चित्रकमूलस्य विड्ङ्नानां तथैव च ॥ १९९ ॥  
 मुस्ताकम्पिङ्ग्लयोर्भागो देयशापि पृथक् पृथक् ।  
 पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च ॥ २०० ॥  
 माक्षिकस्य तु शुद्धस्य लोहस्य रजसस्तथा ।  
 अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं मूहमचूर्णितम् ॥ २०१ ॥  
 माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ।  
 उदुम्बरसमां मात्रां ततः सादेव्यामि ना ॥ २०२ ॥  
 दिने दिने प्रयोक्तव्यं जीर्णे भोज्यं यथेष्पितम् ।  
 वर्जयित्वा कुलत्यांश्च काकगार्चीं कपोतकान् ॥ २०३ ॥  
 योगराजोऽयमाख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।  
 रसायनमिदं शेषं सर्वरोगहरं शिवम् ॥ २०४ ॥  
 पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ।  
 कुमान्यजरकं मेहान् श्वासं हिक्कामरोचकम् ।  
 विशेषादन्त्यप्समारं फामलां गुदजानि च ॥ २०५ ॥

कुषे त्रिफलाद्यं चूर्णम् ।

त्रिफलातिविपाकदुकानिम्बकलिङ्गवचापटोलानाम् ।  
मागधिकारजनीद्रयपद्मकभार्गीमूर्वाविशालानाम् ॥ २०६ ॥  
भूनिम्बपलाशानां दधाद्विषपलं त्रिष्टुपिगुणा ।  
तेऽथ समाना व्रास्थी तच्चूर्णं सुसिनुत् परमम् ॥ २०७ ॥  
मःदास्त्रो व्योप द्यं चूर्णम् ।

सब्योपं किमिजित्सपञ्चलघ्नं साजाजिकं साभयं  
सक्षारं सहुताशनं सचविकं सग्रन्थिकं सत्रिष्टत् ।  
एतच्चूर्णमुद्धिता प्रपित्रतामुण्णेन वा वारिणा  
वहिष्टद्विषपैति सर्वगदजिद्वाजिष्णुतामावदेत् ॥ २०८ ॥  
पाण्डुरोगे खण्डसमक चूर्णम् ।

त्रिफलाव्योपविलवान्दपिष्पलीमूलचित्रकैः  
त्वगेलापत्रचविकातिनिष्ठीकाम्लवेतसैः ॥ २०९ ॥  
समांशीर्धातुमाक्षीकं सर्वस्तुल्यं प्रदापयेत् ।  
लोहचूर्णं सपं तेऽथ सर्वैः खण्डं समांशकम् ॥ २१० ॥  
चूर्णितं मधुना लेहं वटकान् वा समाक्षिकान् ।  
भक्षयित्वा यथासात्म्यमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २११ ॥  
नाशयेत्कुष्ठमालस्यं प्रमेहोदरकामलाः ।  
पाण्डुरोगं तथा कासं हलीमकागिरे रुजम् ॥ २१२ ॥  
प्रसेकमरुचिं मूर्च्छी हृष्टासं मन्दवहिताम् ।  
रक्तपित्तं परीसर्पं श्वसुं च नियच्छति ॥ २१३ ॥  
शोफ शाठाद्यं चूर्णम् ।

पाठा सकृष्णा गजपिष्पली च निदग्धिका नागरचित्रकौ च ।  
सपिष्पलीमूलमजाजिरात्रिमुस्तं च चूर्णं मुखयोयपीतम् ।  
हन्यात्रिदोपं चिरजं च शोफं कुष्टं च चूर्णस्य हि सुप्रयोगात् ॥ २१४  
कुषे चक्रिकाद्यं चूर्णम् ।

वाकुची त्रिफला वहिर्भृष्टातश्च शतावरी ।  
सिन्दुवारोऽश्वान्धा च निन्वः पश्चाद्वसंयुतः ॥ २१५ ॥

मासेकं भवितं हन्ति चूर्णमेषां समांशकम् ।  
सर्वकुषुपानि वाताथ रोगिणां नात्र संशयः ॥ २१६ ॥

कुष्ठं पृथुनिम्बस्य कं चूर्णम् ।

काले लक्खदसारवीजकुषुपर्निम्बस्य तुल्यांशवैः  
कृत्वा चूर्णमदः कदुक्रिकनिशाधात्यक्षपद्यायुर्तः ।  
पञ्चारिष्टमिदं पयोमधुवृत्तरुपणाम्बुना वा पुमान्  
पीत्वा कासगरप्रयेहपिटिकाकुष्टादिभिर्मुच्यते ॥ २१७ ॥

कुष्ठं वृहत्यनिम्बस्य कं चूर्णम् ।

रसायनं पवक्ष्यामि ब्रह्मणाऽभिततेजसा ।

प्रोक्तं यश्यवन् ॥ दिर्भरुपयुक्तं महर्षिभिः ॥ २१८ ॥

पुष्पकाले तु निम्बस्य कुमुमानि समाहरेत् ।

फलकाले फलं चैव मूलं पञ्चं त्वचं तथा ॥ २१९ ॥

चित्रकोऽथ विड्नानि व्याधिप्रातकशक्रजी ।

भद्रातको हरीतक्यः शुण्डी चापलकैः सह ॥ २२० ॥

श्वदंगा लोहचूर्णं च भृङ्गस्वरसभावितम् ।

अरिष्टखदिराभ्यां च भावयेत्पञ्चनिम्बकम् ॥ २२१ ॥

भावयित्वा पुनः पिष्टमेकस्थाने च कारयेत् ।

ततः कर्पमितां मात्रां सर्पिषा माक्षिकेण वा ॥ २२२ ॥

मुखाम्बुना वा तत्पीतं तत्क्षणादेव जीर्यति ।

हन्यात्कुषुपानि सर्वाणि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ २२३ ॥

अर्णासि वातगुलमं च सालित्यं पलितानि च ।

वातरक्तं विशेषेण श्वित्रं कुष्ठं तथैवं च ॥ २२४ ॥

कुष्टनाशनमेतद्दि ब्रह्मणा गदितं पुरा ।

वातातपसहो ह्येप न चात्र नियमः कचित् ॥ २२५ ॥

ग्राम्यधर्मं च कुर्वाणो भोजनं च यथेप्सितम् ।

मासपात्रोपयोगेन जीवेद्वर्पशतं पुमान् ॥ २२६ ॥

सर्वकामपसक्तोऽपि सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।

पण्मासमुपयोगेन संपर्पणे न दश्यते ॥ २२७ ॥

वर्षमात्रोपयोगेन जिविद्वर्षशतव्रयम् ।

नास्मात्परमपस्त्यन्यत्कुप्त्रोगस्य भेषजम् ॥ २२८ ॥

साध्यानि यानि कुष्ठानि तान्येवामुं प्रकृत्यतः ।

निर्वर्तन्ते यथा कुञ्जे सौपर्णे पथनाशिनः ॥ २२९ ॥

मन्दामी लाणमात्कर्णं चूर्णम् ।

पिष्टली पिष्टलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ।

सैन्धवं च विडं चंब पत्रं तालीसकेसरम् ॥ २३० ॥

एपो द्विपलिकान् भागान् पञ्च सौर्यचलस्य च ।

सारिवाजाजिभृष्टीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ २३१ ॥

त्वगेले चार्धभागे च सामुद्रात्कुट्टवद्रयम् ।

दाढिमात्कुट्टवं चंकं द्वे पले चाम्लवेत्सात् ॥ २३२ ॥

एतद्वूर्णीकृतं शृङ्खणं गन्धाद्वयमपृतोपमम् ।

लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥ २३३ ॥

जगतोऽस्य हितार्थाय वातश्लेष्मायथापहम् ।

तक्रमस्तुमुराशुक्तसीधुकाजिकयोजितम् ॥ २३४ ॥

जाह्नवानूपमांसेषु भक्ष्येषु विविधेषु च ।

मन्दामीनां खादयतां शक्तो भवति पावकः ॥ २३५ ॥

अशीसि ग्रहणीदोपशोपकुमुभगन्दरान् ॥

हृद्रोगमामदोपांश्च विविधालुदरस्तितान् ॥ २३६ ॥

षुष्ठीदानं वातगुल्मं च श्वासकासोदरक्षयान् ।

शूलं च नाशयत्येत्कुष्ठो नृप इवापदः ॥ २३७ ॥

परिणामशूले यामुदाद्यं चूर्णम् ।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रामठं विडम् ।

दन्ती लोहरजः किंव विवृत्सूरणकं समम् ॥ २३८ ॥

दधिगोमूत्रतोयैश मन्दपावकपाचितम् ।  
 तं यथाग्रेवलं चूर्णं किञ्चिदुष्णेन वारिणा ॥ २३९ ॥  
 जीर्णं जीर्णं तु भुजीत मांसादिलिङ्घभोजनम् ।  
 नाभिशूलमुरःशूलं गुलमधीहभवं च यत् ।  
 परिणामसमुत्थस्य शूलस्य च हितं परम् ॥ २४० ॥  
 तुम्बर्वादं चूर्णम् ।

चूर्णं तदेतदिति तुम्बर्लुपुष्कराद्वा-  
 पथ्याम्लवेतसविडं रुचकं सहिष्ठु ।  
 सिन्धूद्वेन सहितं यवद्वारिपीतं  
 शूलापतन्त्रकविकारहरं यदुक्तम् ॥ २४१ ॥  
 शूले हिष्पवष्टकं चूर्णम् ।

व्योपाजमोदयुतजीरकयुग्मासिन्धु-  
 चूर्णं सरामठविभागमिति प्रयुक्तम् ।  
 हिष्पवष्टकं इति हज्जवरान्तराल-  
 शूलानि गुलमगुदजग्रहणीविकारान् ॥ २४२ ॥  
 अरोचके द्विर्गीयं हिष्पवष्टकं चूर्णम् ।

त्रिकुरुक्षुभजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे  
 सपथरणधृतानामपृष्ठो दिष्ठुभागः ।  
 प्रथमकवलभूक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-  
 जानयति जडरामिं वातगुलमं निहन्ति ॥ २४३ ॥  
 मन्दामो रामठादं चूर्णम् ।

रामठं रुचकं वहिर्वचाजीरकनागरम् ।  
 विडङ्गश्वित्रकः कुष्ठं कणामरिच्वेतसम् ॥ २४४ ॥  
 दीप्तकथेति सर्वाणि समभागानि कारयेत् ।  
 चूर्णमुष्णाम्युना पीतं वहिवृद्धिकरं परम् ॥ २४५ ॥  
 सर्वाङ्गशूले चित्रकादं चूर्णम् ।

चित्रकः पिष्पलीमूलं पिष्पली गजपिष्पली ।  
 विष्पलीमूलं च विष्पली गजपिष्पली ॥ २४६ ॥

॥ २४७ ॥

तुम्बुरुशाजमोदा च यवानी रुचकं तथा ।  
समभागानि सर्वाणि सर्वसुल्यं तु नागरम् ॥ २४८ ॥  
यक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा मातुलुड्रेन भावयेत् ।  
ततः कर्णमितां मात्रां पिवेदुष्णेन वारिणा ॥ २४९ ॥  
मधेन मस्तुना वापि युपेणापि रसेन वा ।  
जपेत्सर्वाङ्गं शूलं फोट्टुगं कुक्षिगं तथा ॥ २५० ॥  
अर्जीजठरगुल्मध्रं दीपनीयं विशेषतः ।  
चित्रकायमिदं चूर्णमामवातहरं परम् ॥ २५१ ॥

मनश्चाप्ते केषम्पकार्यं पूर्णम् ।

सिन्धुसौवर्चलव्योपपथ्याजीरकचित्रकैः ।  
विडम्बयावशूकाहपाकयग्रन्थिकरोपर्कः ॥ २५२ ॥  
त्रिवृच्चव्यपुर्तश्चूर्णं तक्रेणाम्लाम्लुना पिवेत् ।  
कलिपते वहिदीस्यर्थं प्रातरत्याय मानवः ॥ २५३ ॥

वातश्चाप्ते उमुशार्थं चूर्णम् ।

सामुद्रसौवर्चलसंन्धवानां क्षारो यवानामजमोदभागः ।  
इतीतकीपिष्पलीशृङ्खवेरं हिन्दुर्विंदङ्गं च समानि कुर्यात् ॥ २५४ ॥  
एतानि चूर्णानि धृतप्लुनानि भुञ्जीत पिण्डान् प्रथमं तु पञ्च ।  
अजीर्णवातं ग्रहगुल्मवातं वातप्रमेहं विपर्ये च वातम् ।  
सकामले पाण्डुविमूचिके च श्वासं च कासं च हरेत्प्रयुक्तम् ॥ २५५  
नारसिंहं चूर्णम् ।

प्रस्थं शतावरीचूर्णं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च ।  
वाराहा विंशतिपलं गुहूच्याः पञ्चविंशतिम् ॥ २५६ ॥  
प्रस्थद्रव्यं तु भलाताचित्रकस्य दर्शय तु ।  
तिलानां लुञ्जितानां च प्रस्थं दद्यात्सुचूर्णितम् ॥ २५७ ॥

न्युपणस्य पलान्यष्टी शक्तरायाश्च सहतिः ।

माक्षिकं शक्तरार्थेन तदर्थेन च वै घृतम् ॥ २५८ ॥

शतावरीसमं देयं विदारीकन्दचूर्णकम् ।

एतानि सूक्ष्मचूर्णानि स्त्रिये भाण्डे निधापयेत् ॥ २५९ ॥

पलार्धमुपयुज्ञत यथेष्टु चात्र भोजनम् ।

एष पासोपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥ २६० ॥

बलीपलितखालित्युपुहव्याधींश्च पीनसान् ।

भग्न्द्रं मूत्रकृच्छ्रमझर्मर्णि च भिनत्यपि ॥ २६१ ॥

अष्टादशैव कुपानि तथाऽष्टावुदराणि च ।

प्रमेहं च महाव्याधिं पञ्चकासान् सुदुस्तरान् ॥ २६२ ॥

अशीति वातजान् रोगांश्चत्वारिंश्च पैचिकान् ।

विशीति शैघ्यिकांश्चैव संस्पृष्टान् सान्निपातिकान् ।

एताः सर्वा रुजो हन्ति दृष्टमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २६३ ॥

सकाश्चनाभो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गवेगो जलदौधयनिःस्वनः ।

स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरम्यः सुख्पवान् सत्त्ववतां वरिष्ठः ॥ २६४ ॥

पुत्रान् संजनयेद्वीपान्नरसिंहनिभांस्तथा ।

नारसिंहेति विल्यातश्वूणो रोगगणापहः ॥ २६५ ॥

अतिष्ठारे गङ्गाधरं चूर्णम् ।

अरलुकनन्युण्ठीधातकीविल्वरोद्वं

कुट्टजफलसमेतं मोचनिर्यासयुक्तम् ।

अतिविपजलपाठाः साहकारं च वीजं

मसृणमधुविमिश्रं तण्डुलाम्युप्रपीतम् ॥ २६६ ॥

कफोद्वं मारुतपित्तसंभवं जयेदतीसाररयं तथाऽप्यजम् ।

प्रद्युद्धाङ्गाधरनाम चूर्णकं तथा हि दोषं ग्रहणीभवं च ॥ २६७ ॥

पुल्मे कट्टिकार्त्त चूर्णम् ।

कट्टुचिकं निक्तकरोहिणी घनं किराततिर्कोऽथ शतक्रतोर्यवाः ।

११९ ॥ २५८-२६७ ॥ प्रदोक्षमलं महाव्याधिकारम् ॥ २६८ ॥

विद्वच्च च च सगुह्यं निष्ठुं भिषद्वनीचोत्पलोद्धमउनम् ।  
 सपातसीमोचरमं फलश्रिकं तथा नवं विलक्षणपित्यसारिवम् ।  
 समाः स्युरेते द्विगुणं तु चित्रकं द्विरषभागं कुटजात्त्वं ततः ॥  
 मुग्धस्मपिए शिभिराम्बुयोजिते पिवन्यनुष्ट्योऽर्थपलं गुडान्वितम्॥  
 बुमुक्षिते स्यान्मृदु भोजनं हिमं निरान्ति गुलमान्कफपिच्छसंभवान्॥  
 ज्वरातिसारग्रहणीगदागच्छीः प्रमेहमूत्रसयवर्ध्मविद्रधीन् ॥२७०॥  
 अनीर्णपाण्डुक्षतसासरोफान् सदा प्रयुक्तः सगुडः कुडुक्रिकः ।  
 इति व्याख्यायं चूर्णम् ।

व्योपकट्टीवरान्तिगुविद्वातिविपास्पिराः ।  
 हिङ्गसांवर्जलाजामीयवानीधान्यचित्रकाः ॥ २७१ ॥  
 वृहत्यौ हपुपा पाठा निशे मूलं च केवुकात् ।  
 एपां चूर्णं समध्वाज्यं तैलं चापि दशांशकम् ॥ २७२ ॥  
 फलभागं स्तु सन्तूनां युक्तं पीतं निरान्ति तद् ।  
 नृणां स्थौल्यादिकान्दोपान् कफमेदोभवांस्तथा ॥२७३॥  
 हृद्रोगकापलाचित्रभासकासगलग्रहान् ।  
 करोति युद्धिं मेधां च सन्नस्याप्रेत्य दीपनम् ॥ २७४ ॥  
 अतिस्थौल्यादिकान् दोपान् रोगानन्यांश्च तद्रिधान् ।  
 इति विद्वायं चूर्णम् ।

विद्वां नागरं रात्रा पिष्पली हिङ्गं सैन्यवम् ।  
 भार्गीं क्षारश्च तचूर्णं पिवाद्व घृतमात्रया ॥ २७५ ॥  
 सकलेऽनिलजे कासे श्वासे हिधमानिलार्तिषु ।

गुरुमे वचायं चूर्णम् ।

वचा वत्सकवीजं च कुषुं चित्रकमेव च ॥ २७६ ॥  
 पिष्पली शृङ्गवेरं च पाठा कुडुकरोहिणी ।  
 चवानी च पटोलं च सैन्यवातिविषं तथा ॥ २७७ ॥  
 हपुपा चाजगन्धा च शंटी पौष्करमेव च ।  
 एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २७८ ॥

तत्र कर्पसमां मात्रां पिवेदुष्णेन वारिणा ।

गुलमान् पञ्च च हृद्रोगान् कुक्षिशूलं च नाशयेत् २७९

पाण्डुरोगे किराततिक्काद्यं चूर्णम् ।

किराततिक्कं सुरदारु दार्वी मुस्ता गुड्हची कटुका पटोलम् ।

दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं फलत्रिकं वह्निकटुत्रिकं च ॥२८०॥

विडङ्गसारं च समांशकानि ध्ययोरजोऽर्थेन विचूर्णितानि ।

ईपदृताकं मधुनाड्वलीदमर्शासि दोषं ग्रहणीपदोपम् ।

कुषानि कृच्छाणि हलीमकं च ज्वरांश्च घोरानथ पाण्डुरोगान् ॥

आमोद्वान् वातसमुत्थितांश्च पित्तोद्वांश्चैषमसमुद्वांश्च ।

दुष्टवणान्वै कफविद्र्धींश्च वित्राणि हन्याच्छतशः प्रयोगः २८२

इषादौ खण्डसमं चूर्णम् ।

त्रिफलाव्योपविल्वाद्वपिपलीमूलचित्रकैः ।

चाविकात्वचपत्रैलातिनिडीकाम्लवेतसैः ॥ २८३ ॥

समांशं धातुमासीकं सर्वेस्तुल्या सिता भवेत् ।

भक्षयित्वा यथासात्म्यमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २८४ ॥

चूर्णितं मधुना लेण्ठ वटकान् वा समाक्षिकान् ।

नाशयेत्कुषुमालस्यं प्रमेहोदरकामलाः ॥ २८५ ॥

पाण्डुत्वं ग्रहणीदोषं हलीमकशिरोरुजम् ।

प्रसेकमरुचिं भूच्छीं हृष्टासं मन्दवह्निताम् ॥ २८६ ॥

रक्तपितं परीसर्पे भयथुं चाङ्गतापकम् ।

जनयेत्माणमुत्साहं बलवर्णस्थिराङ्गताम् ॥ २८७ ॥

चूर्णं खण्डसमं नाम समस्तान्नाशयेद्वदान् ।

इषे आकुच्छाद्यं चूर्णम् ।

पलानि संगृष्ट दवेन्दुराज्या फलत्रयस्यापि समानमेतत् ।

विडङ्गसारस्य पलानि सप्त शिलोद्वाऽर्थं च पुरस्य चैकम् ॥२८८

शसं च भद्वातकसरक्षानां पलं तथा पुष्करमूलनाश्रः ।

पलप्रयं लोहभवं मुन्हृष्टं त्रुटिः पलार्थं यथ कर्षभागान् ॥२८९॥

सपत्रकृष्णावनयष्टिकानां सचित्रकग्रन्थिककेशराणाम् ।  
 न्यग्रोधमूलोपणकुड्मानामेकत्र संचूर्ण्य समं तु खण्डम् ॥२९०॥  
 खादेवथाग्नि प्रयतस्तु मात्रां कुष्ठान्यशेषाण्यपयान्ति नाशम् ।  
 अशोविकाराः पटपि प्रवृद्धाः वित्राणि वित्राण्युदराणि चाष्टैः ।  
 क्षयाश्च कृच्छ्रः खलु पाण्डुरोगः कण्ठामया विशतिरेव मेहाः ।  
 उन्मादरोगज्वरनेत्ररोगा नासोद्वावा पञ्चविधाश्च गुलमाः ॥२९२॥  
 वातपशीतिविकारं चत्वारिंशत्यभेदजं पित्तम् ।  
 श्लेषमाणं विशतिकं विनाशयत्यति च दृष्टमपि ॥ २९३ ॥

भवति रुचिरदीपिर्गारवर्णो मनुष्यः  
 समधिकशतवर्षं जीवतीह प्रगल्भम् ।  
 विघटितवनरोगो मासमात्रप्रयोगा-  
 वृष्टिनयनहारी हृष्टपुष्टो वृपथ ॥ २९४ ॥  
 उदरे भस्मार्कचूर्णम् ।

युर्गतुसंख्यानि दलानि भानोश्चत्वारि काण्डानि सुधाद्रुपस्य ।  
 चुरेन्द्रवृद्ध्या दश सत्फलानि पञ्चैव पत्राणि कुमारिकायाः ॥२९५॥  
 चत्वारि दृन्ताकतरोः फलानि व्याधीचतुःपष्टिफलानि युक्त्या ।  
 पञ्चाङ्गमेकं हरिपर्णकन्दं सिद्धार्थतैलं च पलुप्रमाणम् ॥२९६॥  
 यवाहसौवर्चलयोः पलं स्यात् धूर्तस्य वांश्च फलं पलं हि ।  
 पलानि पञ्चैव शिवाहयस्य गोकण्ठकं चाऽपि कूदन्ति वैद्याः ॥२९७॥  
 गुरुपदेशादधिगम्य सम्यग्भाण्डे स्वबुद्ध्याऽकदलानि मुक्त्वा ।  
 सर्वाणि चान्यानि महीपधानि सिद्धार्थतैलेन विभित्रितानि ॥२९८॥  
 भक्षिष्य संरुद्धय मुखं तदीयं मृत्कर्पटं सन्धिषु वेष्टनीयम् ।  
 गम्भीरगते कुहरे निवेदय पञ्चादनीयं छगणैः प्रभूतैः ॥२९९॥  
 उत्तार्य यदेन सुशीतलं तं क्षारं चतुर्भिः प्रहरैः सुसिद्धम् ।  
 सूक्ष्मीकृतं जीरकर्पटं मध्ये सिपेद्वर्णान्तं ॥३००॥  
 तदाहृत्वाते शूथ पाण्डुरोगे भगन्दं  
 आनाहवन्धे ग्रहणीवि ।

तकेण कर्पार्षिमिदं प्रदेयं भस्मार्कचूर्णं दधिमस्तुना वा ।  
 खासे सकासे हृदयोपरोधे कष्ठग्रहे जीर्णगुडेन देयम् ॥ ३०२  
 तैलेन शूले मधुनोदरेषु गुलमपकोपे फलपूरकेण ।  
 सौवीरकेणाथ सदा प्रयोज्यमुप्पेन सर्वत्र जलेन देयम् ॥ ३०३  
 यथा मृगेन्द्रो द्विपदपहन्ता वज्रं यथा भूधरमध्यभेदि ।  
 अयं तथा योगवरो जनानां निहन्ति दुष्टानपि रोगसंघान् ॥ ३०४  
 योगप्रदीपो मुनिभिः पुराणोर्निवेदितो मूलमसौ हितानाम् ।  
 अनेन भीमादपि गाढवाहिनरो भवेत्पथ्यहितोपचारैः ॥ ३०५ ॥

अर्शसि पूरीकरजायं चूर्णम् ।

पूरीकरख्युरणसुरताढकरञ्जिन्युजातानाम् ।  
 पथ्यामुसलीशीतककुञ्जाश्रीनां च तुल्यांशम् ॥ ३०६ ॥  
 चूर्णं तकेणैनं पिवतस्तेनैव चाश्रतो भुक्तम् ।  
 पकफलानीव तरोरज्ञासि पतन्ति मासेन ॥ ३०७ ॥

गुणं चवक्षारायं चूर्णम् ।

यवशारं यवानी च पिवेदुष्णेन वारिणा ।  
 एतेन चातजं शूलं गुलमश्चैव चिरोत्तिथतः ॥ ३०८ ॥  
 भियते सप्तरात्रेण पवनेन यथा धनः ।  
 जीर्णे रसेस्तु भुञ्जीत शाशलावकत्तिरैः ॥ ३०९ ॥

ज्वरातिसारे व्योपायं चूर्णम् ।

ब्योपं वत्सकवीजं च निम्बभूनिम्बपार्कवम् ।  
 चित्रकं रोहिणी पाठा दार्वी चातिविषा सदाः ॥ ३१० ॥  
 सूक्ष्मनूर्णकृताः सर्वस्ततुल्या वत्सकत्त्वः ।  
 सर्वमेकत्र संयोज्य प्रपिवेचण्डुलाम्बुना ॥ ३११ ॥  
 सक्षीद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेषजम् ।  
 अन्तर्दि दृन्ति दृप्त्यां च ज्वरातीसारनादन्त्र ॥ ३१२ ॥  
 कामलां ग्रहणीदोपान् गुलमे श्रीदानन्देव च ।  
 प्रेमदं पाण्डुरोगं च भयधुं च निम्बाम्बुन् ॥ ३१३ ॥

शोके कृष्णायं चूर्णम् ।

कृष्णाग्रिविषयनजीरककण्टकारी-

पाठनिशाकरिकणामगधाजटानाम् ।

चूर्णं कवोप्णसलिलं रवलोह्यं पीतं

नातः परं भययुरोगहरं नराणाम् ॥ ३१४ ॥

इषादद्वयोगयोर्द्विष्टुपञ्चकं चूर्णम् ।

हिङ्गं सौवर्चलं विश्वं दाढिमं साम्लवेतसम् ।

हन्ति भासं च हद्रोगमिदं स्याद्विङ्गुपञ्चकम् ॥ ३१५ ॥

शोषे तिवाय चूर्णम् ।

तिलकर्कन्धुलाजानां चूर्णं मध्याञ्यलेहिनः ।

क्षीरानुपानं मासेन शोषम् नास्त्यतः परम् ॥ ३१६ ॥

वर्ध्मरोगे विन्वमूलायं चूर्णम् ।

मूलं विल्वकपित्थयोररलुकस्यामेर्वृहत्योर्द्योः

इयामातिल्वकरञ्जिग्रुकतरोर्विश्वीपधारुप्करम् ।

कृष्णाग्रन्थिकवेष्टुपञ्चलवणक्षाराजमोदान्तिं

पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितैश्वूर्णाकृतं वर्धमजित् ॥ ३१७

सर्वमेदं विन्दन् वाय चूर्णम् ।

इन्द्रूपवतीक्षणीजासौवर्चलयावश्यकपीशम् ।

मूर्वापाठाशुण्ठीद्विचतुरएंगकर्भागीः ॥ ३१८ ॥

हिङ्गवर्धकर्पयुक्तं पेयामण्डेन दध्ना वा ।

नादायति सर्वमेहानशासि च दीप्यत्यग्निम् ॥ ३१९ ॥

शुले शर्कराय चूर्णम् ।

मरिचं शर्कराहिङ्गं सूक्ष्मनूर्णाकृतं पिवेत् ।

सुखोदकेन तद्धयाशु शूलघ्रममृतोपमम् ॥ ३२० ॥

भानादेहिंहतरं हिङ्गवाय चूर्णम् ।

द्विरुचरं हिङ्गवचामिकुष्टं सुवर्चिका चैव विद्वचूर्णम् ।

सुखान्तुनाऽनाहरिसूचिकार्तिंहद्रोगगुलमेऽर्धसमीरणग्रस् ॥ ३२१

पानीयव्यायायां मुस्ताय चूर्णम् ।

मुस्ताजमोदवृहतीद्रवयानिगन्धा-

द्विजीरकं दहनभृहविडङ्गरास्ताः ।

भूनिष्ठनिष्ठमयवलकलराजनृष्ट-

सौवर्चलं त्रिकटुकं त्रिफला सभार्गी॥३२२॥

सुधाकराख्यो जरणः सकुष्टस्तथाऽपरो मालघदेशजातः ।

निरुष्टिका सैन्धवमेथिकं च परीचमुण्डीमुशलीमुदूर्यः ॥३२३॥

वातव्यार्थि विसूचीं च छायांपरदेशजाप् ।

निदन्ति सेवितं चूर्णमेतेषां पृथ्यभोजिना ॥ ३२४ ॥

मन्दामै शतपुष्पाय चूर्णम् ।

शतपुष्पा विडङ्गानि सैन्धवं परिचं समम् ।

चूर्णमुण्डाम्बुना पीतमग्निसंदीपनं परम् ॥ ३२५ ॥

शुष्मे नारायणं चूर्णम् ।

शतपुष्पावचाकुष्टस्तथ्योऽज्ञानिधान्यकम् ।

द्वी सारी पिष्टलीभूलं यवानी कुञ्जिका शब्दी ॥३२६॥

स्तर्णीकार्पजगन्धा च विशाला चित्रकः समम् ।

बृहदन्ती समला च देया द्वित्रिवतुर्गुणाः ॥ ३२७ ॥

नारायणभिति ख्यातं चूर्णं श्रेष्ठं चिरेचने ।

गुल्मानाहविपाजीर्णश्वासकासगलग्रहान् ॥ ३२८ ॥

शोफाशोष्ठर्हणीदोषभगन्दरगदाङ्गेत् ।

शुष्मे श्यूषणायं चूर्णम् ।

ज्यूपणत्रिफलाद्विषु कार्पिकं त्रिवृतापलम् ॥ ३२९ ॥

सौवर्चलार्धकर्पे च पलार्घं चाम्लेवतसम् ।

नगूणे शर्करातुलये मध्येनाम्लेन पाययेत् ॥ ३३० ॥

गुल्मपाञ्चांतिनुस्तिदं जीर्णं चास्यन् नवौदनम् ।

कृत्वा चूर्णमतो मात्रामन्नपानेषु दापयेत् ।

सन्यं तदीपनं वल्यं पार्श्वार्तिं शासकासनित् ॥ ३३३ ॥

आमः तीव्रारे पिप्पस्याद्यं चूर्णम् ।

पिप्पली चन्द्रनं मुस्तगुर्भीरं फटुरोहिणी ।

पाठा वत्सकवीजं च हरीतक्यां महीषधम् ॥ ३३४ ॥

एतदामसमुत्थानमतीसारं सबेदनम् ।

कफात्मकं सपित्तं च पुरीणं चाशु रोधयेत् ॥ ३३५ ॥

पीनसे च चायं चूर्णम् ।

चव्याम्लवेतसफटुत्रिकतिनिटीक-

तालीसजीरकरुनादहनेः समाशीः ।

चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिमुगन्धियुक्तं

वैस्त्रयपीनसकफारुचिपु प्रशस्तम् ॥ ३३६ ॥

कायेऽजमोदादिभस्मचूर्णम् ।

अजमोदा पलद्वन्द्वं हरिद्रा च विडं तथा ।

सारस्तु खदिरस्यापि हौंद्रिदं लवणं तथा ॥ ३३७ ॥

अभया पीष्करं भार्गी हैलाटझाणकटफलम् ।

शृपापामार्गयोर्मूलं क्षारयुग्मं तर्थय च ॥ ३३८ ॥

प्रत्येकं पलमानानि रविपुष्पचतुष्पलम् ।

चूर्णकृत्य ततो दद्यात्कुमारीरसभावनाम् ॥ ३३९ ॥

सान्तर्घूमं घटे दग्ध्वा चूर्णितं वस्त्रगालितम् ।

मधुना लीढमेतद्धि पञ्चकासनिवारणम् ॥ ३४० ॥

दादरोगे दाक्षादिचूर्णम् ।

द्राक्षालाजसितोत्पलं समधुकं खर्जुरगोपीहुगा-

हीवेरामलकाब्दचन्दननतं कक्षोलजातीफलम् ॥

चातुर्जातकणं सधान्यकमिदं चूर्णं समां शर्करां

दत्त्वा शीतजलेन भक्षितमिदं पित्तं सदाहं जयेत् ॥ ३४१ ॥

मूच्छीं छर्दिमरोचकं च प्रदरं पाण्डुं भ्रमं कामलां

यक्षमाणं समदात्ययं सतमकं त्रृष्णास्थपित्तं तथा ॥ ३४२ ॥

पाण्डुरोगे नवायर्थं चूर्णम् ।

अयुपणत्रिफलामुस्तविडङ्गदहनाः समाः ।

नवायोरजसो भागास्तच्छृण्म मधुसर्पिंपा ॥ ३४३ ॥

भक्षेयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःशमनं परम् ।

राजयदमणि द्वितीयं वृद्धनवायसचूर्णम् ।

त्रिकदुत्रिफलैलाभिर्जातिफिललब्दकैः ॥ ३४४ ॥

नवभागोन्मित्तरेतैः समं तीक्ष्णं मृतं भवेत् ।

संचूर्ण्यालोडयेत्क्षीद्रे नित्यं यः सेवते नरः ॥ ३४५ ॥

कासं श्वासं क्षयं मेहं पाण्डुरोगं भगन्दरम् ।

ज्वरं मन्दानलं शोफं संमोहं ग्रहणीं जयेत् ॥ ३४६ ॥

मन्दशो शुष्क्याद्यं चूर्णम् ।

शुष्ठीं ससौवर्चलचित्रकाभयां सरामठां दाढिमसैन्धवान्विताम् ।

खादन्ति ये मन्दहुताशना शुष्कि भवन्ति ते वाइवतुल्यवहयः ॥ ३४७ ॥

हृदोमे तिकके चूर्णम् ।

मुस्तैलाचन्दनोशीरं यवानी व्योपवत्सकौ ।

फलं त्वक् कदुका दारु दार्वीं त्वकपर्पटस्तथा ॥ ३४८ ॥

पदोलपत्रं पद्मग्रन्था मूर्वाभूनिम्बशिशुकाः ।

त्रायमाणा च सौराष्ट्री मुरा प्रतिविपा समाः ।

निक्तकं नाम हृद्गुलमधूलग्नं सञ्चिपातनुत् ॥ ३४९ ॥

कुष्ठे लाक्षाद्यं चूर्णम् ।

लाक्षा दन्ती च मूर्वा मधुरसवचाद्रीपिपावाद्रिकणी-

प्रत्यक्षपुष्पी विडङ्गे त्रिकदुकरजनीसत्पर्णादरूपम् ।

रक्ता निम्बं मुरतस्व वचा पञ्चमूलयो च चूर्णं

पीत्वा मासं जयति पितभुक् गव्यमूत्रेण कुष्ठम् ॥ ३५० ॥

प्रदण्यो पश्यन्तरयः ।

कर्पे रसाद्गन्धकतस्तथैव विमर्द्य खल्वेऽप्रकमेव तावत् ।

दध्नात्तथा ताप्त्रमयोरजन्त्र गव्येन चाज्येन विमल्य किञ्चित् ॥ ३५१ ॥

पत्रे मन्दं वहिना ज्वालयेत्तद्यान्मात्रां रजिकमद्युद्धया ।  
 यावन्मापो नाथिकं मानवेभ्यः कृत्वा वहेदीपिनं हन्ति रोगान् ॥३५२  
 पाण्डुष्ठीहोन्माददुर्नामभेदान् पित्तं साम्लं सातिसारं ज्वरं च ।  
 सद्यः शूलान् त्वग्रहण्यामयं च रोगांश्चैव मूत्रिकाया निहन्ति ॥३५३  
 अयं हि पञ्चामृतनामधेयो रसेन्द्रराजः क्षपरोगहारी ।  
 वातास्मुग्रं श्ययुं च हन्यात्स्वयोगयुक्तः सकलान्विकारान् ॥३५४  
 पश्चामं चूर्णम् ।

पथ्यानागरजीरकारुण्यरुचकैः इयापान्वितैः पञ्चभि-  
 शूर्णं पञ्चसमं समस्तगदहृत्कायापिसंदीपनम् ।  
 प्राणोत्साहविवर्धनं रुचिकरं गुल्मघष्ठीहापहं  
 पत्याध्यानगरादिरोगशमनं सापानिले पूजितम् ॥३५५ ॥  
 उर्ध्वा बदरायं चूर्णम् ।

बदरत्रिफलानां च व्योपस्य च पलद्वयम् ।  
 विधोः कर्पस्तु लाजानां पलद्वादशकं भवेत् ॥ ३५६ ॥  
 एलात्वकपत्रक्षाणां तु पलं स्पादंशलोचना ।  
 पलाष्टकोऽम्लवेतथ चतुष्पल उदाहृतः ॥ ३५७ ॥  
 चूर्णं द्विगुणस्यण्डं तु हृदं वभिहरं परम् ।  
 यस्माणं रक्तपित्तं च ज्वरं कासं च नाशयेत् ॥ ३५८ ॥  
 उदरे नवक्षारकं चूर्णम् ।

तुवरीदङ्गणव्योपसामुद्रं सैन्धवं विडम् ।  
 काचं सौवर्चलं चव्यं क्षारश्चेक्षुरकोद्भवः ॥ ३५९ ॥  
 एतानि समभागानि चूर्णकृत्य प्रयोजयेत् ।  
 रक्तवातारुचिष्ठीहोदररोगापनुत्तये ॥ ३६० ॥  
 मन्दामात्रज्ञमोदायं चूर्णम् ।

साजमोदलवणा हरीतकी गृज्जथेरसहिता च पिप्पली ।  
 भैथतक्रमृतशीतवारिणा चूर्णपानमुद्रापिदीपनम् ॥३६१॥  
 दन्तरोगे जातीपत्रायं चूर्णम् ।  
 जातीपत्रपुनर्नवातिलकणाकोरण्टपुष्पं वचा  
 शुण्ठीदीप्यकपथ्यकाः समधृतं चूर्णं मुखे धारयेत् ॥

वातश्चं कफनाशनं कृमिहरं दुर्गन्धिशूलापहं  
सद्यः शोफहरं च रक्तशमनं दन्तांश्च वज्रायते ॥ ३६२ ॥  
कासे जातीफलाद्यं चूर्णम् ।

जातीफलं विडङ्गं च चित्रकस्तगरस्तिलाः ।  
तालीसं चन्दनं शुण्डी लवङ्गं चोपकुञ्चिका ॥ ३६३ ॥  
कर्पूरं चाभया धात्री मरिचं पिष्ठली शुभा ।  
एपामक्षसमान् भागान् चातुर्जातकसंयुतान् ॥ ३६४ ॥  
पलानि त्रीणि भृङ्गायाः शक्तरा समयोजिता ।  
मधुना चूर्णमेततु कर्पार्धं लेहयेत्तथा ॥ ३६५ ॥  
जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ।  
वातक्षेप्तोद्वांशान्यान् प्रतिश्यायमरोचकम् ॥ ३६६ ॥  
एताः सर्वा रुजो इन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।  
दाढिमाद्यं चूर्णम् ।

दाढिमस्य पलान्यष्टौ शृङ्गवेरपलब्रयम् ॥ ३६७ ॥  
पलद्वयं पिष्ठली च कोलचूर्णं पलद्वयम् ।  
यवानी चाजमोदा च मिश्रैवाम्लवेतसम् ॥ ३६८ ॥  
द्वृक्षाम्लं चविका चात्र ह्यभया च पलोन्मिता ।  
सौवर्चलं च धन्याकं सूक्ष्मेला त्वक्तथैव च ॥ ३६९ ॥  
ग्रन्थिकं मारिचं चात्र पत्रकं सतुगाहयम् ।  
एपामर्धपलान् भागान् सर्वेस्तुल्या सिता भवेत् ॥ ३७० ॥  
एतत्प्राक् भोजनाचूर्णं दीपनं गुलमनाशनम् ।  
अशार्द्धसि ग्रहणीदोपमतीसारं प्रवाहिकाम् ।  
पार्वशूलमयानाहं प्रमेहांश्च प्रणाशयेत् ॥ ३७१ ॥  
मन्दामावामलश्यादिचूर्णम् ।

आमलकवहिपथ्यामागधिकासैन्धवेः कृतं चूर्णम् ।  
विनिहन्ति कण्ठरोगं मन्दामिं रक्तपित्तमपि ॥ ३७२ ॥  
खीरोगे मेयिकाद्यं चूर्णम् ।

मेयिका शतपुष्पा च यवानी मधुयष्टिका ।  
त्रिकदु त्रिफला मुस्ता त्रिजातं च पुनर्नवा ॥ ३७३ ॥

ऋष्यमोक्ता समझा च चन्दनं रक्तचन्दनम् ।  
 द्राक्षापुष्करमज्जिष्ठाः समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ३७४ ॥  
 घृतखण्डेन पक्तव्यं काले स्त्रीणां च दापयेत् ।  
 गर्भप्रदं च वन्ध्यानां स्त्रीणां वलविवर्धनम् ॥ ३७५ ॥  
 शमनं रक्तवातस्य पित्तोपद्रवनाशनम् ।  
 त्रिदोषे रुद्धगर्भे च परमं सुखकारकम् ॥ ३७६ ॥  
 कामवृद्धी राजयोगः ।

अहिफेनं वत्सनामः केशरं चव्यचित्रकम् ।  
 धचूरभृङ्गशिग्रूणां वीजानि सितजीरकम् ॥ ३७७ ॥  
 अश्वगन्धाऽत्मगुप्ता च कलिङ्गकलवङ्गकम् ।  
 आकछुकोऽनमोदा च मुशली च शतावरी ॥ ३७८ ॥  
 पिप्पली पिप्पलीमूलं चातुर्जातकसंयुतम् ।  
 कटाहे मधुना पक्त्वा कुर्यात्पूर्णोपमा वटीः ॥ ३७९ ॥  
 भोजनानन्तरं वक्त्रे गुटी धार्या घटीद्रयम् ।  
 जातीपत्री विशेषेण धारणीया मुखे सदा ॥ ३८० ॥  
 क्षाराम्लदधिवर्जं च कार्यं भोजनमुत्तमम् ।  
 पण्डत्वं स्वल्पवीर्यत्वं हन्याच्छीतमिवानलः ॥ ३८१ ॥  
 अतिसारे प्रमेहे च मन्दामौ राजयक्षमणि ।  
 आमवाते महावाते पाण्डुरोग शिरोगदे ॥ ३८२ ॥  
 शुद्धि पानीयजे रंगे सर्वाङ्गवात इष्प्यते ।  
 ईश्वरेण च संप्रोक्तः कार्तिकेयाय सुन्दरः ॥ ३८३ ॥  
 एप द्वार्तिंशको नाम योगराजः प्रकीर्तिः ।  
 क्षये आभावं चूर्णम् ।

आभां च धातुमाक्षीकं गिरिजं च त्रिजातकम् ॥ ३८४ ॥  
 जीरकपूर्खकी मेदा काकोली पुण्डरीयकम् ।  
 व्योपं च वालकं चैव पृथ्वी कालेयकं विठम् ॥ ३८५ ॥  
 एतानि संमभागानि शायसं द्विगुणं क्षिपेत् ।

शर्करा च समा देया मधुना सह लेहयेत् ३८६ ॥

क्षयमेकादशाकारं श्वासं कासं तथैव च ।

स्वरभेदं पार्वशुलं ज्वरं कम्पं च दारणम् ॥ ३८७ ॥

रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पीनसं च हनुग्रहम् ।

हिघमां च कण्ठरोगांश्च नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३८८ ॥

विष्वल्याद्यं चूर्णम् ।

चत्वारि पिष्पलीनां तु पञ्च सौवर्चलोद्गवाः ।

जीरकस्य त्रयो भागाः शुष्ट्या भागत्रयं तथा ॥ ३८९ ॥

सप्त सप्त स्मृता भागास्तीक्ष्णदाढिमसारयोः ।

द्वाँ भागौ तिनितीकस्य चत्वारश्चाम्लवेत्सात् ॥ ३९० ॥

पद्मभागाः सैन्धवस्योक्तास्तथाऽर्थो हिङ्गुतः स्मृतः ।

निस्तुपानां विड्हानामेको भागः पक्षीर्तितः ॥ ३९१ ॥

तत्सर्वमेकतः कृत्वा सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।

लब्धं दीपनं चेद्रं वातश्लेष्मविकारनुत् ।

रुच्यमन्नेन संयुक्तं केवलं चा हितं तथा ॥ ३९२ ॥

मन्दामौ रुचकाद्यं चूर्णम् ।

रुचकमरिचशुण्डीजीरकैर्मागदृद्धै-

र्धिं दलवणविभागः सैन्धवं चापि सार्धम् ।

कफपवनविकारे शस्यते वातगुलमे

जनयति जटरार्द्धं भोजने चेत्सतकम् ॥ ३९३ ॥

मन्दामौ विहणचूर्णम् ।

अर्धं हिङ्गुपलं पलं सुविमलं सौवर्चलं द्वे पले

प्रत्येकं मरिचाम्लदीप्यलवणाम्भोराशिजातान् क्षिपेत् ।

शुष्ट्याश्च त्रिपलं चतुर्पलमपि स्यादाढिर्मं जीरकं

श्रीमत्सिंहणभूमिपालकथितं सेव्यं सदेदं युधैः ॥ ३९४ ॥

अर्धासि सूरजाद्यं चूर्णम् ।

सूर्यं दहनं क्षारो मरिचं नागरं क्रमात् ।

अर्धार्धकमिदं चूर्णं क्षाराम्लाद्रिकभावितम् ॥ ३९५ ॥

हन्यादर्शीसि शूलं च गुलपमीहोदरकूपीन् ।

भुक्तं भुक्तं पचत्याथु शान्तमग्निं च दीपयेत् ॥ ३९६ ॥  
कातर्गेऽपि दीपयेत् ।

धान्यकाञ्जिकयुता द्रीतकी हिहुर्सैन्धवकणामुपूरिता ।

भक्षिता भवति वातरोगदा हन्यजीर्णपथ च शुधाकरी ॥ ३९७  
विद्यो भूनिम्बादं चूर्णम् ।

भूनिम्बार्घपलं निशापलयुतं दार्ढीः पले द्वे तथा  
दार्ढीर्घेन पुनर्नवां कुरु समां दार्ढीसमः प्रग्रहः ।  
सार्धं दुर्लभया स्मृता तु कदुका योज्या तदर्घेन वै  
षश्माहं निशया समानमृता पादाधिकं स्यात्पलम् ॥ ३९८

एतद्रत्सकसमर्पिसदितं सुशङ्खणचूर्णाकृतं  
वासायाः स्वरसेन भावितमिदं श्रीन् सम वा वासरान् ।  
भूयस्तद्वारिणा प्रमुदितं पेयं पुरःस्ये रवी  
येतद्विद्विरोगिणां विजयकृत् चूर्णं तु गुदोत्तमम् ॥ ३९९ ॥

उत्रे डिगतिचादं चूर्णम् ।

किरातविक्तं त्रिफलापटोलं तिक्तेन्द्रवीजं सुरदारु दार्ढी ।

ब्योपं शटीचन्दनयुग्मनिम्बं दुरालभाचन्दनपद्मकं च ॥ ४०० ॥

पुनर्नवोशीरविपागुह्यचीत्रायन्तिकापिष्पलिमूलतुल्यम् ।

चूर्णं विलिद्यान्मधुनाऽथ वारा तथाऽनुपानं त्वमृतारसो वा ॥ ४०१

ज्वरं पुराणं विनिहन्ति शीर्वं दृतीयकं वा वमिदाहयुक्तम् ।

चातुर्थकं चास्यगतांश्च रोगान् सपीनसं कामलमाथु हन्ति ॥ ४०२  
कासे दुरालभादं चूर्णम् ।

दुरालभां शटीं द्राक्षां शूद्रज्वरेरं सितोपलाम् ।

लिहात्कर्कटवृडीं च कासे तैलेन चातजे ॥ ४०३ ॥

प्रदृशो विष्वदीमूलादं चूर्णम् ।

समूला पिष्पलीं क्षारीं द्वौ पञ्चलवणानि च ।

मातुखङ्गभयाराक्षाशटीपरिचनागरम् ॥ ४०४ ॥

चूर्णं समांशकं कृत्वा पिवेत्यातः सुखाम्बुना ।

शैष्यमेके ग्रहणीदोषे वलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ ४०५ ॥

प्रहृष्टां कुठेरकाय चूर्णम् ।

कुठेरकथामलवति यवानी फलत्रिकं चैव कटुत्रिकं च ।  
 इन्ताकगण्डीरघृपं सनिभ्वं कुष्ठं तथा चेन्द्रयवा विडङ्गम् ॥४०६  
 वीजानि दद्यानिचुलस्य दार्ढी दुरालभा तिक्तकरोहिणी च ।  
 दूर्वोग्रगन्धाऽतिविपा गुहूची किराततिक्तं गजपिप्पली च ॥४०७  
 सर्वाण्युपाहृत्य तु चूर्णमेपां भागांशयुक्तं लबणं द्विरंशम् ।  
 अयोरजः स्यात्रिगुणं च युक्तं फलत्रिकं स्यात्तुरंशयुक्तम् ॥४०८  
 चूर्णाकृतं तद्वत्भाजनस्थं पिवेच मधेन सुखोदकेन ।  
 चूर्णं यथासात्म्यवलानुरूपं श्रीहामिसादारुचिपार्वशूलम् ॥४०९  
 प्रमेहकुप्तानथ पाण्डुरोगं हृद्रोगगुलमं विषमज्वरं च ।  
 भगन्दरं श्वासगदांश्च हन्यात् सुदुस्तरान् वातकफोद्धवांस्तु  
 एतद्विचूर्णं वलमांसकारि होजस्करं रोगगणापहारि ॥४१०॥

शोफे अयोरजश्चूर्णम् ।

कुडवं त्रिफलायास्तु पिप्पलीकुडवं तथा ।

विडङ्गमरिचाभ्यां तु द्वे पले च समावपेत् ॥ ४११ ॥

पलं पलं तु कुर्वति दन्तीचित्रकयोरपि ।

गुहूचीपिप्पलीमूलकुप्तानां च पलं पलम् ॥ ४१२ ॥

शृङ्गवेरपले द्वे तु पञ्च चव्यात्पलानि च ।

शेषपाण्यर्धपलानि स्युर्यानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ४१३ ॥

गोक्षुरकः स्त्यरा रासना मधुकं देवदारु च ।

वचा चातिविपा चैव मुस्तकं कहुरोहिणी ॥ ४१४ ॥

कद्मुकलं सारिवे द्वे च श्यामा भृष्णातकानि च ।

पुनर्नवा त्वचं पत्रे तेजस्वती शतावरी ॥ ४१५ ॥

कुद्रा व्याघ्रनखं चैव मञ्जिष्ठा कृटशालमलिः ।

निचुलं त्रिवृता भार्गी कुटजस्य फलं त्वचम् ॥ ४१६ ॥

एतदौपथसंभारं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।

यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विगुणं स्याद्योरजः ॥ ४१७ ॥

तदेकत्र कृतं शोफी प्रलिहान्मधुसापिंपा ।  
 क्षीरं चानुपिवेदुक्त्या निरन्नः क्षीरसेवनः ॥ ४१८ ॥  
 अयोरजसमित्येतत्ख्यातं सिद्धं रसायनम् ।  
 संवत्सरभयोगेण शतवर्षं च जीवति ॥ ४१९ ॥  
 निहन्ति श्वयथुं चोग्रं वृक्षमिन्द्राशानिर्यथा ।  
 अर्शासि पाण्डुरोगं च मन्दाभिं कृमिकोष्ठताम् ॥ ४२० ॥  
 भगन्दरं च पामां च कुष्टानि किटिभानि च ।  
 यस्मिन् यस्मिन् विकारे हि युज्यते त्वयसो रजः ।  
 तं तं निहन्ति वै रोगं देवारीन् केशवो यथा ॥ ४२१ ॥  
 पाण्डुरोगे निराततिक्तादिलैदम् ।

किराततिक्तं मुख्दारु दार्ढी मुस्ता गुह्यची कटुका पटोलम् ।  
 दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं कटुकिं वह्निफलत्रिकं च ॥ ४२२ ॥  
 विडङ्गकं चैव समांशकानि सर्वैः समं चूर्णमयापि लौहम् ।  
 सर्पिंमधुभ्यां गुटिका विधेयाः सेव्या सदा वै वदरम्पमाणाः ॥ ४२३ ॥  
 निहन्ति पाण्डुं श्वयथुं भ्रमेहं हलीमकं संग्रहणीपदोपम् ।  
 श्वासं च कासं च सरक्तपित्तमर्शासि चोर्वैर्ग्रहमापवातम् ॥ ४२४ ॥  
 प्रवाहिकायां कुटजायं चूर्णम् ।

कुटजत्वगिन्द्रयवान् पाठां मुस्तं रसाञ्जनं शुण्ठीम् ।  
 वालं विल्वमतिविपां कटुकं वै धातकीं समाहृत्य ॥ ४२५ ॥  
 मधुनाऽलोड्य निपीतं तण्डुलपयसा प्रवाहिकां हरति ।  
 अर्शासि गुदे शूलं पित्तरक्तातिसारं च ॥ ४२६ ॥

गुह्ये समशक्ते चूर्णम् ।

त्रिवृचुल्याऽर्धकर्पाणि हिङ्गसौवर्चलत्वचः ।  
 श्रेष्ठाम्लवेतसव्योपं सर्वस्तुल्या तु शर्करा ॥ ४२७ ॥  
 समकं नाम तच्चूर्णं पिवेदुप्णेन वारिणा ।  
 गुलमान् पञ्च सहद्रोगान् कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥ ४२८ ॥  
 शोबे तिभायं चूर्णम् ।  
 तिलकर्कन्धुलाजानां चूर्णं मध्याज्यसंयुतम् ।

मासेन हन्ति शोरं तु क्षीरं स्यादनुपानकम् ॥ ४२९ ॥  
मन्दामौ आमलकादिकूर्णम् ।

धात्रीभागैकमुक्तं च पश्याभागत्रयं तथा ।  
कणाभागत्रयं चैव द्वौ भागौ चित्रकस्य च ॥ ४३० ॥  
भागैकं सैन्धवस्यैतचूर्णपामलकादिकम् ।  
शुधाकरमिदं चूर्णं मन्दामै विनिवारयेत् ॥ ४३१ ॥

मन्दामौ सौवर्चलयं चूर्णम् ।

सौवर्चलं कणा शुण्ठी रामठं जीरकद्वयम् ।  
मरिचं ज्ञाजमोदा च हस्तलवेतसमेव च ॥ ४३२ ॥  
समुद्रं चूर्णं मन्दाश्रिविनिवारणम् ।  
मन्दामौ आमिर्गम् ।

न्धं च विढं क्षारः समांशकम् ॥ ४३३ ॥

तुणा शुण्ठी जीरकं पद्मगुणं तथा ।

च वातमन्दाश्रिवारणम् ॥ ४३४ ॥

मन्दामौ चिह्नचूर्णम् ।

च सामुद्रं मारिचं तथा ।

मन्दामौ गदनिप्रदे ॥ ४३५ ॥

गदनिप्रदे ॥ ४३५ ॥

मन्दामौ गदनिप्रदे ॥ ४३६ ॥

गदनिप्रदे चूर्णाधिकारस्तृतीयः ।

## अथातश्तुर्थो गुटिकाधिकारः प्रारभ्यते ।

—४५०—४५१—४५२—४५३—४५४

जगिमान्गेऽमयाता गुटिका ।

दीरीतकीनां कुदर्वं च्यूपणाच्च पलवयम् ।  
 द्रे पले पिष्पलीमूलाच्छथा चैवाइलेतसात् ॥ १ ॥  
 चविकां चित्रकं धान्यमजाजीं हपुषामपि ।  
 यवानीं चाजमोदं च तिनिठीकं च दाडिमम् ॥ २ ॥  
 सौवर्चलोपकुञ्चयां च पलिकानि प्रदापयेत् ।  
 त्वं गेल्यापत्रकनकं कर्षीशं चात्र दापयेत् ॥ ३ ॥  
 गुदस्य च पलान्यत्र दापयेत्तिगुणानि च ।  
 अभयागुटिका देषपा मन्दस्याग्रेस्तु दीपिनी ॥ ४ ॥  
 वातशोणितमानाहं गुल्मं पश्चविधं तथा ।  
 चतुरो ग्रहणीदोपानशीसि पद्मिधानि च ॥ ५ ॥  
 कासं धर्यं विवन्धं च शूलं हज्जठगश्रयम् ।  
 भक्षिता नाशयत्येषा भोजयं निर्यद्वर्णं स्मृतम् ॥ ६ ॥

अर्थसिं काङ्क्षायतवटकः ।

पश्यापञ्चपलान्येकमजाज्या जीरकस्य च ।  
 पिष्पलीपिष्पलीमूलचब्यचित्रकनागरम् ॥ ७ ॥  
 क्रमेण पलवृद्धं दि यवक्षारपलद्वयम् ।  
 भल्लातकफलान्यष्टी कन्दस्तद्विगुणो मतः ॥ ८ ॥  
 द्विगुणेन गुडेनपां वटकानक्षसंमितान् ।  
 एकैकं भक्षयेत्तातस्तत्रमम्लं पिषेदनु ॥ ९ ॥  
 वहिं संदीपयत्याशु ग्रहणीपाण्डुरोगजित् ।  
 काङ्क्षायनेन शिष्येभ्यः शस्तक्षाराप्रिभिर्विना ॥ १० ॥  
 कथितो वटको देष गुदजानां विनाशनः ।

गुल्मे काङ्क्षावनपुष्टिका ।

शटीं पुष्करमूलं च वहिं लवणपञ्चकम् ।  
 शृङ्गवेरं वचां चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ११ ॥

त्रिष्टुतायाः पलं कुर्यात्रीन् कर्पानय हिङ्गुतः ।  
 यवक्षारपले द्वे च द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ १२ ॥  
 यवान्यजाजिमपरिचं धान्याकं शीतपुष्पकम् ।  
 उपकुञ्चयजमोदे च द्येपामष्टमिकां तथा ॥ १३ ॥  
 मातुलुङ्गरसेनैता गुटिकाः कारयेद्विपक् ।  
 तासामेकां पिवेद्वे वा तिसोऽथ च सुखाम्बुना ॥ १४ ॥  
 अम्लैश्च मद्यैः पातव्या धृतेन पयसा तथा ।  
 एपा काङ्क्षायनेनोक्ता गुटिका गुलमनाशिनी ॥ १५ ॥  
 अशोहृद्रोगशमनी कृमीणां च विनाशिनी ।  
 गोमूत्रयुक्ता शमयेत्कफगुलमं चिरोत्थितम् ॥ १६ ॥  
 क्षीरेण पित्तगुलमं च मधैरम्लैश्च वातिकम् ।  
 त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत्सात्रिपातिकम् ॥ १७ ॥  
 रक्तगुलमे च नारीणामुष्टीक्षीरेण पाययेत् ।  
 गुलमे निकुम्भाया गुटिका ।

निकुम्भरजनीपाठात्रिकदुत्रिफलात्रिकाः ।  
 वाला दृक्षकवीजं च चूर्णं स्यादनबो गुडः ॥ १८ ॥  
 पथ्यया सहितं चूर्णं गवां मूत्रयुतं पचेत् ।  
 घनीभूते वटीं कृत्वा तां तु खादेदभुक्तवान् ॥ १९ ॥  
 गुलमुष्टीहामिसादांस्ता नाशयेयुरशेषतः ।  
 हृद्रोगं ग्रहणीदोपं पाण्डुरोगं च दारूणम् ॥ २० ॥  
 विद्यन्वेभयावटकाः ।

पथ्याकदुत्रिकविडङ्गदलत्वगेलाः  
 सग्रन्थिकाः सचविकामलकाः समुस्ताः ।  
 अष्टां त्रिष्टुतवजटाचरणात्तिभागा  
 दन्त्याथ पहुणसितामधुमोदकाः स्युः ॥ २१ ॥  
 विद्यन्वेदनाय मुकुमारतराः सुहृद्याः  
 मोक्ताः प्रगाढतरविद्विटिकारिणस्ते ।

तावद्विरेचनकरा न भवन्ति याव-

दुष्टं पिवेत् च नरः सलिलं यथेच्छम् ॥ २३

हृद्रोगगुलमगुदजच्ययुपमेह-

पूर्णं द्विष्टिः द्विष्टिः ।

८०५ १८८८ १८८९ १८९० १८९१

नृणां भिपग्निरभयावट्काः प्रदिष्टाः ॥ २४

प एहुरोगे वज्रस्युटिका ।

रोहिणी चिरविलवश्च कुटजश्च फलत्रिकम् ।

मुस्तकं पिपलीमूलं यष्टयादं निम्बनामरम् ॥ २५

पवत्वा कपायेषां तु भावयेच शिलाजतु ।

शिलाजतुपलान्यष्टी तावती सितर्शकरा ॥ २५

वांश्याः कर्कटशूद्रश्चाश्च यागध्याश्च पलं पलम् ।

धात्रीफलपलार्थं च व्याघ्रीमूलत्वचं तथा ॥ २६

पत्रत्वगेला गन्धार्थं दत्त्वा चूर्णानि कारयेत् ।

तं विमर्द्य यथान्यार्थं दद्यान्मधु पलत्रयम् ॥ २७

वर्तयेद्वट्कानेतातुदम्बरफलोपमान् ।

तं विनेत्रं भक्षयेत्कल्ये सानुपानं यथावलम् ॥ २८

विडङ्गरसयुर्पैश्च सुगारिष्टासवादिभिः ।

क्षीरेवा दाढिमाम्लेवा पञ्चाभोजी पिवेत्वरः ॥ २९

स ज्येत्पाण्डुरोगासदुष्टेहगलग्रहान् ।

यक्षमकासांश्च वातादीन् श्वासशोपोदरामयान् ॥

रोगानीकप्रणाशार्थं सृष्टा भगवता पुरा ।

वज्रकेति समाख्याता वटिकेयं महागुणा ॥ ३१

नैव दद्यात्कृतधाय नास्तिकायोद्दताय च ।

इष्टाय संप्रयोक्तव्या व्रात्यणाय विशेषतः ॥ ३२

शूले शम्बूकाया गुटिका ।

पलानि त्रीणि शम्बूकाल्लोहचूर्णात्पलद्रुयम् ।

रसाञ्जनात्पलं चैकं लोहकिट्टात्पुनः पलम् ॥ ३३

शर्करां च समां सर्वेषां भुना च परिषुताम् ।  
 सर्वमेतत्समाहृत्य मोदकान्कारयेद्दिपक् ॥ ३४ ॥  
 तान् भक्षयेत्तमयवेन शुले गुल्मे हृदायये ।  
 पत्तिशूले विशेषेण शोफे पाण्डदरे भ्रमे ॥ ३५ ॥  
 कासे कृच्छ्रे च दुर्नाम्नि प्रमेहाऽभरिष्टदिषु ।  
 अग्निमान्धे स्मृतिभ्रंशे पीनसार्थवभेदके ॥ ३६ ॥

कल्याणवटकाः ।

विद्वङ्गं पिप्पलीमूलं त्रिफलाधान्यचित्रकाः ।  
 परिचेन्द्रयवाजाजीपिप्पल्यः श्रेयसी तथा ॥ ३७ ॥  
 लबणान्यजमोदा च चूर्णितं कार्पिकं पृथक् ।  
 तिलतैलं त्रिष्टूर्णं भागा चाषपलोन्मितौ ॥ ३८ ॥  
 धात्रीरसस्य प्रस्थांस्तीन् गुडस्यार्धतुलां तथा ।  
 पवत्वा मृदग्निना खोदेदुत्तार्येदुम्बरोपमान् ॥ ३९ ॥  
 गुडान् कृत्वा न चात्र स्याद्विहाराचारयन्नणा ।  
 मन्दाधित्वं ज्वरं मूल्छर्द्दीं मूत्रकृच्छ्रमरोचकम् ॥ ४० ॥  
 अस्वप्नं च यकृच्छूलं कासं शोषं गरं विपम् ।  
 कुष्ठार्शःकामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥ ४१ ॥  
 ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च हन्तुः पुंसवनाश्च ते ।  
 कल्याणका इति ख्याताः सर्वेष्टुपु यौगिकाः ॥ ४२ ॥

क्षतक्षणे एलादा गुटिका ।

एलापत्रात्वचोऽर्धाक्षाः पिप्पल्यर्धपलं तथा ।  
 सितामधुकखर्जरमृदीकाश्च पलोन्मिताः ॥ ४३ ॥  
 संचूर्ण्य मधुना युक्त्या गुटिकाः संमकल्पयेत् ।  
 अक्षतुल्यां ततश्चैकां भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ ४४ ॥  
 कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छद्मि मूल्छर्द्दीं मदं भ्रमम् ।  
 रक्तनिष्ठीविनं तृष्णां पार्वशूलमरोचकम् ॥ ४५ ॥  
 शोषपृष्ठीहाहृत्यवातांश्च स्वरभेदं तथा क्षयम् ।  
 गुटिका तर्पणी वृप्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥ ४६ ॥

शुद्धिर्वित्तम् ।

विदाती च यता इन्द्रा पश्यूनी पुनर्नवा ।  
पश्यानां शीरद्वक्षाणा शृङ्गा मुष्टयेशक अपि ॥४७ ॥  
एषां कामाये द्विःसोर्य विदाया स्वरूपांशके ।  
जीवनीयः पशेन दर्शकरसमार्चिर्वृतादाम् ॥४८ ॥  
मितापन्नानि पूर्वमित्यज्ञाने द्वार्थित्रशारंपन् ।  
गांधृष्मणिष्यन्तांशग्निर्ज शृङ्गाद्यकस्य च ॥४९ ॥  
गत्सोद्वं शुद्धां शांतं तन्मर्वं नजगृन्दितम् ।  
स्वानं गर्विगुदान कृत्या भूमिपंत्रण घेष्येत् ॥५० ॥  
तादुन्नया पलिकान्तीरं मयं चादुपिषेत्कर्म ।  
शोप कांसं सतशीणं श्रमस्त्रीभारकर्मिते ॥५१ ॥  
रक्तनिष्ठोवनं तापि पीनमे चोरसि क्षने ।  
सस्ता पार्थिविरःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः ॥५२ ॥

पाण्डुरोगे मण्ड्रवटकः ।

मरिचं पश्योलं च देवदारु फलभिकम् ।  
विडङ्गमुस्तं तुल्यानि भागांस्तु पलसांमिनान् ॥५३ ॥  
यावन्त्येतानि गृणानि मण्डरं द्विगुणं तनः ।  
पवत्त्वाऽष्टगुणिते मूत्रं शनीभूते तदुद्धरेत् ॥५४ ॥  
वटकानस्मात्रांस्तु पिंवत्तक्रेण तक्रमुक् ।  
पाण्डुरोगं जयत्येप मन्दापित्वपरोचकम् ॥५५ ॥  
अशांसि ग्रहणीदोषशोफमूत्रहस्तीमकम् ।  
कृमिं श्रीदानमुदरं हृद्रोगं चाशु नाशयेत् ॥५६ ॥  
मण्ड्रवटका वेते रोगानीकप्रणादानाः ।  
पाण्डुरोगे द्वितीयो मण्ड्रवटकः ।

ब्यूपणं चिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ॥५७ ॥  
दावीत्यव्याक्षिको धारुण्णन्यिकं देवदारु च ।  
एषां द्विपलिकान् भागांशूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक् ॥५८ ॥

मण्डर द्विगुणं चूर्णचुद्धमज्जनसनिभम् ।  
 मूत्रमष्टगुणं कृत्वा तस्मिंश्च पक्षिपेत्ततः ॥ ५९ ॥  
 शनैः सिद्धे ततः शीताः कार्याः कर्पसमा गुडाः ।  
 यथामि भक्षणीयास्ते पूर्वपाण्डुमयापहाः ॥ ६० ॥  
 ग्रहण्यशांतुदर्थैव तक्वाव्याशिनः स्मृताः ।  
 शोधे शारगुटिका ।

क्षारद्रयं स्याछ्वणानि चत्वार्योरजो व्योपफलत्रिके च ।  
 सपिष्पलीमूलयिद्वज्जसारं मुस्ताजमोदामरदारुविलवम् ॥ ६१ ॥  
 कलिङ्गं चित्रकमूलपाठे यष्ट्यादयं सातिविपं पलांशम् ।  
 सहिङ्गुकर्पे त्वणु शृङ्कचूर्णं द्रोणं तथा मूलकशुष्ठिकानाम् ॥ ६२ ॥  
 स्याद्वस्मनस्तत् सलिलेन साध्ययालोऽच्य यावद्वनमप्रदग्धम् ।  
 वर्ठी ततः कोलसमानमात्रां कृत्वा सुशुष्कां विधिना तु युज्यात् ॥ ६३ ॥  
 पूर्वोदरश्वित्रहलीमकार्शः पाण्डुमयारोचक्षोपशोफान् ।  
 विशूचिकागुलमगराश्मरीश्च सञ्चासकासाः प्रणुदेत्सङ्गुणाः ॥ ६४ ॥

कुषे माणिभद्रवटकः

विद्वज्जसारामलकाभयानां पलं पलं स्यात्रिवृत्तापलानि ।  
 गुडस्य च द्वादश एष योगो मासेन विंशहृष्टिकोपयोगः ॥ ६५ ॥

इयं हि कुषुज्वरगुलमपाण्डुता-  
 भगन्द्रश्वासगरोदराश्वसाम् ।

प्रणाशनी यक्षपतिः स्वयं ददौ  
 स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे ॥ ६६ ॥

कुषे माणिभद्रवटकः ।

विद्वज्जामलकं पथ्या पलांशं तत्समा त्रिवृत् ।  
 गुडं तु द्विगुणं दत्त्वा वटकांस्तिशदाच्चरेत् ॥ ६७ ॥  
 कुषानि पिङ्कार्शांसि कृमिगुलमोदराणि च ।  
 कासं व्यासं च शमयेद्विशेषान्माणिभद्रकः ॥ ६८ ॥

अर्शसि सूरजवटकाः ।

पोडश मूरणभागा वद्देराणीं महापथस्यापि ।

अर्थेन भागयुक्तिर्मरिचस्य नतोऽपि चार्थेन ॥ ६९ ॥

त्रिफला कणा समूला तालीसारुप्करकृपित्रानाम् ।

भागा महापथसमा दद्दनांशा तालमूली च ॥ ७० ॥

भागः मूरणतुल्यो दातव्यो दृद्ददारुकस्यापि ।

भृङ्गले मरिचांशे चूर्णेऽस्मिन्योजयेन्मतिमान् ॥ ७१ ॥

द्रिगुणेन गुडेन युनः सेव्योऽयं भोदकः प्रकामधनः ।

गुरुत्व्यभोज्यशहितेष्वितरेष्वपद्रवान्कुमते ॥ ७२ ॥

भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ।

भीमस्य मास्तेरपि येन ते महाशना जाताः ॥ ७३ ॥

अग्निवलवृद्धिदेहर्तुर्न केवलं सूरणो महावीर्यः ।

प्रभवति शस्त्रारायिभिर्विनाऽप्यर्थसामेषः ॥ ७४ ॥

शययुक्तीपदगरजिद्युर्हर्णी च कफानिलाज्जाताम् ।

नाशयति वलीपलितं मेघां कुरुते दृपत्वं च ॥ ७५ ॥

हिकां कासं श्वासं सराजयक्षमप्रमेहं च ।

श्वीहानमप्यथोग्रं हन्ति च रसायनं पुंसाम् ॥ ७६ ॥

अर्शसि लघुमूरणवटिश ।

चूर्णकृताः पोडश मूरणस्य भागास्ततोऽर्धा नवचित्रकस्य ।

महोपधाद्वौ मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी ॥ ७७ ॥

अशोरेगे मरिचाद्या गुटिका ।

मरिचपिप्पलिनागरचित्रकान्

क्रमविवर्धितभागसुचूर्णितान् ।

शिखिचतुर्गुणमूरणयोनितान्

कुरु गुडेन गुडान् गुदजच्छिदे ॥ ७८ ॥

अर्शसि कलिहाद्या गुटिका ।

कलिङ्गलाङ्गलीकृष्णायष्ट्यपामार्गपिप्पली- ।

भूनिम्बसैन्धवगुडीरुडा गुदजनाशनाः ॥ ७९ ॥

गुल्मे गुडवटकाः ।

गुडविश्वैपधपथ्यामागधिकादाडिमैः कृता गुटिकाः ।  
विनिहन्ति भक्ष्यमाणा गुल्मार्णेव हिसादगदान् ॥ ८० ॥

आतिसरेऽभवाद्या वटकाः ।

अभयागुडपिष्पल्यः समांशा वटकीकृताः ।

भक्षिता हन्त्यतीसारमर्शः पाण्डुमयज्वरान् ॥ ८१ ॥

सर्वातिसारेऽद्वौलवटिका ।

पलमङ्गोलमूलस्य पाठां दार्ढां च तत्समाम् ।

पिष्टा तण्डुलतोयेन वटिकामक्षसंमिताम् ॥ ८२ ॥

छायाशुष्कां पिवेत्क्षिप्रं पिष्टा तण्डुलवारिणा ।

वातपित्तकफमायान् द्रन्दजान् सान्निपातिकान् ॥ ८३ ॥

हन्यात्सर्वातिसारांस्तु वटिकेयं प्रयोजिता ।

सर्वातिसारे वृद्धद्वौलवटिका ।

सदार्ब्धङ्गोलपाठानां मूलं तु कुटजस्य च ।

शालमलेरथ निर्यासो धातकीरोधदाडिमम् ॥ ८४ ॥

पिष्टाऽक्षसंमितान् कृत्वा वटकांस्तण्डुलाम्भसा ।

तत्स्तु मधुसंयुक्तमेकैकं प्रातस्त्वितः ॥ ८५ ॥

पिषेदत्यन्तमापनो विधिसर्गेण मानवः ।

अङ्गोलवटका नाम्ना सर्वातीसारनाशनाः ॥ ८६ ॥

आतिसारे क्षुद्राद्या गुटिका ।

पलानि दश कद्गङ्गाद्वे पले पद्मकत्वचः ।

स्थिराया विल्वपेश्याश्च पलान्यष्टौ पृथक् पृथक् ॥ ८७ ॥

कदुकादाज्ञाशिरोधयष्ट्याद्यमुस्तकान् ।

कालीयकं नखं चैव हारिद्रारक्तचन्दनम् ॥ ८८ ॥

करञ्जफलचूतास्थिदाडिमत्वग्नितुलकाः

केतकयर्जुनपुष्पाणि वल्कान्यक्षमियालयोः ॥ ८९ ॥

समङ्गा शालशीजानि ग्रन्थ्यं चाप्यरिमेदतः ।

फलस्य, वत्सकफलं संक्षुद्य पलसंमितम् ॥ ९० ॥

द्विग्रोणं पिष्ठेदम्भः पूत्वा काथं पचेदनु ।  
 पिण्डप्रसासयं तस्माद्गतमादाय चुदिमान् ॥ ९१ ॥  
 कारयेद्गुटिकां शृङ्खणां ग्रसतोऽधीं मुख्याम्बुना ।  
 अदृशते लसंपुक्तां कफपित्तानिलातिषु ॥ ९२ ॥  
 केवले सभिपाते च तत्सनकं पिष्ठेदनु ।  
 तक्रेणवानुभुञ्जीत नरोऽनीसारणीदितः ॥ ९३ ॥  
 मृत्युपाशान् जयेद्गुटिकामियं सम्यक् प्रयोगिता ।  
 अतिसारसमुत्थानं मृत्युमप्यागतं जयेत् ॥ ९४ ॥  
 प्रहृया । वथदाया गुटिका ।

चित्रकं पिष्ठलीमूलं द्रीं शारी लवणानि च ।  
 व्योपं हिङ्गवजपौदं च चव्यं चिकब्र चूर्णयेत् ॥ ९५ ॥  
 गुटिका मातुनुद्रस्य दाढिमस्य रसेन वा ।  
 कृता विपाचयत्वामं दीपयत्वाग्यु चानलम् ॥ ९६ ॥  
 प्रदण्डी शारगुटिका ।

द्वे पथमूल्यां त्रिहृता निकुम्भा पाठा वचास्फोटवलाथ रामा ।  
 सकारवीचित्रकमर्कमूलं पृथक् पृथक् तानि पर्लेदशार्लयैः ॥ ९७ ॥  
 भस्मीकृतान्यम्भसि गालयित्वा पचेत्तुलां जीर्णगुडस्य सम्यक् ।  
 द्वे पथमूल्यां यवशूक्वजं च ज्ञारं तथा स्वर्निकसंक्षिकं च ॥ ९८ ॥  
 व्योपं वचां चैव हरीतकीं च पृथक् पलानां सह चित्रकेण ।  
 हिङ्गम्लभुत्तातकमस्तुल्यं विपाचयेत्क्षारगुडं पथावत् ॥ ९९ ॥  
 नतोऽक्षमात्रा गुटिका प्रयोज्या कायाद्विदीनैरस्वलैर्नैश्च ।  
 सश्लेष्मकासाश्चिगुल्मद्दी कफथ कण्ठोरसि यस्य तिष्ठेत् ॥ १०० ॥  
 गुष्ठपेदान् श्ववशुं च हन्याद्वातामयमुष्टीहयकृद्वांथ ।  
 अत्र हि भुक्तं जरयेच शीघ्रं युक्तो रसैः क्षारगुडप्रयोगः ॥ १०१ ॥  
 तालीसाया गुटिका ।

मरिचं चव्यतालीसे पलाधीशानि नागरात् ।  
 अध्यर्थं पिष्ठलीमूलातिप्पल्याथ पलं पलम् ॥ १०२ ॥

कर्प तु नागपुष्पस्य त्रुटीकर्पार्धमेव च ।  
 त्वकपत्रोशीरकर्पस्तु चूर्णात्रिगुणितो गुडः ॥ १०३ ॥  
 गुटिका दृक्षमात्रा च मद्यपूपपयोरसैः ।  
 पीताऽभ्यसाऽथवा शातः सर्वान् हन्याद्वदोद्भवान् ॥ १०४  
 शूलं पानात्ययं छदिं प्रमेहं विप्रमज्वरान् ।  
 गुल्मं पाण्डुरुजं गोफं हृद्रोगं ग्रहणीगदान् ॥ १०५ ॥  
 कासहिकारुचिश्वासवृम्यतीसारकामलाः ।  
 भूत्रकृच्छ्रं च मन्दामिं हन्याच्छोफं च सा भृशम् ॥ १०६  
 एतदेव भवेत्तृणं सिताचूर्णचतुर्गुणम् ।  
 सपित्तेषु विकारेषु विशेषेणामृतोपमम् ॥ १०७ ॥  
 सा चैव गुटिका पथ्याफलत्रयविशेषिना ।  
 शोफाशेऽग्रहणीशोपपाण्डुशूलापहारिणी ॥ १०८ ॥  
 अथर्वे मरीचादिवटिका ।  
 मरीचपत्रतालीसचविकानां पलं पलम् ।  
 कृष्णातन्मूलयोद्दें द्वे पले शुष्टीपलत्रयम् ॥ १०९ ॥  
 चानुर्जातमुशीरं च कर्पाशं शूक्ष्मचूर्णितम् ।  
 तत्र त्रिंशत्पलं दद्यात्कथिताद्भलाद्वाद् ॥ ११० ॥  
 मरीचवटका द्वेते क्षयग्ना दीपिनाः परम् ।  
 अथवाद्या गुटिका ।  
 पलार्धं तु लवज्जस्य तालीसत्रुटिवल्कलम् ॥ १११ ॥  
 यवानीचव्यकाजाजीधान्यकं च पलोन्मितम् ।  
 द्विपलं मारिचं कृष्णा दृक्षाम्लं साम्लवेतसम् ॥ ११२ ॥  
 कृष्णायाश जटा शुष्टी पथ्या च कुट्ठोन्मिता ।  
 एतत्सर्वं समाहृत्य त्रिगुणेन गुडेन तु ॥ ११३ ॥  
 ततोऽर्थपलिकाः कार्या गुटिकास्तु भिपन्नरैः ।  
 वटीमेकां ततः खादेन्मद्यतकरसासर्वैः ॥ ११४ ॥  
 भक्षिता येन तस्यार्थःपाण्डुहृत्पार्थशूलनुत् ।  
 कासशूलमारुचिश्वासहिकामयगलग्रहान् ॥ ११५ ॥

ज्वरगतिसारं तन्द्रां च सेविना हन्ति वेगतः ।

शुष्ठे गुरुरात्मिष्टिपद्मः ।

हरीतकी कम्भिद्वार्णं पयोल्फलपुष्करम् ॥ ११६ ॥  
 याकुन्ही राजद्युसम् वद्धयक्तमूलमेव च ।  
 आवत्तेकोफलं चैव भागवृद्धया यथोत्तरम् ॥ ११७ ॥  
 यावन्त्यमूर्णि तुल्यानि तुवगस्थां च संभवा ।  
 भजा खट्टिरमंमिद्वा गोमूत्ररुथिता पुनः ॥ ११८ ॥  
 एषिः कर्पमिनां सर्वं गुटिकां कारणेद्विष्ट ।  
 प्राद्यनामनु गोमूत्रं पिवेचापि पलद्वयम् ॥ ११९ ॥  
 जीर्णडवरे ज्वरक्षणे धृतमुष्णोदनं भंजत् ।  
 गसाद् निलंबनं निष्पावकद्वृत्तेवनम् ॥ १२० ॥  
 नकानुपानं मासं च तत्परं मवभुग्मेवत् ।  
 ज्येष्ठाराम्लवर्जीं च सर्वं कृष्णानि मानवः ॥ १२१ ॥

शुष्ठे यदिरादयोद्देश ।

खदिराद्रीजकानिम्बात्कुटजात्तालसारतः ।  
 पञ्चाशत्पलिकान् भागान् गोमूत्रस्यादकद्रयम् ॥ १२२ ॥  
 जलद्रेणद्रये चापि सुगुर्मं दिवसान् दश ।  
 दशरात्रस्थितं ततु कपायमनुसाधयेत् ॥ १२३ ॥  
 अध्यधीढकशेषं तु पुनरमावधिश्रयेत् ।  
 चूर्णोऽकृतान्ययेमानि भेपजान्यत्र दापयेत् ॥ १२४ ॥  
 वरां भछात्कं चैव चिडङ्गानि वचां तथा ।  
 नित्रकावल्युजौ चैव भागान् दशपलांशकान् ॥ १२५ ॥  
 काकमात्यास्तु मूलानि पलानां पञ्चविंशतिम् ।  
 घनीभूतं तु तं झात्वा गुटिकां कारणेद्विष्ट ॥ १२६ ॥  
 तां भक्षयेत् कुम्हार्तः पञ्चभोजी जितेन्द्रियः ।  
 कृष्णानि नाशयत्येषा छिन्नाभ्राणीव मारुतः ॥ १२७ ॥

कुषे विष्णुटिकाः ।

त्रिफलाव्योपयष्ट्याहविपं तुल्यानि पेपयेत् ।  
भृज्ञम्बुना चटी कार्या छक्षणा चणकसंमिता ॥१२८॥  
एकैकां वर्धयेद्वावदप्लावस्मान् वर्धयेत् ।  
आस्तिकेन कृतो योगो विजयेद्वात्जान् गदान् ॥१२९॥  
अशीतिं विंशतिं श्रेष्ठं भवान्सस्त महाक्षयान् ।  
अष्टादशैव कुषानि सन्नमग्नि च दीपयेत् ॥ १३० ॥

कुषे लाङ्गोलिगुटिका ।

लाङ्गलीत्रिवृतालोहचूर्णं दत्त्वा पलं पृथक् ।  
त्रिंशतु गुटिकाः पथ्याः कार्या भृज्ञरसपुताः ॥ १३१ ॥  
छायाशुष्कां च तत्रार्थी गुटिकां भक्षयेत्ततः ।  
जीर्णे रेसन रुक्षेण पेया पूर्वं ने भोजयेत् ॥ १३२ ॥  
यत्रितो ब्रह्मचर्याद्यैः क्रमेण गुटिकामपि ।  
खादेत्प्रातस्तु मासेकं भवेत्कामचरः क्रमात् ॥ १३३ ॥  
एवं सर्वाणि कुषानि जयत्यतिवलान्यपि ।  
धीमेधास्मृतियुक्तस्तु नित्यं जीवेत्समाः शतम् ॥१३४॥

कण्डा त्रिजातगुटिका ।

त्रिजातत्रिफलाव्योपं मूलमचूर्णं तु कारयेत् ।  
तत्तुल्यं त्रिवृताचूर्णं शर्कराक्षीद्रेमेव च ॥ १३५ ॥  
बद्धाऽज्ञ मोदकानेपां भक्षयेच यथावलम् ।  
विरेकः प्रदले हेष तथा कण्डविनाशनः ॥ १३६ ॥

मुखरोगे यदिसगुटिका ।

तुलां खदिरसारस्य द्विगुणां त्वरिमेदतः  
प्रक्षालय जर्जरीकृत्य चतुर्दोषेऽम्भसः पचेत् ॥ १३७ ॥  
द्रोणशेषं कपायं तु पृत्वा भूयः पचेच्छनैः ।  
ततस्तस्मिन्धनीभूते चूर्णं कृत्वाऽक्षभागिकम् ॥ १३८ ॥  
घन्दनं पद्मकोशीरं मञ्जिष्ठाधातकीघनम् ।

प्रपौण्डरीकयष्ट्यादत्वेगेलापवकेसरम् ॥ १३९ ॥  
 लाक्षां रसाअनं मांसीत्रिफलारोधवाङ्कम् ।  
 रजन्या फलिनीमेल्लां समक्षां कट्टफलं वटम् ॥ १४० ॥  
 यवासागरुपत्तहैरिकाअनमावपेत् ।  
 लवहजातिकझेलजातीकोशान् पलोन्मितान् ॥ १४१ ॥  
 कर्षूरकुडवं चापि पुनः शीतेऽवतारयेत् ।  
 ततस्तु गुटिकाः कार्याः शुष्कास्त्वास्ये निधापयेत् ॥ १४२ ॥  
 तेलमेतेन कल्केन कपायेण विपाचयेत् ।  
 शूलमयलविभ्रंशदां पिर्यकृमिदन्तनुत् ॥ १४३ ॥  
 जाढयदीर्गन्ध्यतिक्त्वमुखमेहेदपाकजित् ।  
 गलशोपपरीदाहसादसंदोहेपहृत् ॥ १४४ ॥  
 दन्तास्यगलपाकेपु सर्वेष्वेतत्परायणम् ।  
 मुखरोगे द्विनीश खदिगुटिका ।  
 खदिरस्य तुलां शुद्धां जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १४५ ॥  
 अष्टभागेऽवशिष्टे तु पुनः कल्कं प्रदापयेत् ।  
 जातीकर्षूरपूर्गानि सकङ्कोलफलानि च ॥ १४६ ॥  
 इत्येषां गुटिका कार्या मुखसौभाग्यवर्धनी ।  
 दन्तोष्टमुखरोगेषु जिह्वाताल्वामयेषु च ॥ १४७ ॥  
 मुखरोगे तुलीया खदिगुटिका ।  
 तुलीया खदिगुटिका ॥ १४८ ॥ ने तुल्यानि ।  
 सम्यक् ॥ १४८ ॥ सम्यक् ॥ १४९ ॥ सम्यक् ॥ १५० ॥  
 पञ्चाशत्खदिरस्य भागाः संसेव शशधरस्यापि ।  
 सहकारतैलयुक्ता खदिरगुटिकाऽस्यरोगनी ॥ १५१ ॥  
 गठरोगे भरिचाला गुटिका ।  
 मरिचं पिपली पाठा यवक्षारः सनागरः ।  
 एलापवत्खचं पथ्या सैन्धवं चाम्लघेतसः ॥ १५० ॥  
 मधुना गुटिका देपां कण्ठरोगविनाशिनी ।

गलरोगे पिण्ड्यादिकारतुटिका ।

कर्पमेकं तु पिण्ड्या परिचानां तथैव च ।

दाढिमस्य पलार्धं च गुडस्य च पलद्यम् ॥ १५१ ॥

यवक्षारार्धकर्पे च गुटिकां कारयेद्विपक् ।

मुखेन धारिता हन्ति कासश्वासगलामयान् ॥ १५२ ॥

वकरोगे वसनाभाषा गुटिका ।

वसनाभवल्लयुगं पद्मवल्लास्त्रित्रिकदुकचूर्णस्य ।

चित्रकवल्लद्वितयं पिण्डलीभूलस्य वल्लयुगम् ॥ १५३ ॥

अभया द्वादशवल्ला द्वादशद्विगुणा च गुगुलीवल्लाः ।

गुटिका धार्या वदने क्षणदायां कफविनाशार्थम् ॥ १५४ ॥

त्रिकदुकाद्या गुटिका ।

त्रिकदुत्रिफलादुरालभाद्रिनिशादारुवचाः सचित्रकाः ।

रसगन्धककर्कटादया रुचककद्वलहिङ्कुपत्रिकाः ॥ १५५ ॥

इति दर्शितभेषजैर्गुटी मधुना कर्पमिता कृता नृणाम् ।

पणिहन्ति निषेविता प्रगे पवनासूक्कफकोपजामयान् ॥ १५६ ॥

भार्यादिगुटिका ।

भार्गी सकृष्णा द्विनिशेन्दुकान्तापथ्याविभीतत्वचकुम्भविष्वाः ॥

कन्यारसेनापि गुटिर्विधेया सश्वासकासामरुचिं निहन्ति १५७

ज्वरे विवृतयो मोदकः ।

त्रिवृतापिण्डलीयुक्तो गुडसर्पिविभावितः ।

मण्डानुपानो देयोऽयं मोदकः सन्निपातहा ॥ १५८ ॥

कर्मिष्टकाद्यो मोदकः ।

कर्मिष्टकत्रिवृत्कृष्णापथ्यानागरकैरपि ।

सितागुडयुक्तो हेष मोदको ज्वरिणो हितः ॥ १५९ ॥

शीतानुपानतंश्छादितृष्णापित्तामयान् जयेत् ।

त्रिकदुकाद्यो मोदकः ।

त्रिवृतार्धवराज्योपशर्करागुडसंयुतम् ॥ १६० ॥

मोदकं भक्षयित्वा तु पिवेच्चोष्णं जलं पुनः ।  
पार्वथशूलेऽहचौ कासे ज्वरे चानिलसंभवे ॥ १६१ ॥  
ज्वरे सप्तलादो मोदकः ।

सप्तला पिप्पलीमूलं श्यामा दन्ती पृथक्पृथक् ।  
एषां दशपलान् भागान् दशमूल्यास्तुलां तथा ॥ १६२ ॥  
हरीतक्यक्षधात्रीणां प्रस्थं प्रस्थं समावपेत् ।  
जलद्रोणद्रये पक्कं पूतं पादावशेपितम् ॥ १६३ ॥  
विड्हङ्गं मुस्तकं श्यामां शङ्खिनीं मालंतीमपि ।  
त्रिवृद्गोपयुतं देतल्कृत्वा चूर्णं रसे क्षिपेत् ॥ १६४ ॥  
बटकानक्षमात्रांस्तु वातश्लेष्यकृते ज्वरे ।  
शूले पक्काशयस्थे च शुद्धचर्ये भक्षयेदिमान् ॥ १६५ ॥  
अमे कृष्णादा गुटिका ।

कृष्णाशुण्ठीशताहानामभयानां पलं पलम् ।  
गुडस्य पद्पलान्येषां गुटिका अमनाशिनी ॥ १६६ ॥  
ज्वरेतिसारे कटुकादा बटकाः ।

कटुकविल्वजम्बवाम्रकपित्यं सरसाञ्जनम् ।  
हीवेरं च निशे लाक्षां कदफलं शुकनासिकाम् ॥ १६७ ॥  
रोधं मोचरसं शङ्खं धातकीं बटशुद्धकान् ।  
पिष्टा तण्डुलतोयेन बटकानक्षसंमितान् ॥ १६८ ॥  
छायाशुष्कान्निवेत्क्षप्रं ज्वरातीसारशान्तये ।  
शमनान् रक्तपित्तस्य शूलातीसारनाशनान् ॥ १६९ ॥  
शिंहोदरे रोहितकबटकाः ।

भागाः पञ्चदशाथ कोलकभवा रोहीतकस्य द्रव्यः  
पञ्चपायाद्वय एव तद्विगुणितं संयोज्य सिंद्धं गुडम् ।  
चातुर्जातकंभागसंगमूरभीनश्चनरो मोदकान्  
श्रीहार्षः भयथूदरज्वरमीन् गुलमामिसादाङ्गयेत् ॥ १७० ॥

१ ‘नोलिनीमपि’ इति पा० । २ ‘शुद्धं’ इति पा० ।

गुडपाकनिधिः ।

यदा दर्वीपलेपः स्याद्यावद्वा तन्तुली भवेत् ।

तोयपूर्णे यदा पत्रे क्षिप्तो न पुवते गुडः ॥ १७१ ॥

क्षिप्तोऽप्यु निश्चलस्तप्रेत्पतितश्च न शीर्यति ।

एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तिः ॥ १७२ ॥

सुखमर्यः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः ।

पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ १७३ ॥

धातुक्षये महाकल्याणको गुडः ।

पिष्ठलीं पिष्ठलीमूलं चित्रकं हस्तिपिष्ठलीम् ।

धान्यकं च विडङ्गानि यवानी मरिचानि च ॥ १७४ ॥

त्रिफलां चाजपोदां च नीलिनीं जीवकं तथा ।

सौवर्चलं ससिन्धूत्थं सामुद्रं चौद्दिदं वचाम् ॥ १७५ ॥

आरम्बधं त्वचं पत्रं सूक्ष्मैलामुपकुञ्जिकाम् ।

नागरेन्द्रयवांश्चैव गृहीयात् कर्पभागिकान् ॥ १७६ ॥

मृद्गीकायाः प्रधानाया दद्यात्पलचतुष्टयम् ।

त्रिवृतायाः पलान्यष्टौ रसमामलकस्य च ॥ १७७ ॥

प्रस्थं द्विगुणितं कृत्या शर्नेमृद्गमिना पचेत्

यदा पकं विजानीयांत्तदेनमवतारयेत् ॥ १७८ ॥

उदुम्बरेण धात्र्या वा वदरेणाथ वा समम्

यथावलं प्रयुक्तीत समीक्ष्य मतिमान् भिषक् ॥ १७९ ॥

सर्वांश्च ग्रहणीदोपान्वपेहांश्चैव विशतिम्

अर्शांसि वातगुलमांश्च कुण्ठानाहभगन्दरम् ॥ १८० ॥

उरोधातं प्रतिद्यायं हृद्रोगं चैव नाशयेत् ।

पातुक्षीणे वलक्षीणे क्षीभिः क्षीणे क्षये तथा ॥ १८१ ॥

ज्वराणां चैव सर्वेषां वन्ध्यानां चापि पुत्रदम् ।

रूपोदायं स्वरौदायं मेधामाविन्दते स्थिराम् ॥ १८२ ॥

महाकल्याणको धोप रसायनमनुच्चमम् ।

ग्रहण्या कल्याणको गुहः ।

कृष्णात्वग्रन्थिकं वह्नि दीप्यकोपणसैन्धवम् ।

कृमिग्रन्थिकलाधान्यकोलाजायजमोदकाः ॥ १८३ ॥

पलिकानि विवृच्छूर्णतैलयोश्च पलाष्टकम् ।

रसप्रस्थव्रयं धात्र्या गुडस्यार्धशतं क्षिपेत् ॥ १८४ ॥

एतत्कल्याणको नाम ग्रहणीपाण्डुजित्परम् ।

ग्रहण्या यवान्यादा गुटिका ।

यवानी धान्यकं विलं चविकात्रुटिवल्कलम् ।

अम्लवेतसृक्षाम्लं त्रिफला शिखिग्रन्थिकम् ॥ १८५ ॥

सौवर्चलं सैन्धवं च हपुपा च हरीतकी ।

यष्टिका सातला स्पृका पलमानानि चूर्णयेत् ॥ १८६ ॥

गुडस्य तु पलान्यत्र दापयेद्विगुणानि तु ।

यवानीगुटिका हेपा ग्रहणीनाशनी परा ॥ १८७ ॥

चन्द्रप्रभा गुटिका ।

कीटघ्नेभकणाग्निमागधिजटामुस्ताशटीताप्यकं

भूनिम्बत्रिफलामुराहचविकाव्योपं वचा धान्यकम् ।

रात्रीयुग्मविपात्रिवृद्धिलवणं क्षारविजातान्वितं

कर्पे कर्पमतः पुराद्वापलं श्वेतेयकाष्ठान्वितम् ॥ १८८ ॥

लोहात्तत्र सिताचतुर्प्पलयुतं स्याद्रशजायाः पलं

हन्त्यशीसि पटेव गुलमपजयं शोपं क्षये कामलाम् ।

नाढीमर्मगदाङ्गलोदररुमो दीर्घज्वरान्विदधीन्

यक्षमाणं सभगन्दरं कफपरुतित्तोद्धवं पाण्डुताम् ॥ १८९ ॥

तं तं व्याधिसमूहशुकविवृत्तीन्यन्ध्यसुदृशीपदान्

मेहाद्वचुकविनाशमरिलमस्त्वन्यांश्च देहस्थितान् ।

व्याधीन्दन्ति ददाननेन विधिना चन्द्रप्रभा सेविता

मन्दाम्रः परमं प्रदीपनमियं कुर्याज्जरां जर्जराम् ॥ १९० ॥

१ 'कृष्ण द्वे ग्रन्थिकाः' इति १० ।

स्वेच्छाहारविधौ च पानविषये शीतातपे मैथुने  
भुक्ता नास्ति विरोधिनी च सततं प्रोक्ता पुरा ब्रह्मणा १९१  
पिते कल्याणका गुटिका ।

द्राक्षां नियोज्य विधिना द्विगुणां शिवायाः  
संचूर्ण्य हक्षफलमात्रमितां प्रभाते ।

कल्याणकारककृतां गुटिकामिमां यः

संसेवते भवति तस्य हि पित्तनाशः ॥ १९२ ॥

हृद्रोगरक्तविषयमज्वरपाण्डुवान्ति-

कुष्ठानि कासपिटिकारुचिमेहमुख्याः ।

आनाहगुल्मगरविद्रूपिकामलाद्याः

सर्वेऽपि ते विलयमाशु सुखेन यान्ति ॥ १९३ ॥

अर्द्धसिं प्राणदा गुटिका ।

त्रिपलं शूद्रवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च

पिप्पल्याः कुडवार्धं च चविकापलमेव च ।

पलं ताळीसपत्रस्य पलार्धं केशरस्य च

द्वे पले पिप्पलीमूलाचित्रकस्य पलं तथा ॥ १९४ ॥

सूक्ष्मैलाकर्पमेकं तु कर्पं चोचमृणालयोः ।

अजमोदापजार्जीं च सूक्ष्माण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ १९५ ॥

गुदस्य विंशतिपलं सर्वमेकत्र कारयेत् ।

वद्यो हक्षम्पमाणास्तु प्राणदा इति विश्रुताः ॥ १९६ ॥

पूर्वं भक्ष्यास्तु पश्चात्य भोजनस्य यथावलम् ।

मध्यं पांसरसं यूपं क्षीरं तोयं पिवेदनु ॥ १९७ ॥

हन्यादर्शसिं सर्वाणि सहजान्यस्तमान्यपि ।

वातपित्तफोत्थानि सनिपातोद्दवानि च ॥ १९८ ॥

पानात्यये तथा पाण्डौ वातरोगे गलग्रहे ।

मन्दाद्यौ मूत्रकृच्छ्रे च तर्थेव विषमज्वरे ॥ १९९ ॥

कृमिहृदोगिणां चैव धेताः स्युरमृतोपमाः ।

शुष्क्याः स्यानेऽभया देया विद्वहे पित्तवायुजे ॥ २०० ॥

प्राणदायां सिनां दत्त्वा नूर्णमानाग्नुर्गुणाम् ।  
 अस्त्रपित्ते सभूले च प्रयोज्या गुदजातुरे ॥ २०१ ॥  
 अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधीं शेषमध्ये पलम् ।  
 पलद्रव्यं चानिलजे पित्तजे तु पलव्रव्यम् ॥ २०२ ॥  
 वार्ताद्युर्देश ।

चतुष्पलं मुधाकाण्डाद्विपलं लवणव्रयान् ।  
 वार्ताकात्कुडवं चार्काद्यष्टौ द्वे चित्रकात्तरले ॥ २०३ ॥  
 दग्ध्या रसेन वार्तावया चित्रिका भोजनोत्तरम् ।  
 कृता भुक्तं पचत्याशु कासश्वासार्गसां दिता ॥ २०४ ॥  
 विमूर्चिकाप्रतिशयायहृद्रेगम्भी च सा स्मृता ।  
 पाण्डुरेमेऽभयाद्या योद्दहः ।

अभया पिष्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।  
 पत्रत्वविपिष्पलीमुस्ताविडङ्गामलकानि च ॥ २०५ ॥  
 एतानि समभागानि दन्ती च त्रिगुणा भवेत् ।  
 त्रिष्टुदग्धगुणा देया शक्तेरा च च पङ्कुणा ॥ २०६ ॥  
 मधुना योद्दकान् कृत्वा मानतः कर्पसंमितान् ।  
 एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानुपिष्यज्जलम् ॥ २०७ ॥  
 तावद्विरक्षयते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ।

पाण्डुत्वकासविपमज्वरवहिसादान्  
 त्रुहाक्षिरोगमय चाश्मरिकां तथैव ।  
 हन्याद्रसायनमिदं खलु कामलां च  
 श्वलपच्ययं वहुफलं सततोपयोज्यम् ॥ २०८ ॥  
 गुलमेऽभयाद्या वटकाः ।

हरीतक्याः पले द्वे तु ग्रथिकं चाम्लवेतसम् ।  
 पलाधीं चार्धकर्पीशा व्योपदृक्षाम्लवाणिकाः ॥ २०९ ॥  
 यवानी चाजमोदा च कारबीशाटिपीष्करम् ।  
 विडं सौवर्चेलं चव्यं हपुपाजानिधान्यकम् ॥ २१० ॥  
 कोलाम्लं दाढिमं चैव चातुर्जातं च कार्पिकम् ।

गुडद्विगुणितं चूर्णं कृत्वा तु बटकान्भजेत् ॥ २११ ॥

गुलमानाहोदरश्चीहपाण्डुश्चैव्यहणीगदान् ।

कासातीसारपार्वीतिंश्वासारोचककामलाः ॥ २१२ ॥

मदात्ययवमीमेहद्विकापीनसपित्तजान् ।

शमयेज्ज्वरशूले च द्यमिदीसिकरं परम् ॥ २१३ ॥

कृष्णात्रिस्मृतियुक्तस्तु निःसं जीवेत्समाः शतम् ।

विसूचिकायां जीरकाया गुटिका ।

जीरकभागद्वितयमेको भागस्तर्थं व मरिचस्य ।

द्वौ भांगां सिन्धुत्थाद्विङ्गोर्भागश्चतुर्थांशः ॥ २१४ ॥

कार्या गुडेन वटिकाऽजीर्णालसकौ विसूचिकाधमानौ ।

हन्ति सुखोदकपीताऽनुलोमनी मृदवातस्य ॥ २१५ ॥

वृद्धनिष्ठवशुटिका ।

काले रवितापाढ्ये कृष्णायसे शिलाजतु गवरम् ।

त्रिफलारससंयुक्तं श्यहं विशुद्धं पुनः शुष्कम् ॥ २१६ ॥

दशमूलस्य गुडन्या रसे वलायास्तथा पटोलस्य ।

मधुकरसे गोमूत्रे श्वरं भावयेत्कमश एकाहम् ॥ २१७ ॥

क्षीरेण तु तत्परतो भावयित्वा गवां पुनः शुष्कम् ।

सप्ताहं भाव्यं स्यात्काथेनैपां यथालाभम् ॥ २१८ ॥

काकोल्यौ द्वे खेदं विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा ।

ऋद्वियुग्मं भवीरामुण्डीतिकाजीरकांशुमत्यथ ॥ २१९ ॥

रास्तापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिङ्गचव्याद्वाः ।

कटुका शृङ्गी पाठा चेति पलांशानि कार्याणि ॥ २२० ॥

अब्द्रोणसाधितानां रसेन पादांशकेन भाव्यानि ।

गिरिजस्येवं भावितशुद्धस्य पलानि दश पदं च ॥ २२१ ॥

द्विपलं च विश्वधात्रीमागधिकार्पटाख्यमरिचानाम् ।

चूर्णपलं च विद्यार्या तालीसपलानि चत्वारि ॥ २२२ ॥

पोटश सितापलानि तु चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टी ।

तिलत्तेलस्य द्रिपलं चूणेस्य पलानि पञ्च पञ्चानाम् ॥ २२३ ॥  
 त्वक्षीरिपत्रत्वद्वन्नागैलानो च मिश्रयित्वा तु ।  
 गिरिजस्य पोडशपलैर्गुटिकाः कार्यास्ततोऽक्षसमाः ॥ २२४ ॥  
 ताः शुक्का नवकुम्भे जातीषुप्पाधिवासिते स्थाप्याः ।  
 तासामेका काले भक्ष्या पेयाऽपि वा सततम् ॥ २२५ ॥  
 क्षीररसदाडिमरसाः मुखासवा हिमकरशिरतोयानि ।  
 आलोडनाय तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ २२६ ॥  
 जीर्णे लघ्वनपयोजाङ्गलनिर्यूहयूपभोजी स्याद् ।  
 सप्ताहं भोजनमेवमतः परं भवेत्सर्वमामान्यम् ॥ २२७ ॥  
 भुक्त्वाऽपि भक्षितेयं यदच्छया नावहेद्र्यं किञ्चित् ।  
 निरुपद्रवा प्रयुक्ता मुकुमारैः कामिभिश्चैव ॥ २२८ ॥  
 संवत्सरं प्रयुक्ता हन्त्येपा वातशोणितं प्रवलम् ।  
 वहुवार्षिकमपि गाढं यक्षमाणं चाद्यवातं च ॥ २२९ ॥  
 ज्वरयोनिशुक्रदोपान् प्रीहार्शः पाण्डुहृद्दृष्टिरोगान् ।  
 वर्धमनमिगुमपीनसहिकाश्वासाहचिकासान् ॥ २३० ॥  
 जठरं चित्रं कुटुं पाण्डयं कैव्यं क्षयं मदं शोषम् ।  
 उन्मादापमारी वदनाक्षिशिरोगताव्रोगान् ॥ २३१ ॥  
 आनाहमतीसारमसृग्दरकामले प्रमेहांश्च ।  
 गलगण्डापच्युदविद्रधिभगन्दरं रक्तपित्तं च ॥ २३२ ॥  
 अतिकार्यमतिस्थौल्ये स्वेदमपि क्षीपदं च विनिहन्ति ।  
 दंष्ट्राविप्रपि मौलं गरलानि वहुप्रकाराणि ॥ २३३ ॥  
 मञ्चोपधिप्रयोगानरियुक्तान् कौलिकांस्तथा सर्पान् ।  
 पापमलक्ष्मीं चेयं शमयेहुटिका शिवा नाम ॥ २३४ ॥  
 वल्या दृष्ट्या धन्या कान्तियशः श्रीप्रजाकरी चेयम् ।  
 दद्याचूपवंछभैर्ण जयं विवादे सुखस्या च ॥ २३५ ॥

श्रीमान्वकृष्णेधास्मृतिबुद्धिवलान्वितो द्वदशरीरः ।  
 पुष्ट्योजोवर्णेन्द्रियतेजोवलसंपदोपेतः ॥ २३६ ॥  
 वलीपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्रव्यं पुरुषः ।  
 संवत्सरप्रयोगात्, द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥ २३७ ॥  
 सर्वामयजिन्महितं मुनिभिर्भक्ष्यं रसायनवरिष्टम् ।  
 शिवगुटिकेति प्रथितमुक्तं गिरिशेन गणपतये ॥ २३८ ॥

पाण्डुरोगे लघुशिवगुटिका ।

कुटजत्रिफलानिम्बपटोलवननागरात् ।  
 भावितानि दशाहं वै रसेश्च द्विगुणः खलु ॥ २३९ ॥  
 शिलाजतुपलान्वष्टौ तावती सितशर्करा ।  
 त्वक्षीरीपिष्पलीधात्रीकर्कटाख्यान् पलोनिमतान् ॥ २४० ॥  
 क्षुद्रायाः फलमूलाभ्यां पलं युड्यात्रिगन्धिकात् ।  
 मधुत्रिफलसंयुक्तान्कुर्यादक्षसमान् गुडान् ॥ २४१ ॥  
 दाढिमान्वुपयःक्षीररसयूपमुरासवान् ।  
 भक्षयित्वा पिवेच्चानु निरन्त्रो भुक्त एव च ॥ २४२ ॥  
 पाण्डुकुष्ठज्वरपुहतमकार्णीभगन्दरान् ।  
 हृच्छलशुक्रमूत्राग्निदोपशोफगरोदरान् ॥ २४३ ॥  
 कासासुगदरपित्तासुक्षोपगुल्मगलामयान् ।  
 नेत्रवत्तर्मगतान् हन्त्युः सर्वरोगहराः शिवाः ॥ २४४ ॥

बुष्ट बज्रकर्णिटकाः ।

शैलस्य धातो रजसः शिलाभ्यः सूर्यमतापाज्जतुसंनिकाशम् ।  
 कृष्णं स्वेन्मूत्रसमानगन्धिं शिलाजतु भाजतमास्तदाहुः ॥ २४५ ॥  
 रूप्यादिधातोर्गलितं दृपद्धत्यस्तेभ्यः प्रशस्तं प्रवदन्ति पूर्वम् ।  
 विशोधयेत्तत्त्वुदिने सुपूते द्विपञ्चमूलीसलिले कटाहे ॥ २४६ ॥  
 छौहे समालोहय दिवाकरस्य संतापनं रक्तिमाभिरेव कुर्यात् ।  
 प्रणीततापात्सरवद्वहीत्वा पुनः पुनस्तसमयोद्दरेत् ॥ २४७ ॥  
 तावत्पदेयं सलिलं क्रमेण गाढस्य संदर्शनमेव यावत् ।

तिलत्तलस्य द्रिपलं चूणेस्य पलानि पञ्च पञ्चानाम् ॥ २२३ ॥  
 त्वक्षीरिपत्रत्वद्जागैरानां च मिश्रियित्वा तु ।  
 गिरिजस्य पोटशपर्णुष्टिकाः कार्यास्ततोऽक्षसपाः ॥ २२४ ॥  
 ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पायिवासिने स्थाप्याः ।  
 सासामेका काले भक्ष्या पेयाऽपि वा सततम् ॥ २२५ ॥  
 सीररसदादिमरसाः मुखासवा हिमकरशिशिरतोयानि ।  
 आलोडनाय तासामनुपाने वा यशस्यन्ते ॥ २२६ ॥  
 जिर्णे लघ्वक्षपयोजङ्घलनिर्यृद्युपभोजी स्थात् ।  
 सप्ताहं भोजनमेवमतः परं भवेत्सर्वसामान्यम् ॥ २२७ ॥  
 भुकत्वाऽपि भक्षितेवं यद्वच्छया नावेददयं किञ्चित् ।  
 निरूपद्रवा प्रयुक्ता शुकुमारैः कामिभिर्बैव ॥ २२८ ॥  
 संवत्सरं प्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणितं प्रवलम् ।  
 पहुचार्पिकमपि गाहं यक्षमाणं चाल्यवातं च ॥ २२९ ॥  
 ज्वरयोनिशुकदोपान् श्रीहार्षःपाण्डुहृद्रहणीरोगान् ।  
 धर्धनमिगुमपीनसहिकाभासालचिकासान् ॥ २३० ॥  
 जठरं खित्रं कुण्ठं पाण्डवं हैवयं क्षयं महं गोपम् ।  
 दन्मादापमाररौ वदनाक्षिशिरोगताच्चोगान् ॥ २३१ ॥  
 आनादभवीसरमसूग्दरकामले प्रभेहांथ ।  
 गलगण्डापच्यर्वुदविद्रधिभगन्दरं रक्षपित्तं च ॥ २३२ ॥  
 अतिकार्यपतिस्थालयं स्वदमपि श्रीपदे च विनिहन्ति ।  
 दंष्ट्राविपमपि मौलं गरब्धानि वहुप्रकाराणि ॥ २३३ ॥  
 मध्मापधिपयोगानरियुक्तान् कौलिकांस्तथा सर्पान् ।  
 पापमूलक्ष्मीं चेयं शमयेहृष्टिका शिवा नाम ॥ २३४ ॥  
 शत्यरूप्या घन्या कान्तियशःश्रीमजाकरी चेयम् ।  
 दद्याकृपवेष्ट्येषां जयं विवादे मुखस्या च ॥ २३५ ॥

श्रीमान्पृष्ठेधासृतिशुद्धिवलानितो दृढशरीरः ।  
 पुष्टधोजोवर्णेन्द्रियतेजोवलसंपदोपेतः ॥ २३६ ॥  
 वलीपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्रयं पुरुपः ।  
 संवत्सरप्रयोगात्, द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥ २३७ ॥  
 सर्वामयजिन्महितं मुनिभिर्भृत्यं रसायनवरिष्टम् ।  
 शिवगुटिकेति प्रथितमुक्तं गिरिशेन गणपतये ॥ २३८ ॥  
 पाण्डुरोगे लघुविषयुटिका ।  
 कुटजत्रिफलानिम्बपटोलवननागरात् ।  
 भावितानि दशाहं वै रसेत्वा द्विगुणैः खलु ॥ २३९ ॥  
 शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ।  
 त्वकर्षारीपिष्पलीधात्रीकर्कटारुद्यान् पलोनिमान् ॥ २४० ॥  
 शुद्रायाः फलमूलाभ्यां पलं मुड्यात्रिगन्धिकात् ।  
 मधुत्रिफलसंयुक्तान्कुर्यादक्षसमान् गुडान् ॥ २४१ ॥  
 दाढिमान्मुपयःक्षीरसयूपसुरासवान् ।  
 भक्षयित्वा पिवेचानु निरन्त्रो भुक्त एव च ॥ २४२ ॥  
 पाण्डुकुष्ठज्वरपुषीहतमकार्णोभगन्दरान् ।  
 हृच्छूलशुक्रमूत्राश्रिदोपशोफगरोदरान् ॥ २४३ ॥  
 कासासृगदरपित्तासृक्खोपगुलमगलामयान् ।  
 नेत्रवर्त्मगतान् हन्त्युः सर्वरोगहराः शिवाः ॥ २४४ ॥  
 कुष्ठे पञ्चकगुटिकाः ।

शैलस्य धातो रजसः शिलाभ्यः सूर्यप्रतापाज्ञातुसंनिकाशम् ।  
 कृष्णं स्वेन्मूत्रसमानगन्धि शिलाजतु प्राज्ञतमास्तदाहुः ॥ २४५  
 रूप्यादिधातोर्गलितं दृपद्वयस्तेभ्यः प्रशस्तं प्रवदन्ति पूर्वम् ।  
 विशोधयेत्तत्त्वुदिने सुषूते द्विपञ्चमूलीसलिले कटाहे ॥ २४६ ॥  
 छौहे समालोड्य दिवाकरस्य संतापनं रश्मिभिरेव कुर्यात् ।  
 प्रणीततापात्सरवद्वीत्वा पुनः पुनस्तस्मधोद्धरेच ॥ २४७ ॥  
 तावत्पदेयं सलिलं क्रमेण गाढस्य संदर्शनमेव यावत् ।

तावन्दिलानन्द्यभिसन्धिष्ठि समुद्धृतं यावदेष्टतथ ॥ २४८ ॥  
 अर्णा पञ्चानन्दस्य विश्रोधितस्य ततः क्रमाद्वयिन् यतेन ।  
 द्विप्रभूमूल्यां चिरविल्वमूस्तापदोलनिष्ठविफलाः पलांशाः ॥ २४९  
 मपिष्पलीजीरकरोहिणी च द्रोणेऽम्भसस्तान्दिपलान्दयोक्तान् ।  
 प्रकाश्य चिवाएमभागशेषं तस्मात्तद्वावनपल्पमल्पम् ॥ २५० ॥  
 पात्रेऽथ लोहं परिशोपयेत्तत्पुनः पुनर्भावितं पव यावद् ।  
 पलद्वयं पिष्पनिकर्कटारुये चूर्णांहुने लोहरजःसमांशे ॥ २५१ ॥  
 पलं कृदत्याः सनिदिग्धकायाः सिंतापश्चामष्टपलोनिमित्तां तु ।  
 पलत्रयं वेणुजरोचनाया मधुव्रयं तद्विनियंश्य कृत्वा ॥ २५२ ॥  
 विपातिसंख्यान्वटकान्विष्ठः खादेत्तस्तुरायारिपयोनुपानात् ।  
 रसेन वा लावकपिअलानां तोयेन वा दाढिमसंस्कृतेन ॥ २५३ ॥  
 भृक्तस्तथाऽभृक्तवति प्रदेया रोगादिते निष्परिटारिणी च ।  
 छष्टोदरशासगलामयांश्च भगव्यान्मूत्रविष-धगुलमान् ॥ २५४ ॥  
 यस्माणमशीसि सक्तासहिकां पूर्णां च हन्यादिपमज्वरांश्च ।  
 घडेश दीप्ति परमांकरोनि वलीश्च हन्यात्पलितानि चेव ॥ २५५ ॥  
 सेव्या त्वियं वज्रकनापर्घया मुनिप्रदिष्टा यटिका प्रधना ।  
 वर्ज्याः कुलत्याश्च सकाकमाच्यः कपोतमासं च सदा प्रयोगे ॥

स्त्रिये तर्पयात् गुटिसः ।

सर्पपाः पृष्ठिपर्णी च तगरं पद्मकेसरम् ।  
 इरीतालं विड्ज्ञानि रोधद्राक्षामियङ्गवः ॥ २५७ ॥  
 चन्दनं वालकं मांसी विशाला समनःगिला ।  
 श्रीवासकनिशादार्बीपश्चकं ध्यापयेव च ॥ २५८ ॥  
 मुरसमसवाः स्पृक्ता रोचना गन्धनाकुली ।  
 शम्पाकः कुद्धुंपं दारु स्थौणेयं गिरिकणिका ॥ २५९ ॥  
 जात्याः पुष्पं प्रवालं च पिष्पली मारिचानि च ।  
 सूक्ष्मैला सिन्दुवारश्च यष्ट्याहं रोधमेव च ॥ २६० ॥

एतान्यङ्गानि पदविंशत्पुष्ट्येण परिपेत्वं ।

गुटिकां कोलमात्रां च छायाशुष्कां हि कारयेत् ॥ २६१ ॥

नस्यपानाञ्जने चंपा सम्यग्लेपे च पूजिता ।

धुंसां सर्वविपार्तानां राजद्वारे रणे तथा ॥ २६२ ॥

वणिजां लाभकामानां विवादे च सदा हिता ।

सरीसूपा न तिष्ठन्ति यत्र तिष्ठति वेश्मनि ॥ २६३ ॥

अनया संप्रलिमस्य चौरवहिंभयं कुतः ॥

सर्पदंशभयं चापि जलराशिभयं न च ॥ २६४ ॥

भूतदेवे सिद्धार्थकाया गुटिका ।

सिद्धार्थकव्योपचार्यगन्धानिशाद्यं हिङ्गुः पत्राशकं च ।

बीजं करञ्जात्कुमुमं शिरीपात्फलं च वल्कश कपित्यवृक्षात् ॥

समाणिमन्थं सनतं च कुष्ठं श्योनाकमूलं किणिहीं सिता च ।

वस्तस्य मूत्रेण मुभावितं तत्पित्तेन गच्छेन गुडान्विदध्यात् ॥

दुष्ट्रणोन्मादनिशान्वययुक्ता उद्धन्धका वारिनिमग्रदेहाः ।

दिग्धाहता दर्पितसर्पदृष्टस्तान्साधयत्यज्ञनपानलेपैः ॥ २६७ ॥

शोषेऽभृत्पवटकाः ।

मूलत्वक्पत्रशुङ्गानामश्वत्यस्य समाहरेत् ।

शतं शतावरीं मेदां मधुपर्णीं पुनर्नवाम् ॥ २६८ ॥

सहाद्र्यं शुद्धचीं च श्रेयसीं च शिवां स्थिराम् ।

बृहतीं च वयस्यां च काकोलीं काकनासिकाम् ॥ २६९ ॥

दशद्रेणेषु दुग्धस्य पचेत्तसममात्रया ।

सिद्धं शीतं पुनः क्षीरं मन्थानेन विमन्ययेत् ॥ २७० ॥

जायते यदृतं तत्र तदुद्धत्य पुनः पचेत् ।

॥ २७१ ॥

· · · · · |

उच्चटात्रायमाणारूपशृङ्गाटककसेरुक्तैः ॥ २७२ ॥

मज्जा तालस्य वीजानां पुष्करस्य च केसरैः ।

धानीफलविदारीक्षुरसैः काशमर्यजैः सह ॥ २७३ ॥

तत्सिद्धे कलशे ताम्रे कृतकौतुकमङ्गलः ।  
 उच्चटेषुरसक्षीद्रुगाक्षीर्याथ बुद्धिमान् ॥ २७४ ॥  
 प्रस्त्यं प्रस्त्यं पृथगद्याच्छकरार्थतुलां तथा ।  
 आत्मगुप्ताफलानां च कुडवं मरिचस्य च ॥ २७५ ॥  
 त्रिसुगन्धिकृतावापं मन्यानेन विमन्थितम् ।  
 पलिकान्मोदकान्कृत्वा स्थापयेन्मूलये नवे ॥ २७६ ॥  
 तेभ्यो द्वावप्यथवाऽप्येकं खादेद्योऽप्रिवलं प्रति ।  
 मोदकं नियताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ २७७ ॥  
 स हन्याद्यक्षमणः सद्य एकादशविधं वलम् ।  
 स्वरवर्णवलौदार्यतुष्टिषुष्टिविवर्धनम् ॥ २७८ ॥  
 आयुपर्यं परमं चात्रयं भूतोपहतचेतसाम् ।  
 व्याकुलीकृतधातूनां दृद्धानां क्षीणरेतसाम् ॥ २७९ ॥  
 वाजीकरणमप्येतद्वन्ध्यानां पुत्रदं परम् ।  
 धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वरिनानां वलवर्धनम् ॥ २८० ॥  
 हृत्पार्वग्रहणीदोपमूलवृक्षापतञ्चकान् ।  
 अपस्मारं तथोन्मादं नाशयेतद्रसायनम् ॥ २८१ ॥  
 पाण्डुरोगे पुर्नवामण्डूरम् ।

पुर्नवा त्रिवृच्छुण्ठी पिष्पली मरिचानि च ।  
 विढङ्गं देवकाष्ठं च चित्रकं पुष्कराहयम् ॥ २८२ ॥  
 हरिद्राद्रितयं दन्ती त्रिफला चविका तथा ।  
 कुटजस्य फलं तिक्ता पिष्पलीमूलमुस्तकम् ॥ २८३ ॥  
 एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।  
 मूत्रे चाष्टुणे पक्त्वा स्थापयेत्स्त्रिघभाजने ॥ २८४ ॥  
 पाण्डुशोपोदरानाहशूलार्शः कृमिरोगबुर् ।  
 वातव्याधौ रसोनपिण्डः ।  
 पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा ।  
 हिंडुः त्रिकटुकं क्षारौ द्वाँ पञ्चलवणानि च ॥ २८५ ॥

शतपुष्पा वचा कुष्ठं पिष्टलीमूलचित्रकौ ।  
 अजमोदा यवानी च धान्यकं चापि बुद्धिमान् ॥२८६॥  
 प्रत्येकं च पलं चैपां मूर्खमचूर्णानि कारयेत् ।  
 घृतभाण्डे दृढे चैव स्थापयेदिनपोडश ॥ २८७ ॥  
 प्रक्षिप्य तैलमाणीं च प्रस्थार्थं काञ्जिकस्य च ।  
 स्वादेत्कर्प्रमाणं च तोयं मदं पिवेदनु ॥ २८८ ॥  
 आपवाते तथा वाते सर्वाङ्गाङ्गसंस्तृते ।  
 अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गलामये ॥ २८९ ॥  
 सोन्मादे वातसंभगे शूले जञ्चुपु शस्यते ।

वातव्याधौ वृहद्गुणपिण्डः ।

चब्याचित्रकतालीसं यवानी धान्यकं वचा ।  
 अजमोदाऽजगन्धा च दाढिमं चाम्लवेतसम् ॥ २९० ॥  
 राम्नाग्रन्थिविडङ्गाहमभयाजीरकद्रव्यम् ।  
 क्षारद्रव्यसमायुक्तं लवणत्रयसंयुतम् ॥ २९१ ॥  
 शतमूली नंतं कुष्ठं व्योपं पूतीकरञ्जकम् ।  
 शतपुष्पाऽजगन्धा च शटीरामठसंयुतम् ॥ २९२ ॥  
 निस्तुपं लशुनं कृत्वा द्रव्याणां च चतुर्गुणम् ।  
 घृतेन मिश्रितं पिण्डमक्षमात्रं तु भक्षयेत् ॥ २९३ ॥  
 आहृत्यवाते हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भे गलग्रहे ।  
 कोष्ठशीर्पिगते वाते सर्वाङ्गानिलसंग्रहे ॥ २९४ ॥  
 तूनीप्रतूनीगुलमेषु सप्तस्वेव क्षयेषु च ।  
 कृमिकोष्ठापहारी च द्वाशीतिपवनापहः ॥ २९५ ॥  
 क्षीराढारो भवेत्तस्य मांसाहारोऽथवापि वा ।  
 पुरुपस्य भवेद्दहस्तप्रहेमसमप्रभः ॥ २९६ ॥  
 त्रिफला गन्धकथैव गुग्गुलुः समभागतः ।  
 कार्या वातारितैलेन गुटिका वातरोगिणाम् ॥ २९७ ॥

यातव्याधीं व्योपाशा गुटिका ।

व्योपं सग्रन्थिकं पथ्यां चित्रकं जीरकद्रव्यम् ।  
 अजमोदां यवानीं च वचां चैव मवलगुजम् ॥ २९७ ॥  
 लवणत्रितयं क्षारां समभागानि चूर्णयेत् ।  
 द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्तं गुग्गुलुं शुभम् ॥ २९८ ॥  
 पलार्घसंमितं चात्र योजयेत्ताम्लवेत्सम् ।  
 गुटिकैपा हिता वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ २९९ ॥  
 नवं करोति भग्नं च जडरानलदीपनी ।  
 पूजिता देवदेवेन कालपादेन शम्भुना ॥ ३०० ॥

कुषे स्वायम्भुवो गुग्गुलः ।

शशिरखा पञ्चपलं तावद्विरिजश्च गुग्गुलोर्दश च ।  
 ताप्यस्य पलत्रितयं द्वे लोहाच्छ्रवणिकायाश्च ॥ ३०१ ॥  
 त्रिफलाकरञ्जपलुवरखदिरगुड्चीवचात्रिवृदन्ती- ।  
 मुस्ता विडङ्गरजनीचतुरहुलवहिकुटजैश्च ॥ ३०२ ॥  
 पलिकैश्वर्णमेतन्मूलेण गवां पिवेन्नरः प्रातः ।  
 कुष्टी धृतमधुमिश्रं जयत्यस्तग्वातमचिरेण ॥ ३०३ ॥  
 श्वित्राणिं कुष्टकोठी विपगः गुलमोदरप्रमेहांश्च ।  
 उन्मादभगन्दरमपस्मृतिश्लीपदकृमिश्वासान् ॥ ३०४ ॥  
 जयति वलीपलीतानि च योगः स्वायम्भुवः प्रोक्तः ।

कुषे धन्वन्तरीया सप्तविंशतिका गुग्गुलगुटिका ।

त्रिकदुत्रिफलामुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ।  
 सूर्म्पैला पिप्पलीमूलं माक्षिकं सुरदारु च ॥ ३०५ ॥  
 तुम्बरः पैष्करे कुष्टे विपा च रजनीद्रव्यम् ।  
 सौवर्चलं विडं चैव सन्धवं दस्तिपिप्पली ॥ ३०६ ॥  
 द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्तं गुग्गुलुं पचेत् ।  
 माक्षिप्य सार्पिपा सार्पि गुटिकां कारयेद्दुधः ॥ ३०७ ॥

अजमोदा विडङ्गं च दाढिमं साम्लवेतसम् ।  
 वापिका पौष्टरं दारु त्वगेलापत्रकेसरम् ॥ ३०८ ॥  
 एपामर्थपलैर्भागैः पलानि दश गुगुलोः ।  
 संमिश्य सर्पिषा सार्थं गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ३०९ ॥  
 भक्षयित्वा सर्पिष्कां जीर्णं च प्रमिताशनम् ।  
 वातश्लेष्मविकारेषु नाडीदुष्ट्रणेषु च ॥ ३१० ॥  
 श्लेष्मकासे च शोफे च योगमेतं प्रयोजयेत् ।  
 जठरं योनिशूलं च हान्तर्भूतं च विद्रधिम् ॥ ३११ ॥  
 पार्वशूलं कृमीन् गुलमान्प्रमेहांश्छर्वरोचकौ ।  
 केवलानिलजान् रोगानशीति श्लैष्मिकानपि ॥ ३१२ ॥  
 सेविता नाशयत्याशु रसायनमनुत्तमम् ।

रामायोगुगुलः ।

रास्तामृतैरण्डस्तुराहविश्वं तुल्यं पुरेणाथ विमृद्य खादेत् ।  
 वातापयी कर्णशिरोगदी च नाडीयुतश्वेव भगन्दरी च ॥ ३१३ ॥  
 आमवाते घन्वन्तरीया द्वार्धिशका गुगुलगुटिका ।

त्रिकदुत्रिफलामुस्तं विडङ्गं चित्रकं वचा ।  
 चव्यैलापिष्पलीमूलं हपुपा सुरदारु च ॥ ३१४ ॥  
 तुम्युरुः पौष्टरं कुष्ठं विशाला रजनीद्रयम् ।  
 वापिका जीरकं शुण्ठी सपत्रा च दुरालभा ॥ ३१५ ॥  
 सैन्धवं च विडं क्षारी विपा चै हस्तिपिष्पली ।  
 भागानेपां समान्कृत्वा तुल्यं कृत्वा तु गुगुलम् ॥ ३१६ ॥  
 ततो वदरमात्रां तु गुटिकां कारयेद्बुधः ।  
 मेथावी भक्षयित्वा तां मधुना सह योजिताम् ॥ ३१७ ॥  
 आम इन्यात्मुदुर्वारमन्त्रवृद्धिं गुदकृमीन् ।  
 आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठानि गुदजानि च ॥ ३१८ ॥  
 गृध्रसीं च हनुस्तम्भपक्षायातापतानकान् ।  
 शोफं प्रीहामयं मेहं कामलामरुचिं तथा ॥ ३१९ ॥

नाम्ना द्वात्रिंशको षेष पुण्युद्गुणः कथितो यदान् ।  
घन्वन्तरिवृत्तो योगः सर्वरोगनिष्ठुदनः ॥ ३२० ॥

वान्मध्यापो निष्ठादो गुणुदः ।

विलंबापदुहेमचव्यहपुपादासाकणादादिमं  
मूलं पांचरमध्यपाक्यपरिचं शुष्टी यवानी वना ।  
कर्षूरेन्द्रयवाम्बन्धतस्तुतिवितन्तिरीकाप्रिकं  
नैम्यं पत्रमजानियुगमन्तकं शुद्राम्बुधात्रीकलम् ॥ ३२१ ॥

पावाधान्ययवासदीप्यकक्णामूलं दलं वापिका  
मुस्ता कर्षसमंश्वतुप्पलगुर्तः क्षांद्रस्य जीर्णस्थ वे ।  
दत्त्वा गुणुदुभव चाष्टपलिकं कृत्वा वदान्भक्षये-  
ते जग्धा विनिहन्ति यातकफजान् व्याधीनशेषानपि ॥ ३२२  
अर्शसि योगराजो गुणुदः ।

पिष्ठलीपिष्ठलीमूलचव्यचित्रकनागरः ।  
पाठाविद्वभागीन्द्रियवहिङ्गुवचान्तितः ॥ ३२३ ॥

सर्पपातिविपाजानिधान्यकं रेणुकायुतेः ।  
गजकृष्णाजपोदाभ्यां कदुमूर्वासमन्वितः ॥ ३२४ ॥

समभागान्वितेरत्तेस्त्रिफला द्विगुणा भेदैत् ।  
त्रिफलासहितेरत्ते: समभागस्तु गुणुदुः ॥ ३२५ ॥

एतचूर्णकृतं सर्वं मधुना च परिष्ठुतम् ।  
योगराजमिमं विद्वान्भक्षयेत्प्रातश्चतिथतः ॥ ३२६ ॥

अर्शसि यातगुलमं च पाण्डुरोगमरोचकम् ।  
नाभिशूलमुदायर्ते प्रभेहान्वातशोणितम् ॥ ३२७ ॥

कुष्ठं क्षयमपस्मारं हृद्रोगं ग्रहणीगदम् ।  
महान्तमग्निसादं च खासकासभगन्दरान् ॥ ३२८ ॥

रेतोदोपाश्च ये पुंसां योनिदोपाश्च योपिताम् ।  
निहन्याशाश्च तान्सर्वान्दुर्वार्तानप्यसंशयम् ॥ ३२९ ॥

— एप निष्परिहारस्तु पानभोजनमैथुने ।

सततभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनः ॥ ३३० ॥

नाडीत्रये त्रिफलाद्यो गुग्गुङ्गः ।

हन्ति नाडीव्रणकुद्भगन्दरगलामयान् ।

पिटिकां विद्रविं गुलमं गुग्गुलुसिफलान्वितः ॥ ३३१ ॥

प्रमेहे गोशुरगुग्गुलगुटिका ।

त्रिकदुं त्रिफलां सुस्तं गुग्गुलं च समांशकम् ।

गोक्षुरकायसंयुक्तं शुटिकां कार्येहुधः ॥ ३३२ ॥

देशकालबलापेक्षी भक्षयेचानुलोभिनीम् ।

न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्यादयेपिसतम् ॥ ३३३ ॥

प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च ।

प्रदर्श मूत्रदोषं च मूत्राद्यातं च नाशयेत् ॥ ३३४ ॥

वातगुल्मे वातरके च केशोरको गुग्गुलः ।

वरमहिपलोचनोदरसविभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ।

प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणम् ॥ ३३५ ॥

द्वात्रिशत्त्वन्तरहापलानि देयानि यत्नेन ।

संसाधयेत्यत्नाद्व्यां संघटयेच तद्यावत् ॥ ३३६ ॥

अर्धक्षयितं जातं तोयं ज्वलनस्य संपर्कात् ।

अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयःपात्रे ॥ ३३७ ॥

सान्द्रीभूते तस्मिन्ब्रह्मतार्य हिमोपलस्पर्शे ।

पथ्याचूर्णं द्रिपलं त्रिकदुकचूर्णं पदक्षपरिमाणम् ॥ ३३८ ॥

कृमिरपुचूर्णार्धपलं कर्पे कर्पे त्रिवृद्धन्त्योः ।

पलमेकं गुहृच्या दत्त्वा संमूद्धर्य यत्नेन ॥ ३३९ ॥

संस्यापयेच गुप्तं स्तिर्घे भाण्डे धृतेन सुरभीणाम् ।

आदाय तस्य मात्रां विहिनातिथिदेवताप्रणातिः ॥ ३४० ॥

स्वादेयधार्मि मनुजो व्याधिबलापेक्षया सम्यक् ।

उपयुज्य चानुपानं यूपं क्षीरं सुगन्धिसलिलं च ॥ ३४१ ॥

तनुरोधि वातशोणितमेकद्वित्युलबणं चिरोत्थमपि ॥ ३४२ ॥  
 भग्रस्तुतपरिशुष्कं स्फुटितमपि तन्निहन्ति यत्रेन ।  
 व्रणकासकुपुगुलमश्यवृद्धरपाण्डुरोगमेदांसि ॥ ३४३ ॥  
 मन्दाप्लित्वविवन्धं प्रमेहदोपांश्च नाशयति ।  
 सततं निषेव्यमाणः कालेन निहन्ति रोगगणम् ॥ ३४४ ॥  
 अभिभूय जरादोपं करोति कैशोरिकं रूपम् ।

त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः ।

पलानि काथयेत्पर्णि त्रिफलायास्तु गुग्गुलोः ।  
 पलैः पोडजाभिः सार्धमपां द्रोणद्रयेन तु ॥ ३४५ ॥  
 चतुर्भागावशेषं तु कृत्वा भूयोऽप्यथिथ्रयेत् ।  
 यनीभूतं कपायं तु ज्ञात्वा चोद्दृत्य निःक्षिपेत् ॥ ३४६ ॥  
 छिन्नाव्योपविडङ्गानां चूर्णानि पलिकानि च ।  
 ततो मात्रां बलापेक्षी भक्षयेद्वातरक्तिनम् ॥ ३४७ ॥  
 कुषिन श्वित्रिणं चैव गुलिमनं मेहिनं तथा ।  
 वलं मेधां स्मृतिं ब्रानं तेज आयुर्विवर्धयेत् ॥ ३४८ ॥  
 गृध्रम्बा कंसाहयो गुग्गुलुः ।

पथ्याविभीतापलकीफलानां शतं क्रमेण द्रिगुणाभिष्ठद्धम् ।  
 प्रस्थेन युक्तं तु पलङ्गपस्य द्रोणे जलस्य स्थितमेकरात्रम् ॥ ३४९ ॥  
 अर्धावशेषं कथितं कपायं भाण्डे पचेत् पुनरेव लौहे ।  
 अमूलिनि पश्चादवतार्य दद्याद्रव्याणि संचूर्ण्य पलार्धकानि ॥ ३५० ॥  
 विडङ्गदन्तीत्रिफलागुड्चीकृष्णात्रिवृद्धगृपणचित्रकाश ।  
 यथेष्टेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमाम्बुपानाहितभोजनानि ॥ ३५१ ॥  
 निषेव्यमाणस्य निहन्ति रोगाऽङ्गुणगतान्गृध्रसिकादिकांश्च ।  
 श्रीदानमुग्रं जठराणि गुलम् पाङ्गुल्यकण्ठकृमिवातरक्तम् ॥ ३५२ ॥  
 कंसाहयो गुग्गुलुरेप नाम्ना रूपातः क्षितीं तत्वयितमभावः ।  
 वलेन नागेन्द्रसमं मनुष्यं वेगेन कुर्यादरिवेगतुल्यम् ॥ ३५३ ॥  
 आयुष्यदो हर्षकरोऽतिपथ्यश्वस्त्रुपदः पुष्टिकरो विप्रः ।

सतस्य सन्धानकरो विशेषाद्वरेषु शस्तः सकलेषु चैव ॥ ३५४ ॥  
गण्डमालायां त्रिफलाया गुग्गुलगुटिका ।

त्रिफलात्रिवृतादन्तीनीलिनीचतुरझुलाः ।  
एषां तु भिपजा ग्राह्या प्रत्येकं पलविंशतिः ॥ ३५५ ॥  
कुट्टितैः कथितैरभिश्चतुद्रेणप्रमाणतः ।  
पचेत्तु सलिलं तावद्यावद्वोणावशेषितम् ॥ ३५६ ॥  
पञ्चाशत्तत्र निक्षिप्य गुग्गुलोस्तु पलान्यपि ।  
पचेत् पाकघनीभूते त्वगेलानागकेसरम् ॥ ३५७ ॥  
त्रिकुटित्रिफलामुस्तयवानीजीरकाणि च ।  
पिप्पलीमूलदहनहपुपाकृष्णजीरकम् ॥ ३५८ ॥  
वाष्पिका साजमोदा च निन्तिडीकाम्लवेतसौ ।  
सौवर्चलं च कृत्वैषां श्लक्षणचूर्णं विनिक्षिपेत् ॥ ३५९ ॥  
पलार्धप्रमितैर्भागैः प्रत्येकं च विचक्षणः ।  
ततोऽक्षमात्रां गुटिकां भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ ३६० ॥  
गण्डमालार्द्युद्ग्रन्थयूरुस्तम्भोदरपीडितः ।  
अनेनैव विधानेन गिरिजं वा प्रयोजयेत् ॥ ३६१ ॥  
वातरक्ते वृद्धत्स्यायम्मुक्तगुग्गुलः ।

अलम्बुपालोहचूर्णमनयोर्देष्ट पले पृथक् ।  
पलत्रयं च ताप्युत्थाद्राकुच्याः पलपञ्चकम् ॥ ३६२ ॥  
गिलाजतु तयोस्तुल्यं पलानि दश गुग्गुलोः ।  
सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य गुटिकां कारयेद्वधः ॥ ३६३ ॥  
शाणं कर्पार्धकर्पं वा ततः खोदेत्ययत्नतः ।  
वातरक्तं च कुष्ठानि शित्राणि विविधानि च ॥ ३६४ ॥  
अर्शासि क्षुद्ररोगांश्च ग्रहणीं च भगन्दरान् ।  
बस्तिजांश्चुक्रदोपांश्च पाण्डुतामुदराणि च ॥ ३६५ ॥  
शोफश्लीपदमानाहं यक्षमाणं च विशेषतः ।  
जाडीव्रणांश्च सर्वास्तु हन्याद्विद्रधिद्वदान् ॥ ३६६ ॥

वृप्यो वल्यश्च धन्यश्च केश्यो मेधाप्रिवर्धनः ।  
 आयुर्वर्णकरस्त्वच्यः पुत्रसीभाग्यदस्तथा ॥ ३६७ ॥  
 गर्भसन्धानकृत्योक्तो गर्भपुष्टिकरः परम् ।  
 कालपादेन विख्यातो नाम्ना स्वार्थभुवो भुवि ॥ ३६८ ॥  
 कासे उत्तरस्त्रियतिका गुणुलुगुटिका ।

त्रिकट्टुत्रिफलामुस्तं कुटजं गजपिष्ठलीम् ।  
 त्वगेलापत्रहपुपाग्निकं जीरकद्रव्यम् ॥ ३६९ ॥  
 विडङ्गं चित्रकं पाढां त्रायमाणां दुरालभाम् ।  
 पटोलेन्द्रयवान् दारु पञ्चव लवणानि च ॥ ३७० ॥  
 यवानीं वापिकां भागीं हरिद्रे सारिवाद्रव्यम् ।  
 दाढिमं पौष्टकरं धान्यं वचां क्षारद्रव्यं तथा ॥ ३७१ ॥  
 हरेणुकाजमोदं च तिनिटीकाम्लवेतसी ।  
 सतुम्बरूणि सर्वाणि कार्पिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ३७२ ॥  
 गुणुलुश्च सपो देयो हविषा सह योजयेत् ।  
 गुटिकापक्षमात्रां तु भक्षयेन्मधुना सह ॥ ३७३ ॥  
 कासं भासं तथा शोफमर्शास्यथ भगन्दरम् ।  
 हृत्पृष्ठपार्वथूलं च हनित मन्दायितामपि ॥ ३७४ ॥  
 आमवातमुदावर्तमेदोद्दिगुदकृमीन् ।  
 आनाहं च तथोन्मादं कुपुपाण्हदरामयान् ॥ ३७५ ॥  
 नाढीदुष्ट्रणान् सर्वान्प्रमेहश्लीपदानपि ।  
 वातरके कन्यादिका गुणुलुगुटिका ।

त्रिफलात्तित्रिपादरुदर्प्पमुस्तादस्तप्पकः ।  
 खदिरासननक्तादागुहचीनृपपादपैः ॥ ३७६ ॥  
 भूनिभ्वनिभ्वकडुकाकालिङ्गकुलकः समैः ।  
 क्राथं कृत्वा ततः पूर्वं शीतमण्डुणेऽमभसि ॥ ३७७ ॥  
 गुहच्याः कारयेत्काथमधें शिष्टेऽध वारिणि ।  
 क्षिस्वा पुरं नवे भाण्डे स्वापयेद्गन्नीमयः ॥ ३७८ ॥

आतपेनैव तीव्रेण कौशिकं परिशोपयेत् ।  
 शुष्कस्य तु पलान्यष्टौ तावन्मानं शिलाजतु ॥ ३७९  
 ताप्यचूर्णात्पलं चैकं द्वे पले मधुसर्पिषोः ।  
 एकीकृतं सुसंसुधं लिहात्तं त्रिफलाम्बुना । ३८० ॥  
 तनुना मुद्रयुपेण जाङ्गलानां रसेन वा ।  
 जीर्णं यूपेण भुजीत पुराणं शालिपष्टिकम् ॥ ३८१ ॥  
 यथारोगं यथासात्म्यं रसीर्युपेश संस्कृतैः ।  
 त्रिसप्ताहप्रयोगेण वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ३८२ ॥  
 निहन्ति वर्यितः शीघ्रं कुपुरोगं व्रणानपि ।  
 छिन्नभिन्नांश्च संधते दरिद्र इव कन्थडीम् ॥ ३८३ ॥  
 गण्डमालादामटाचत्वारिंशतसंज्ञा गुग्गुलुगुटिका ।

त्रिफलुत्रिफलामुस्तं कुट्टं गजपिप्पलीम् ।  
 त्वगेलापत्रहपुपाग्रन्थिकं जीरकद्रव्यम् ॥ ३८४ ॥  
 विड्जं चित्रकं पाठां त्रायमाणां दुरालभाम् ।  
 पटोलेन्द्रवान् दारु पञ्चैव लवणानि च ॥ ३८५ ॥  
 यवानीं वाष्पिकां भागीं हरिदे सारिवाद्रव्यम् ।  
 दाढिमं पौष्करं धान्यं वचां क्षारद्रव्यं तथा ॥ ३८६ ॥  
 पिप्पलीं चाजमोदां च तिन्तिडीकाम्लवेतसम् ।  
 तुम्बखणि च सर्वाणि कार्पिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ३८७ ॥  
 सूक्ष्मचूर्णकृतेष्वेषु पलानि दश पञ्च च ।  
 महिपाक्षस्य मतिमान् तत्पादेन च माक्षिकम् ॥ ३८८ ॥  
 द्रव्यैरप्तेचरैश्चत्वारिंशता परिनिर्मितः ।  
 गण्डमालापचीग्रन्थिमूकमिन्मिनगद्दान् ॥ ३८९ ॥  
 क्षयाद्रव्यवातशोफांश्च मन्यास्तम्भं तथाऽर्दितम् ।  
 अर्शांसि च मपेहांश्च स्थौल्यदोपगुदामयान् ॥ ३९० ॥  
 अर्दुदं ग्राणरोगं च वाधिर्यं गृध्रसीं तथा ।  
 पूतिनासं प्रतिश्यायं पिटिकां क्षतविद्रविम् ॥ ३९१ ॥

सोदरामव्रव्यं च जयेदपि च दीपयेत् ।

अमृतायुविवेष्टत्सकं कलिपत्यामलकानि गुगुलुः ।

अमृतायुविवेष्टत्सकं कलिपत्यामलकानि गुगुलुः ।

क्रमवृद्धमिदं पधुपुतं पिटिकास्थात्यभगन्दराज्ञयेत् ॥ ३९२ ॥

शोषणे गुडार्दकगुटिका ।

गुडार्दकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिष्ठलीं वा ।

कर्पाभिवृद्धथा त्रिपलमपाणं खादेन्नरः पक्षमयापि मासम् ॥

शोफभतिश्यायगलास्परोगान् सञ्चासकासाहचिपीनसादीन् ।

जीर्णज्वराशोग्रहणीविकारान् हन्यात्याऽन्यन्कफवातरोगान् ॥

गुम्बे आरंगवल्लभम् ।

पलानि दश वारुण्याः स्तुक्काण्डात्पलविंशतिः ।

शतं सिंहीफलानां तु कुमार्याश्च पलद्रव्यम् ॥ ३९५ ॥

अर्कपत्रशतं चैकं शतं पूतीकपत्रकात् ।

माहिपाशात्पिचुं चैकं रसोनात्पलपञ्चकम् ॥ ३९६ ॥

पलानि पञ्च सिन्धूत्याचिरविलवत्वचस्तथा ।

सौवर्चलात्तथा त्रीणि व्योपात्पञ्च पलानि च ॥ ३९७ ॥

पलद्रव्यं तु काचस्य सामुद्रलवणादश ।

पलमेकं विडाख्यस्य कुडवं दरकृष्णतः ॥ ३९८ ॥

मवान्यात्थाजमादायाः पलार्धं तु पृथक् पृथक् ।

रामठस्य पलं चैकं पलैकं जीरकदयात् ॥ ३९९ ॥

कुडवं राजिकायाश्च प्रस्थार्धं चित्रकस्य च ।

सर्वमेकत्र सेयोज्य कुट्टयित्वा हुल्लखले ॥ ४०० ॥

प्रस्थार्धं चार्कदुग्धस्य मानीं सर्पपत्तेलतः ।

एकत्र मिलितं कृत्वा चान्तर्घूर्मं ततो दहेत् ॥ ४०१ ॥

मस्तुना तं पिवेत्त्वारं कपार्धं कर्पमेव वा ।

गुरुमं शूलं तथाऽनाहमरुचिं पाण्डुतां तथा ॥ ४०२ ॥

हृदोगं ग्रहणीदोषमश्चोजीर्णं विमूचिकाम् ।

आषुलामूर्धवातं च वातकुण्डलिकां तथा ॥ ४०३ ॥  
 मृत्यग्रन्थि प्रतिश्यायं कासं श्वासं तथाऽश्मरीम् ।  
 श्रीहानमामदोपांश्च वातश्लेष्मोद्गवान् गदान् ॥ २०४ ॥  
 आरोग्यलवणं हन्यात् सशस्यामेश्च दीपनम् ।

गण्डमालाया काशनारगुणुः ।

पलानां दशकं ग्राह्यं काञ्चनारत्वचो द्वुर्धः ।  
 पट्टपला त्रिफला ग्राह्या व्योपं ग्राह्यं पलत्रयम् ॥ ४०५  
 पलैकं वरुणस्यापि त्वगेलापत्रकं तथा ।  
 कर्पकर्पमितं ग्राह्यं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ ४०६ ॥  
 सर्वं चूर्णमिदं यावत्तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ।  
 संर्वद्युगुटिकाः कार्याः शाणमात्रास्ततो द्वुधः ॥ ४०७ ॥  
 भक्षयेत्यातरेकंकामनुपानविशेषतः ।  
 गण्डमालां जयेदुग्रामपचीमर्दुदानि च ॥ ४०८ ॥  
 ग्रन्थीनृणां सगुलमांश्च विद्रविं च भगन्दरम् ।  
 अनुपानं प्रयोक्तव्यः काथो गुण्डीसमुद्दवः ॥ ४०९ ॥  
 काथो वा खदिरस्याथ पथ्याकाथोऽथवा जलम् ।

गण्डमालाया काशनगुटिका ।

त्रिफलायाख्यां भागा व्योपाच्च द्विगुणा मताः ॥ ४१० ॥  
 तस्माच्च द्विगुणं द्वेयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ।  
 एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः ॥ ४११ ॥  
 क्षीद्रस्य च ततो दद्यादश भागान् विचक्षणः ।  
 सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे तथैव च ॥ ४१२ ॥  
 नाढीवणे विद्रवीं च गुटिकेयं प्रशस्यते ।

क्षतक्षीणे सर्विर्गुटिका ।

त्वक्षीरीश्वारणीद्राक्षामूर्वर्फभकजीवकैः ।  
 वीरधिक्षीरकाकोलीवृहतीकपिकच्छुभिः ॥ ४१३ ॥  
 खर्जूरफलमेदाभिः क्षीरपिण्डैः पलोन्मितैः ।  
 प्रस्थर्धात्रीविदारीक्षुरसैः प्रस्थं धृतात्पचेत् ॥ ४१४ ॥

शर्कराऽष्टपलं शीते क्षीद्रार्घमस्थमेवं च ।  
 दत्त्वा सर्पिंगुडान् कुर्यात्कासहिकाज्वरापहान् ॥४१५॥  
 यक्षमाणं तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीमकम् ।  
 शुक्रनिद्राक्षयं तृणां हन्त्युः काइर्यं सकामलम् ॥४१६॥  
 उत्तर्धीणे क्षीरादिवेदगुटिका ।

विदारीस्वरसं नीत्वा चतुष्पलमितं भिषक् ।  
 प्रस्थं तिच्छिरिमांसस्य रसात् प्रस्थं घृतस्य च ॥४१७॥  
 प्रस्थद्रव्यं गवां क्षीरं रसादिक्षोस्तथाऽऽढकम् ।  
 पाकार्थं प्रक्षिपद्धाण्डे तत्र कल्कमितं क्षिपेत् ॥४१८॥  
 जीवन्तीं चैव काकोल्यां द्वे मेदे मधुकं तथा ।  
 जीवकर्षभक्तो मुद्रमापपञ्चां प्रमाणतः ॥४१९॥  
 प्रत्येकं तत्पलार्घं स्यात्पियालस्य चतुष्पलम् ।  
 चतुष्पलं मधुकानां द्विपला वेशलोचना ॥४२०॥  
 प्रधुयष्ट्या भवेत् कर्पो विक्षमज्ञापलं तथा ।  
 कणापलं च खर्जूरात् पलानां विंशतिः स्मृता ॥४२१॥  
 कल्कं संपेपयेदिक्षो रसैः पूर्वद्वे क्षिपेत् ।  
 मन्दाग्निपाचनाहेहीभूते शीते क्षिपेत्सिताम् ॥४२२॥  
 विंशत्पलभ्यमाणां तु मधुनोऽष्टपलं तथा ॥३९॥  
 अजाजीमरिचानां तु पलमेकं नियोजयेत् ॥४२३॥  
 क्षीरादिलेहपूर्वा तु गुटी हिकाज्वरापहा ।  
 यक्षमाणं तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीमकम् ॥४२४॥  
 शुक्रनिद्राक्षयं तृणां हन्यात्काइर्यं सकामब्दम् ।  
 प्रभावतीवटिका ।

हरिद्रा निष्वपत्राणि पिष्पलयो मरिचानि च ॥४२५॥  
 भद्रमुस्ता विडङ्गानि सप्तमं विश्वभेपजम् ।  
 सन्धवं चित्रकं चैव कुषुं पाठा हरीतकी ॥४२६॥  
 एतानि समभागानि छागमूत्रेण पेपयेत् ।  
 गुटी कोलासियमाना च छायाशृङ्का प्रभावती ॥४२७॥

अमिमुखवटी ।

हिङ्गभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् ।

त्रयो भागा विड्ज्ञानां सैन्धवं च चतुर्गुणम् ॥ ४२७ ॥

अजाज्याः पञ्चभागाश्च पदभागार्थैव नागरात् ।

मरिचात् सप्त भागाः स्युः पिष्पली चाष्टभागिका ॥ ४२८ ॥

कुषुं नवगुणं प्रोक्तं दशभागा हरीतकी ।

एकादश तथा वहेभागा द्वादश दीप्यकात् ॥ ४२९ ॥

गुडेन द्विगुणेनैव गुटिकां कारयेहुधः ।

ततो वातरुजार्तानां नित्यमेव प्रयोजयेत् ॥ ४३० ॥

शासादी सूर्यचन्द्रप्रभागुटिका ।

त्रिक्वर्यं हसिदे द्वे तिक्ता तिक्तं शटी वचा ।

वेणुचित्रकतालीसभार्गापद्मकजीरकम् ॥ ४३१ ॥

द्वीं शारी पिष्पलीमूलं पद्मनि त्रीणि तुम्बरु ।

देवदारु वचा चब्यं धान्यकं गजपिष्पली ।

वत्सकातिविपादन्तीश्यामापुष्करकामृताः ॥ ४३२ ॥

भागोऽपीपां सूक्ष्मचूर्णकृतानां

भागश्चार्धो माक्षिकादेय एव ।

तद्वद्वंश्या, भागद्वद्व्या परे स्यु-

रञ्जं लोहं शैलजं कौशिकश्च ॥ ४३३ ॥

संमर्थं गुटिका कार्या सूर्यचन्द्रप्रभाभिधा ।

पूर्वाङ्गे तां प्रयुज्जीत माक्षिकेण परिष्कृताम् ॥ ४३४ ॥

अनुपाने प्रयुज्जीत तकं मधु रसोत्तमम् ।

क्षीरं बदरतोयं चा शर्करामिश्रितं जलम् ॥ ४३५ ॥

घृतं मूत्रं तथा चाम्लस्वादुदादिमज्जं रसम् ।

कासे श्वासे तथा शोपमस्त्रिं पार्श्ववेदनाम् ॥ ४३६ ॥

अर्जीसि पाण्डुरोगं हलीमकम् ।

हृद्रोगं मूढकृच्छ्रं च भयथुं ग्रहणीगदम् ॥ ४३७ ॥  
 यकृत्युद्दीहाभिष्टद्विं च कृप ग्रन्थि भगवन्दरम् ।  
 श्रीष्टद्वं गण्डपालां च व्रणाकाढीव्रणानपि ॥ ४३८ ॥  
 अस्तिस्थौल्यातिकाश्यें च विद्रधीनिपिटिकामपि ।  
 नासानेत्राश्रिताद्रोगान् शिरोरोगान् सुदारुणान् ॥ ४३९ ॥  
 मुखरोगानशेषांश्च रक्तपित्तं स्वरक्षयम् ।  
 ज्वरं च सशिपातोत्थं विषयं चापि पैचिकम् ॥ ४४० ॥  
 विशति शैषिभिकाश्वैव संसृष्टान् साश्रिपातिकान् ।  
 निजानृतुभवांश्वैव ये चान्ये नात्र कीर्तिताः ।  
 तांस्तान् प्रशमयत्येषा वृक्षमिन्द्राद्यनिर्यथा ॥ ४४१ ॥

येषां स्मृतिं कान्तिमनामयत्व-

मायुःपकर्पे पवनानुलोम्यम् ।  
 स्त्रीषु प्रहर्पे बलमिन्द्रियाणा-  
 मध्येष्व कुर्याद्विधिनोपयुक्ता ॥ ४४२ ॥

अतीकारे विशल्या शुटिका।

फलत्रयं उत्पत्तिनीरकं च कुवेरसंज्ञे पलमात्रमेतत् ।  
 पलद्वयं त्रूतनधूर्तपत्न्याः कर्पककं चैव विपस्य योज्यम् ॥ ४४३ ॥  
 पलार्धमात्रं करभस्य चूर्णं ततः समेनैव गुह्येन योज्यम् ।  
 गुटी निवदा चणकमपमाणा नियोजनीया हि सदाऽतिसारे ॥ ४४४ ॥  
 चतुर्विंशतीर्णभयापहर्त्री स्मृता विशल्या शुटिकेति नामा ॥ ४४५ ॥

श्रोद्दहरी शुटिका ।

शुण्ठीसकुपुनर्वात्रिफालिकासंरेखशेफालिका-  
 मुस्तावासकनिम्बपत्रकदुकावोलाभगन्धावचाः ।  
 व्योपच्छिन्नरुहाविड्वसहिताः सर्वाः समांशा बुधे-  
 विशांशा च महोपधी परिमिता खण्डस्य विशांशकाः ॥ ४४६ ॥  
 तत्तुल्येन च गोष्ठृतेन मधुना सर्वं च संमार्दितं-  
 वदा तेन शिवाप्रमाणशुटिका श्लेष्माणमुग्रं जयेत् ।

क्षीणस्यानिलजानिहन्ति सहसा सर्वमेहांस्तथा

नाम्ना त्रोटहरी गुटी च विजया लोके च या विश्रुता ॥४४७  
कासे चन्द्रपिया गुटिका ।

चन्द्रपिया लोमशगन्धवत्यौ कदुचिकं तिक्तकरोहिणी च ।

भूनिम्बभाग्यो गिरिमलिका च समानभागं खलु सर्वद्रव्यम् ।

वासारसेनाथ गुटी विधेया सुदुस्तरं चाशु निहन्ति कासम् ॥४४८  
मुखरोगे खदिरगुटी ।

जातीफलैलादलकुहुमानि लब्ज्ञकङ्कोलकपुष्कराणि ।

वराङ्गकर्चूरयुतान्यमूनि सपानि भागानि निशाकरस्य ॥४४९॥

भागद्रयं स्यान्मूरगनाभिजायाः सपूतिकायाः खलु तुर्यभागः ।

पष्टिविभागाः खदिरस्य साराद्वागत्रयं तत्र वरेस्य दधात् ॥४५०॥

एकीकृतं धृष्टमुचन्दनेन सुकामिनीहस्ततलैः प्रमर्द्य ।

सुवासितं पुष्पचैः सुगन्धैर्वटी कृता स्यान्मुखरोगहच्छी ॥४५१॥

स्त्रीणां प्रमोदं विषुलं ददाति मुखं सुगन्धं विशदं करोति ।

युवाऽतिरेताः सुधगो जनानां प्राणप्रियः स्यादतिकामिनीनाम् ॥

कण्ठं विपञ्चीनिनदेन तुल्यं करोत्यसौ खादिरसंज्ञका वटी ॥४५२  
मुखरोगे द्विनीया खदिरगुटिका ।

पद्माहवकागुरुकुहुमैश्च तुल्यांशकैः छ्लहणशिलाविपिष्टैः ।

सर्वैः समः स्यात्त्वदिरस्य सारः सारङ्गर्दप्सफाटिकाधिवासांः ॥४५४

वल्लप्रमाणा गुटिका विधेयास्ताः सेविता ग्रन्ति कफमेहम् ।

हिङ्कामिसादाखचिपीनसांश रोगानशेषान् खलु चास्यजातान् ॥

सूताप्रेदेमसहितां पूर्वोक्तां भक्षयेत्प्रातः ।

नाम्ना खादिरवटिका कथितेष्यं सिंहगुप्तेन ॥ ४५६ ॥

१ कुहुमस्य । २ कस्तूरीकर्म्माभ्यामभिवासिता इत्यर्थः ।

बातरोगे स्वगाया गुटिका ।

त्वगेले गन्धकं चैव गुग्गुलुं समभागतः ।

कुर्याद्वातारितेन गुटिकां वातरोगिणाम् ॥ ४५७ ॥

रणयनोपेव विजयागुटिका ।

पलत्रयं हरीतक्याश्चित्रकस्य तर्थैव हु ।

एलात्वयपत्रमुस्तानां भागोऽर्थपलिकः स्मृतः ॥ ४५८ ॥

च्योपं चाध कणामूलं विषं च पलमात्रकम् ।

नागकेसरचूर्णं हु कर्पे दधाद्विचक्षणः ॥ ४५९ ॥

रेणुकार्धपलं चात्र रसस्य कर्पेव च ।

एतत्संभृत्य संभारं मूक्ष्मचूर्णं हु कारयेत् ॥ ४६० ॥

गुडस्यार्धतुलो दत्त्वा दत्त्वा सम्यग्विघटयेत् ।

ततस्तु गुटिकाः कृत्वा तस्मात्पृष्ठशतत्रयम् ॥ ४६१ ॥

एकैकां भक्षयेत्प्रातः कृताहारो यथावलम् ।

मासेन पलितं हन्ति करोत्यग्निं द्रिनीयके ॥ ४६२ ॥

शुक्रवृद्धिं दृतीये हु वलवर्णमसादनम् ।

हन्त्यष्टादश छुषानि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ ४६३ ॥

झीहानं भासकासीं च द्वाष्टवृद्धिमरोचकम् ।

अशीति वातजात्रोगान्मूत्रकृच्छ्रं भग्नदरम् ॥ ४६४ ॥

प्रमेहान्विशति चैव तथाऽशीसि गलग्रहम् ।

सर्पलृताविषं हन्ति सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४६५ ॥

योनिदोषपपस्मारमुन्मादं विषमज्वरम् ।

बलेन गजतुल्योऽसीं वेगेन तुरणोपमः ॥ ४६६ ॥

मायूरस्तु भवेदग्निराहश्रोत्रं एव च ।

चटकः स्त्रीविलासेन गृध्रदृष्टिश्च जायते ॥ ४६७ ॥

उपयोगात्परं जीवेन्नरो वर्षशतत्रयम् ।

न चान्ने परिहारोऽस्ति न चाध्वनि न मैयुने ॥ ४६८ ॥

( ग्राम्यधर्मे च कुर्वाणो भोजनं च यथेच्छया । )

विजया नाम गुटिका विख्याता रुद्रभाषिता ।  
 भक्षयन्ति नरा ये तु तेषां सिद्धिर्न संशयः ॥ ४६९ ॥  
 वातरोगे योगोत्तमा गुटिका ।

उद्युपर्णं त्रिफला क्षारी लवणान्यथ चित्रकम् ।  
 तालीसं चविकं शृङ्खी निशो द्वे गजपिप्पली ॥ ४७० ॥  
 एला त्वचं विडङ्गानि पौष्टकं नागकेसरम् ।  
 ताप्यकं दीप्यको मुस्ता समभागानि कारयेत् ॥ ४७१ ॥  
 द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्मात्रप्रयोरजः ।  
 तावच्छिलाजतुर्देयः सर्वेस्तुल्यस्तु गुगुलुः ॥ ४७२ ॥  
 संकुव्य गुटिकां कुर्यादक्षमात्रप्रमाणतः ।  
 खादेना मधुना मुक्त्वा तोयक्षीरसाशनः ॥ ४७३ ॥  
 निर्यन्ति सदा भोजयं सर्वतुषु निरत्ययम् ।  
 अशीर्ति वातजाव्रोगांश्वत्वार्दिशच पैचिकान् ॥ ४७४ ॥  
 विशति श्लैषिमकांश्वैव प्रपेहांश्वैव विशतिम् ।  
 उदराणि तथा चाष्टै श्वयथुं पवनात्मकम् ॥ ४७५ ॥  
 विशति मूत्रकृच्छ्राणि दुष्टनाडीव्रणानि च ।  
 हन्त्यष्टादश कुष्ठानि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ ४७६ ॥  
 कासं श्वासं तथा हिक्का हृच्छूलं छर्द्यरोचकम् ।  
 गुल्मांश्व पाण्डुरोगं च जयेत्पञ्च प्रकारजम् ॥ ४७७ ॥  
 चत्वारो ग्रहणीदोषाः पदश्चासि तथैव च ।  
 सर्वास्तान्नाशंयत्याशु तमः सूर्योदयो यथा ॥ ४७८ ॥  
 अर्द्धुदं गण्डमालां च विद्रधिं समगन्दरम् ।  
 हस्ते सर्वरोगांश्व वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।  
 योगोत्तमेति विख्याता गुटिका वैद्यपूजिता ॥ ४७९ ॥

प्रमेहे कर्यादिगुटिका ।

जातीफलं लोहमृताभ्रकं च ।  
 गौथुल्ये एला विपं धान्यकद्विकं च ।

तालीसपत्र त्वय नागपुष्पं तमालपत्रं कपिकच्छुधीजम् ।  
 सत्त्वं गुड्याः शुरकस्य वीजं वटी विंथ्या सितया समेता ॥ ४८१  
 वातप्रमेहं सकर्कं सपित्तं खासं च कासं वहुसभिपातान् ।  
 वलं च हीने स्वरपङ्गजाङ्गं निहन्ति कामं खलु दीपयन्ती ४८२

युज्मे गुड्याटकाः ।

गुडविश्वांपथपथ्यामागधिकादार्दिमः कृता गुटिका ।  
 विनिहन्ति भक्ष्यपाणा गुल्माशोवहिसादगदान् ॥ ४८३ ॥  
 पाण्डुरेण धारकटकाः ।

शृङ्खलेवरविड्गानि पिष्पली मरिचानि च ।  
 नीलीपत्रं पृथक्पर्णी हरिद्राद्रयमेव च ॥ ४८४ ॥  
 मञ्जिष्ठा भद्रमुस्तं च शिश्रुवीजानि चित्रकम् ।  
 देवदारु वचा दन्ती चिफला हस्तिपिष्पली ॥ ४८५ ॥  
 शालिपर्णी च मूर्दा च द्राक्षा कडुकरोहिणी ।  
 शक्तवीजं सभुखातं वृहत्यौ द्वे दुरालभा ॥ ४८६ ॥  
 शतावरी विशल्या च पाठा भागीं हरेणुका ।  
 एतानि समभागानि सर्वाण्येकत्र कारयेत् ॥ ४८७ ॥  
 यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विगुणं स्पादयोरजः ।  
 क्षारं च यावश्यकानां ततो द्विगुणमावपेत् ॥ ४८८ ॥  
 गोमूत्रसंयुतान्कुर्याद्विकानक्षसंमितान् ।  
 खादेदेकं ततो द्वी वा सुखं चाशृ पिवेज्जलम् ॥ ४८९ ॥  
 अर्शासि ग्रहणीदोपं पाण्डुरोगं भगन्दरम् ।  
 श्वययुं खासकासौ च कृमिदोपांशं नाशयेत् ॥ ४९० ॥  
 व्याधितस्य वर्ल इन्त्वा गंवां मूत्रेण दापयेत् ।  
 पाण्डुरोगं निहन्त्याशु व्रह्मदण्ड इवोद्धतम् ॥ ४९१ ॥  
 वटकाः क्षारपूर्वास्तु प्रयोज्याः सिद्धिमिच्छता ।  
 एष शङ्करणो योगो वैद्यानामर्थकृत्या ॥ ४९२ ॥

कुष्ठे पथ्यावटकाः ।

ध्यां सेन्द्रयवां सकिंशुकफलां साकीं तथाऽर्वतर्कीं  
व्याधिघ्नेन तु योजितां हुतभुजा सारुप्करां बाकुचीम्।  
द्वच क्रिमिशत्रुणाऽप्युपगतामैककटद्वानिमान्  
गोमूत्रेण विमृद्ध तुल्यतुवरान्कुष्ठी वटान्भक्षयेत् ॥ ४९३ ॥

निहन्ति हतनासिकाकरजकण्पादाङ्गुलि-  
क्षरद्वधिरपूतिपूयपरिजग्धजन्तुवरणान् ।  
प्रभिन्नचिरलक्षितस्वरमशेषकुष्ठं मह-  
निहन्ति कुरुतेऽरुणार्कवपुं नरं योगतः ॥ ४९४ ॥

ज्वरे फलत्रिकादो मोदकः ।

फलत्रिकगुडव्योपशर्करात्रिवृताकृतम् ।  
मोदकं भक्षयित्वाऽनुपिवेत्कोषणं जलं पुनः ।  
पार्वशूलेऽरुचौ कासे ज्वरे चानिलसंभवे ॥ ४९५ ॥

रसायने त्रिफलादा वटकाः ।

त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दश संहरेत् ।  
सप्त चैव विड्वानां लोहचूर्णं पलत्रयम् ॥ ४९६ ॥  
पलानि दश बाकुच्याः शतं भट्टातकात्था ।  
शिलाजतु पलदून्दं गुग्गुलोस्तु पलद्रयम् ॥ ४९७ ॥  
पलं पुष्करमूलस्य पलार्धं तु फलस्य च ।  
ग्रन्थिकाश्री मरीचं च पिष्पल्यो विश्वभेषजम् ॥ ४९८ ॥

त्वक्पत्रं कुङ्गुर्यं मुस्ता नागकेसरभेव च ।  
यष्टीपथुकराध्रं च कार्पिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ४९९ ॥  
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावत्त्वण्डं प्रदापयेत् ।  
पलिकान्वटकान्कुर्यात्सर्वव्याधिविनाशनान् ॥ ५०० ॥

एकंकं भक्षयेत्प्रातर्ययेषु चात्र भोजनम् ।  
श्रीहमर्शीस्यतीसारं वातगुल्मं भग्नदरम् ॥ ५०१ ॥

तु चैव सर्वाणि सप्तरात्राद्यपोदति ।

एतत्सर्वं प्रयुज्जानो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ ५०२ ॥

अदचं लाजापो मोदकः ।

द्वादशाएव चतुर्थिं शब्देकार्धार्धसमायुतैः ।

लाङ्गस्तुगाति नितहीकको लब्ध्योपत्रिजातकः ।

सचन्द्रा मोदका रुच्याः क्रपाद्विगुणशर्कराः ॥ ५०३ ॥

त्रिफलाद्या गुटिका ।

त्रिफलाद्यदराणां स्याद्योपस्य च पलद्वयम् ।

कर्पूरकर्पो लाजानां पलद्वादशकं भवेत् ॥ ५०४ ॥

एलात्यवपत्रकाणां तु पलं स्याद्वंशरोचना ।

पलाद्विकाऽम्लवेत्रश्च चतुर्पल उदाहृतः ॥ ५०५ ॥

चूर्णाद्विगुणस्वण्डं स्याद्वृद्या वमिहरा परम्

यक्षमाणं रक्तपितं च ज्वरं कासं च नाशयेत् ॥ ५०६ ॥

अश्विं विश्रकगुटिकाः ।

चित्रकस्य पलं दत्त्वा त्रिवृतोऽर्धपलं तथा ।

कणाकर्पो गुडस्याएषौ पलानि समुपाहरेत् ॥ ५०७ ॥

विंशतिश्च हरीतकयो गुटिका दश कारयेत् ।

दशमे दशमे चाह्नि त्वेकैकां भक्षयेत् सुधीः ॥ ५०८ ॥

मण्डलानि च कण्ठूथं व्यर्थांसि ग्रहणीं जयेत् ।

प्रमेहे वामदेवेन वधिता गुटिका ।

कदुचिकं वचा सुस्ता विडङ्गं चित्रकं विषम् ॥ ५०९ ॥

एतानि समभागानि पद्ध्या च द्विगुणा विपात् ।

पञ्चत्रिशत्तुदाद्वागाः काथयेन्मृदुनाऽप्निना ॥ ५१० ॥

कोलमाना गुटी खेपा हन्ति मेहं विशेषतः ।

मन्दाप्रिमापवातं च लालामेहं सगुलमकम् ॥ ५११ ॥

गुग्गुलुकुट्टवादर्धं ककुभत्वगयोर्नोविडङ्गानि ।

भल्लातकगोक्खुरकौ त्रिवृता त्रिफला द्वितीयार्धम् ॥ ५१२ ॥

भुवत्वैनां गुटिकां यथेष्टुचरितः पण्मासयोगात्पुमान्  
सन्ध्याधीन्सभगन्दरान्सपिटिकानशार्णसि दुष्टव्यान् ।  
खालित्यं पलितं जरामपि तनोर्जित्वा प्रदीप्तानलः  
सौभाग्यास्तसुखो निरामयतनुर्जिवेत्सपानां शतम् ॥५१२॥

शोफे लघुत्रिफलागुगुलगुटिका ।

गुगुलखिफला कृष्णा पञ्चनेत्रत्रिभागिकाः ।  
गुटिकाः शोपगुलमार्णभगन्दरवतां हिताः ॥ ५१३ ॥

वातव्याधो पृथुत्रिफलादा गुगुलगुटिका ।

त्रिफला हपुपा मुस्तं चविका चित्रकः शटी ।  
यवानीग्रन्थिकब्योपसौवर्चलदुरालभाः ॥ ५१४ ॥  
अजमोदा विडङ्गं च दाढिमं साम्लवेत्सम् ।  
वापिका पौष्करं दारु त्वगेलापत्रकेसरम् ॥ ५१५ ॥  
एपामर्धपलैर्भागैः पलानि दश गुगुलोः ।  
संमिश्र्य सर्पिपा सार्धं गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ५१६ ॥  
भक्षयित्वा ससर्पिकां जीर्णे च प्रमिताशनम् ।  
वातश्लेष्माविकारेषु नाढीदुष्टव्येषु च ॥ ५१७ ॥  
श्लेष्मकासे च शोफे च योगमेनं प्रयोजयेत् ।  
जठरे योनिश्चलेषु त्वन्तर्भूतं च विद्रधिम् ॥ ५१८ ॥  
पार्वशूलं कृमीन् गुलमान्प्रमेहान् छर्धरोचकाँ ।  
केवलानिलजाग्रोगानशीतिं श्लैष्मिकानपि ।  
विशर्ति नाशयत्याशु रसायनमनुच्चमम् ॥ ५१९ ॥

गुलमे विश्रादा गुटिका ।

त्रिवृत्पलं हिङ्कर्पस्त्रिक्षारस्य पलत्रयम् ।  
यवानीमरिचाजाजीधान्यकं शितिवारकम् ॥ ५२० ॥  
उपकुञ्चीविडङ्गाजमोदाश्वार्धपलोन्मिताः ।  
पृथवपलद्वयं दद्यादम्लवेत्सजं रजः ॥ ५२१ ॥

गुटिकां कारयेद्विपक् ।

पिवेत्सीरेण मन्थैर्वा सर्पिपाऽम्लैः सुखाम्बुना ॥ ५२२ ॥  
 काङ्क्षायनेन गुटिका संसोक्ता गुलमनाशिनी ।  
 कफजं तु गवां मूत्रैः पयसा पित्तसंभवम् ॥ ५२३ ॥  
 त्रिफलारसमूत्रैस्तु निहन्यात्सान्निपातिकम् ।  
 रक्तगुलमे तु नारीणामुट्टीदुम्येन वा पिवेत् ॥ ५२४ ॥  
 हृष्णादा गुटिका ।

शुण्ठीकृष्णाशताहानां साभयानां पलं पलम् ।  
 गुडस्य पदपलान्येषा गुटिका भ्रमनाशिनी ॥ ५२५ ॥  
 इति धीर्वैथसोऽलप्रथिते गदनिग्रहे गुटिकाधिकारथतुर्थः समाप्तः ।

### अथातः पञ्चमो लेहाधिकारः प्रारम्भते ।

अर्शादि पथ्यावलेहः ।

इयामागुडच्यामलचित्रकाणां भागान् पलानां शतसंमितांश ।  
 सर्वान्पूयवसंपरिकल्प्य युक्त्या द्रोणद्वयेऽपां तु विपाच्य पात्रे ॥ १ ॥  
 ग्रीहे द्वे मन्दहुताशने च पादावशिष्टे विधिवद्विधिशः ।  
 पूयः पचेत्तं तुलया गुडस्य शुलेन वस्त्रेण विशोधितस्य ॥ २ ॥  
 वृणीकृत्यर्जिरक्युग्मदन्तीपाठानिष्ठृपूषणग्रन्थिकाहैः ।  
 गन्याजमोदेभक्त्यायवानीभद्रातकाख्यैश्च पलमपाणैः ॥ ३ ॥  
 पस्थत्रयेणाथ हरीतकीनामैकाख्यमालोङ्ग्य शर्नस्तु दर्व्या ।  
 ज्ञात्वा सुपकं रसगन्धवर्णंः कुम्भे निदृश्यात्रिसुग्रन्थियुक्तम् ॥ ४ ॥  
 पस्थार्धयुक्तं मधुनोऽत्र शीते भद्रातकास्थिप्रभवाच्च तैलाद् ।  
 दत्त्वा पलार्थं यवशूकजस्य चार्णो पलान्येव सितोपलायाः ॥ ५ ॥  
 एनं लिहेदक्षफलप्रमाणमशार्द्धविकारी प्रसमीक्ष्य वहिष् ।  
 कुष्ठानि सर्वाणि निहन्ति हिक्कां श्वासं च कासारुचिपाण्डुरोगान्  
 मन्दानलत्वं ग्रहणीविकारान् गुलमानसशोफानुद्रामयांश ।  
 शूलानि यस्माणमसूक्ष्मद्वृत्तिं पथ्यावलेहोऽयामिति प्रदिष्टः ॥ ७ ॥

अर्शसि चित्रकावलेहः ।

चित्रकस्य शतं दद्यात्तचुल्यो ग्रन्थिको मतः ।  
 पञ्चाशदशमूलस्य शेपान् पञ्चपलान् पृथक् ॥ ८ ॥  
 बलां भाङ्गीं शटीं पाठां पौकरं मूलमेव च ।  
 चतुर्दोणेऽभसः पक्त्वा द्रोणशेषे तथैव च ॥ ९ ॥  
 पचेद्वृद्धशतं दत्त्वा लेहवत्साधु साधयेत् ।  
 चतुर्पलं तु पिप्पल्यास्तुगार्भीर्याः पलद्वयम् ॥ १० ॥  
 त्रिजाताच्च पलं चैकं मरिचस्य पलं तथा ।  
 सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा दब्या सम्यग्विघटयेत् ॥ ११ ॥  
 पलमात्रं ततः खोदेत्पूर्णहुलमोदरार्शसि ।  
 हन्ति यक्षमाणमत्युग्रं शीतातिं चाम्लपित्तकम् ॥ १२ ॥  
 भारद्वाजेन संप्रोक्तो लेहश्चित्रकसंज्ञकः ।

अर्शसि चित्रकावलेहः ।

तोयद्रोणे चित्रकमूलतुलार्धं  
 साध्यं यावत्पाददलस्थमयेदम् ।  
 अष्टौ दत्त्वा जीर्णगुडस्य पलानि  
 काथ्यं भूयः सान्द्रतया समवेतम् ॥ १३ ॥

त्रिकुणिमिश्रिपथ्याकुपुसुस्तावराङ्ग-  
 कृमिरिपुदहनैलाचूर्णकीणोऽघलेहः ।  
 जपति गुदजकुपुर्णीहुलमोदराणि  
 प्रवलयाति हुतादां शब्दभ्यस्यमानः ॥ १४ ॥

रक्तपिते कूप्माण्डकावलेहः ।

शतं पलानि कूप्माण्डात् सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।  
 पचेत्तसे धृतप्रस्थे पात्रे ताम्रमये द्वेष्टे ॥ १५ ॥  
 यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं सिषेत् ।  
 पिप्पलीशृङ्गवेराच्च द्वे पले जीरकस्य च ॥ १६ ॥  
 त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्धकम् ।  
 न्यसेचूर्णांकृतं तत्र दब्या संघटयेत्ततः ॥ १७ ॥

प्रदृष्ट्यां कल्याणको शुभावलेहः ।

प्रस्थत्रये ह्यामलकीरसस्य शुद्धस्य दन्त्वाऽर्धतुलां गुडस्य ।  
चूर्णांकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योपेभकृष्णाहपुपाजमोदैः ॥ ४० ॥  
विद्वस्तिन्युत्रिफलायवानीपाठाग्रिधान्यैश्च पलममाणैः ।  
दन्त्वा त्रिवृज्जूर्णपलानि चाष्टौ शाष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ४१ ॥  
तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टस्त्रिसुगन्धियुक्तम् ।

अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सधासकासस्वरभेददोपाः ॥ ४२ ॥  
पाण्डूदरं गुलमभगन्दरात्मेदः समुत्थं च विकारजातम् ।  
शाम्यन्ति, चायं चिरमन्दवक्षेहेत्वस्य पुंस्त्वस्य च दृद्धिहेतुः ॥ ४३ ॥  
स्त्रीणां च वन्ध्यामयनाश्रानः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रतीतः

भृष्टेष्टत्रिवृतां तैले त्रिसुगन्धिपिञ्चुं पिञ्चुम् ।

सिद्धे विधेयपत्रैव गुडे कल्याणपूर्वके ॥ ४४ ॥

काश्ये पश्चजीरकावलेहः ।

कुस्तुम्बयों यवानी समरिचमगधा दीप्यकाजाजिचव्याः

पथ्या इयामाहमूलं कृमिहरहपुपे कारवी सातला च ।  
शुण्डीवन्दाकनागोद्भवशतकुसुमा मेधिका चाक्षभागाः

कंसेष्टाद्भागयुग्मं सकलगणमिदं चूर्णयेदौपथानाम् ॥ ४५ ॥

सर्पिः प्रस्थं प्रदद्याद्बुद्धपलदशभिः साधयेन्मन्दवक्षी

क्षीरमस्थैश्चतुर्भिः स च सकलगदान्दन्ति युक्तस्त्रिगन्धैः ।

लहोऽयं चानिलघ्रः कृशवलजननः शोधनश्चार्तवस्य

या स्त्री गर्भं न धते जनयति तनयं दीर्घजीवानुयुक्तम् ॥ ४६ ॥

योनिरोगे पश्चजीरकावलेहः ।

जीरकं हपुपा धान्यं यवानी वद्राणि च ।

शतादा मेधिका हिङ्गपत्रिका कामटृक्षकम् ॥ ४७ ॥ ॥

पिष्पली पिष्पलीमूलमनमोदा च वाच्पिका ।

चित्रकं च पलांशानि तथा चैव चतुष्पलम् ॥ ४८ ॥

कसेरुकं तथा शुण्ठी कृष्णा जीरकमेव च ।  
 गुदस्यार्धशतं दद्याद्युतप्रस्थं तथैव च ॥ ४९ ॥  
 क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृदभिना पचेत् ।  
 पञ्चनीरक इत्येप सूतिकानां भशस्यते ॥ ५० ॥  
 नारीणां गर्भकामानां प्रदुषे चैव मारुते ।  
 विद्यातिव्यापदो योनेः कासं श्वासं स्वरक्षयम् ॥ ५१ ॥  
 दाँगीन्ध्यं मूत्रकृच्छ्रं च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।  
 हन्ति, पीनोन्नतद्वुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥ ५२ ॥  
 उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीकलिवर्जिताः ।  
 श्रीबाहुशालो गुदावेदः ।

त्रिवृत्तेजस्वती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकः शटी ।  
 गवाक्षी मुस्तकं विलवं विडङ्गानि हरीतकी ॥ ५३ ॥  
 पलोनिमत्तानि चैतानि भछातकपलाष्टकम् ।  
 पलानि दृद्धदारोः पद् पोडशैव तु सूरणात् ।  
 जलद्रोणद्रये काथ्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ ५४ ॥  
 पूतं रसं तु तं दन्त्वा काथेभ्यस्त्रिगुणो गुडः ।  
 लेहं पचेदि तं यावदर्वालेपं ब्रजेद्धुधः ॥ ५५ ॥  
 अवतार्य ततः पश्चाद्यूर्णानीमानि दापयेत् ।  
 त्रिवृत्तेजस्वतीकद्रीचित्रकं द्विपलांशकम् ॥ ५६ ॥  
 एलात्वकपत्रनामाहं पद्मपलं परिकीर्तितम् ।  
 द्राविंशत्त्र पलानीह चूर्णीकृत्य भद्रापयेत् ॥ ५७ ॥  
 ततो मात्रां प्रयुक्तीत जीर्णे क्षीरं रसायनम् ।  
 पञ्चगुलमान् प्रमेहांश्र पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ५८ ॥  
 जयेदशार्णसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ।  
 अयं सर्वान्गदांशैव कल्याणो लेह उत्तमः ॥ ५९ ॥  
 दुर्नामान्तकरशैव मेधाजनन उत्तमः ।  
 गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्तिः ॥ ६० ॥

सर्वरोगं निहन्त्याथु एकमिन्द्राशनिर्यथा ।

यत्यादेष विभीतश्चावलेदः ।

प्रथं विभीतकानामनस्थ्रो दि साधयेद्रवां मूर्चे ।

लेहवदयलेहो मधुसदितः भासकामदरः ॥ ६१ ॥

यादेष्यस्यहरीतश्चयवलेदः ।

द्विपञ्चमूलेभकणात्मगुप्ताभार्गीश्वरीपुष्करमूलविभाः ।

पागामृताग्रन्थिकश्चापुष्पीरास्त्राग्न्यपामार्गभल्यवासान् ॥ ६२ ॥

द्विपाञ्जिकानेव यवाढकं च हरीतकीर्णा च शतं गुरुणाम् ।

द्रोणे जलस्याढकसंयुते तु काथीकृते पूतचतुर्थभागे ॥ ६३ ॥

पचेचुलो शुद्धगुडस्य दत्त्वा पृथक्सर्वलात्कुडवं घृताच ।

चूर्णं च तावन्मगधोद्वानामनेकरोगीघमथाथु हन्यात् ॥ ६४ ॥

तद्राजयक्षमग्रहणीप्रदोपशोफाग्रिमान्धस्वरभेदकासान् ।

पाण्डुमयश्चासशिरोक्षिरोगान्हद्रोगादिक्षाविप्रमज्वरांश्च ॥ ६५ ॥

मेघावलोत्सादमतिश्रदं च चकार चेतं भगवानगस्त्यः ।

कादे द्विनीयोऽगस्त्यहरीतश्चयवलेदः ।

दशमूलीं स्वयहृसां शङ्खपुष्पीं शर्टीं वलाम् ।

हस्तिपिष्पत्यपामार्गपिष्पलीमूलचित्रकान् ॥ ६६ ॥

भार्गीं पुष्करमूलं च द्विपलाशं यवाढकम् ।

हरीतकीशतं चैकं जले पञ्चाढके पचेत् ॥ ६७ ॥

यवैः स्ववैः कपायं तं पूतं तज्जाभयाशतम् ।

पचेहृडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ॥ ६८ ॥

तैलाच पिष्पलीचूर्णात्सिद्धे शीते च माक्षिकात् ।

कुडवं, पलमानं च चतुर्जीतं समावपेत् ॥ ६९ ॥

लिद्याढे चाभये नित्यं ततः खादेद्रसायनात् ।

बर्लीं च पलितं हन्याद्वर्णायुर्वलवर्धनम् ॥ ७० ॥

पञ्च कासान् क्षयं श्वासं हिक्कां च विप्रमज्वरम् ।

गुलमेहग्रहण्यशोहद्रोगारुचिपीनसान् ॥ ७१ ॥

अगस्त्यविदितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ।  
 यथोदिष्टं गुणं कुर्वन्नित्तं च कुरुते यदा ॥ ७२ ॥  
 तदा सायं गुढो योज्य एष एवाल्पमात्रया ।  
 पादशेषे कपायेऽत्र स्वन्ना विद्याद्वरीतकीः ॥ ७३ ॥  
 भर्जितास्तिलतैलस्य कुडवे गोदृतस्य वा ।  
 पचेत्ताम्रमये पात्रे हापाकाळोहितोदयात् ॥ ७४ ॥  
 फलानां तु शतं सहृदया चातुर्जातं पृथक्पलम् ।  
 बद्धा पोटलके पथ्या यवान् स्विन्नांश्च कारयेत् ॥ ७५ ॥  
 वाहिष्ठृतक्यवच्छेदः ।

यवाढकं सप्त जलाढकानि हरीतकीनां च शतं गुरुणाम् ।  
 दन्त्यश्वगन्धाचिरविलवमूलं भल्लातकांशापि च पक्विलवम् ॥ ७६ ॥  
 उभे हरिद्रे गजपिण्डली च मूलानि पत्राणि च चित्रफलस्य ।  
 पिण्डलयपामार्गमधात्मगुप्ता सर्वाणि कुर्यात्पलसंमितानि ॥ ७७ ॥  
 लीहे समादाय पचेत्कटाहे द्विपञ्चमूलं च यवममाणम् ।  
 मृदुभिसिद्धांश्च यवान्विदित्वा शनैः प्रयवादवतारयेत् ॥ ७८ ॥  
 निःस्ताव्य तेनैव जलेन सम्यक् सार्वी पुराणस्य शतं गुदस्य ।  
 भूयो गुरुणामय तत्र दद्याद्वरीतकीनां च सहस्रमन्यत् ॥ ७९ ॥  
 प्रस्थं पुराणस्य घृतस्य चैव नवस्य तैलस्य च तावदेव ।  
 शीते मधु स्तैहसर्वं च दद्यात्पलानि चाषावथ पिण्डलीनाम् ॥ ८० ॥  
 पद्ध्ये सलेहे त्वय भक्ष्यमाणे सर्वा रुजो नाशयतो हि मासात् ।  
 मासद्येनैव च नेत्ररोगान् हतो हि गार्धं लभते च चक्षुः ॥ ८१ ॥  
 मासैत्विभिन्नाशयतो हि कुष्ठं विशीर्णतां चाङ्गुलिनासिकानाम् ।  
 भगन्दरश्लीपदयातगुल्मानशीस्यथो मासचतुष्टयेन ॥ ८२ ॥  
 केशान् घनान्मुक्तिदीर्घनीलान्स पञ्चभिर्श्वं करोति मासैः ।  
 सहस्रसहृदयां च तथोपयुज्य चलं लभेतोत्तमकुअरस्य ॥ ८३ ॥  
 स्वरं मयुरस्य जवं हयस्य शरच्छशाङ्गस्य तथैव कान्तिम् ।

१ प्रम्भेहरुणितश्चिद्वय ऐहे च पठप्रमाणं भक्षयेदिल्पयः ।

सौभाग्यमेधास्मृतिसच्चतेजःशोभान्वितः पद्मसमानगन्धः ॥ ८४ ॥  
जीवित्समानां च सहस्रमन्यत्थयोगकालादिति सिद्धवाक्यम् ।  
न चान्नपानेऽध्वनि मैथुने वा नरेण किञ्चित्परिहार्यमस्मिन् ॥  
समीक्ष्य कल्पं तु रसायनानां चकार योगं भगवान्वासिष्ठः ॥ ८५ ॥

वासाहीतक्यवलेदः ।

तुलामादाय वासायाः संकाश्याष्टगुणे जले ।  
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ ८६ ॥  
गुरुणामभयानां तु खण्डाच्छुद्धात्तथा शतम् ।  
शीतीभूते निंदध्यात्तु क्षौद्रस्याष्टौ पलानि च ॥ ८७ ॥  
वंशोद्धवायाश्रत्वारि पिष्पल्यर्धपलं तथा ।  
चातुर्जीतपलं चैव सर्वदा हन्ति सेवितः ॥ ८८ ॥  
विद्रधिं जडरं गुलमं रक्तपित्तं मुदारुणम् ।  
श्वासं क्षयं तथा कासं तृष्णाहृद्रोगपीनसान् ॥ ८९ ॥  
पलार्धं भक्षयेदस्य यथेष्टुं चात्र भोजनम् ।

गुरुमे दन्तीहरीतक्यवलेदः ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ॥ ९० ॥  
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ।  
अष्टभागावशेषं च रसं पूतमधिश्रयेत् ॥ ९१ ॥  
दन्तीसर्वं गुडं पूतं क्षिपेत्तत्राभयाश ताः ।  
तैलार्धकुडवं चैव त्रिवृतायाश्रतुष्पलम् ॥ ९२ ॥  
पलार्धं चूर्णितं दधात् पिष्पलीविश्वभेषजम् ।  
लेहवत्साधयेत्तं च शीते तैलसर्वं मधु ॥ ९३ ॥  
क्षिपेचूर्णं पलं चैकं त्वगेलापत्रकेसरात् ।  
ततो लेहपलं लिद्याजग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ॥ ९४ ॥  
मुखं विरिच्यते स्त्रिघो दोपान् प्रश्नमयत्यलम् ।  
गुलमं भयथुमशीसि पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ९५ ॥

हृद्रोगं ग्रहणीदोपं कामलां विपमज्वरम् ।  
कुष्ठं श्रीहानमानाहं तथा हन्त्युपसेवितः ॥९६ ॥  
न चात्र परिहार्य स्याद्गोज्यो मांसरसौदनः ।  
कासे व्याघ्रीहरीतक्यवर्णेहः ।

व्याघ्रीशतं हरीतक्यो दत्त्वा च शतसंमिताः ॥ ९७ ॥  
जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागावशेषिते ।  
आलोड्यार्धतुलां तस्मिन् गुडस्य त्वभयाश्च ताः ॥९८॥  
प्रक्षिप्यास्मिन् धनीभूते त्वगेलापत्रकेसरम् ।  
मगधोपणसंयुक्तं पालिकं, चार्धकार्पेकम् ॥ ९९ ॥  
यवक्षारं च संचूर्ण्य तस्मिस्तत्त्वक्षिपेत्पुनः ।  
मधुनः पलपद्केन युक्तः कासामयापहः ॥ १०० ॥  
स्वरवर्णावहः पुंसामग्रेदीसिकरः परम् ।  
रुद्धकासे द्वितीयो व्याघ्रीहरीतक्यवर्णेहः ।

समूलपुण्यच्छद्कण्टकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिप्लुतां च ।  
हरीतकीनां च शतं विदध्यादथात्र पक्त्वा चरणावशेषम् ॥१०१  
गुडस्य दत्त्वा शतमेतद्गौ विपक्षुत्तार्य ततः सुशीते ।  
कदुचिकं च त्रिपलभ्रमाणं पलानि पद्मपुण्यस्य तत्र ॥१०२॥  
क्षिपेचतुर्जातिपलं यथाग्नि मयुज्यमानो विधिनाऽवर्णेहः ।  
वातात्मकं पित्तफोद्धवं च द्विदोपनं कासमपि त्रिदोपम् ॥१०३  
क्षतोद्धवं च क्षयजं च हन्यात्सपीनसञ्चासमुरःक्षतं च ।  
यक्षमाणमेकादशरूपमुत्रं भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥१०४॥  
ग्रीहोदरे रोहीतक्यवर्णेहः ।

पक्त्वा शतं रोहीतक्यलानां पथ्यागतं माहिपमूत्रमग्नी ।  
पादावशेषे खलु पञ्चकोलमुत्सूज्य मूत्रे सह दन्तिनीभिः ॥१०५  
भूयः पचेद्यावदुपैति लेहं पथ्याद्यर्थं नित्यमयोपयुज्य ।  
पश्चात्तिष्ठेदितं हिताशी ष्ठीहोदरं हन्ति यकृत्र शीघ्रम् ॥१०६

शोके पुनर्नवहरीतश्यवलेहः ।

प्रस्थं पुनर्नवायायास्तु चित्रकस्य तथैव च ।

पाठानागरदत्तीनां भागान्दशपलोन्मितान् ॥ १०७ ॥

दशमूलतुलार्थं तु पव्यानां शतमेव च ।

चतुर्गुणेऽभसः पवला पूते पादावशेषितम् ॥ १०८ ॥

गुडस्यकां तुलां क्षिप्त्वा लेहवत्साधु साधयेत् ।

क्षिपेचूर्णकृतं तत्र त्रिजातं त्रिकदुं तथा ॥ १०९ ॥

नागेक्सरसंयुक्तं पलांगमुपकल्पितम् ।

शीतीभूते ततो दधात्कुट्वं माक्षिकस्य च ॥ ११० ॥

अतो लेहपलं लीढ़ा पव्यां चेकां च भसयेत् ।

शोफगुल्मोदराशोष्ट्री पुनर्नवहरीतकी ॥ १११ ॥

शोके कंषहरीतश्यवलेहः ।

द्रिपञ्चमूलस्य तुलाकपाये कंसोऽभयानां च शतं गुढाच ।

लेहे मुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योर्णं त्रिसौंगन्ध्यमुपस्थिते च ॥

प्रस्थार्थमात्रं मधुनः मुग्निते किंचिच्च चूर्णादपि यावश्यकात् ।

एकां ततः प्राण्य तथा च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति भययुं प्रवृद्धम् ॥

कासज्वरारोचकमेहहिकाष्ट्रीहविदोपोदरपाण्डुरोगान् ।

काश्यामवातानस्तुगम्लपितवैवर्ण्यमृतानिलथुकदोपान् ॥ ११४ ॥

शोके इरीतश्यवलेहः ।

दशमूलकपायस्य कंसे पव्याशतं पचेत् ।

दत्त्वा गुडतुलां तस्मिँलेहे दधात्सुचूर्णितम् ॥ ११५ ॥

त्रिजातकं तथा व्योर्णं किंचिच्च यवश्यकजम् ।

प्रस्थार्थं च हिमे क्षीद्रात्स निहन्त्युपयोजितः ॥ ११६ ॥

मद्ददशोफज्वरमेहगुल्मकाश्यामवाताम्लकरक्तपिचम् ।

वैवर्ण्यमृतानलथुकदोपव्यासाशचिष्टीहगरोदरांश् ॥ ११७ ॥

धर्माः पिनयवेष्ट्रकस्त्रीतकथवलेहः ।

चित्रककपायपलशतमृताधात्रीरसं च तुल्यांशम् ।

संमिश्र्य गुडशतं च द्रिपञ्चमूलीकपायेण ॥ ११८ ॥

तच्चुल्येन हरीतव्याढकमेकं विपाच्य गुडपाकम् ।  
 अर्धप्रस्थं मधुनस्तस्मिन्दत्त्वा ततोऽन्येषुः ॥ ११९ ॥  
 द्वे द्वे पले निदध्यादेलात्वपत्रत्रिकटुकानाम् ।  
 सयवक्षारार्धपलं यथापि पश्चात्मयुज्जीत ॥ १२० ॥  
 एतद्रसायनोचममभिभ्यामग्निवृद्धये प्रोक्तम् ।  
 उपयुक्तवतां पुंसामपि काष्ठुरुणानि जीर्णिन्ति ॥ १२१ ॥  
 अर्शःश्वासभगन्दरकासकृमिशोफङ्गुष्टगुलमांथ ।  
 मासद्रयोपयोगादेतद्विनाशयत्प्रवृद्धिमपि ॥ १२२ ॥  
 रोगानीकसमेतं विशेषतो इन्ति राजयक्षमाणम् ।  
 अजितमपि भेषजशतैः पीनसरोगं त्यहाजयति ॥ १२३ ॥

मःदामौ द्वितीयश्वित्रहरीतव्यवलेहः ।

चित्रकपलशतमभिनवमाहृत्य कपायमेव कुर्वति ॥  
 धात्रीरसस्य पलशतममृतायाः स्वरसमेव तच्चुल्यम् ॥ १२४  
 दशमूलस्य पलशतमपृष्ठविंशत्तथा जलद्रोणे ।  
 अभयाढकं च भिपजा साध्यं पूते कपायेऽस्मिन् ॥ १२५  
 शुद्धगुडस्य शतं स्याद्रसेन चालोङ्घ्य सपदि तत्रैव ।  
 अभयाश्व ताः समस्ता मृदुना ज्वलनेन मार्दवं नेयाः ॥ १२६  
 मधुनः पलानि पोडश तस्मिन्देयानि शीतलीभूते ।  
 त्वकपत्रपरिचकेसरमागधिकैलापले द्वे स्युः ॥ १२७ ॥  
 यवक्षारपलैकमेतत्प्राश्याग्निमात्रया विद्वान् ।  
 जरयति तृणकाष्ठान्यपि त्रिसप्तदिवसोपयोगेन ॥ १२८ ॥  
 कासश्वासभगन्दरकुष्टान्यपृष्ठादशोदराण्यष्टौ ।  
 मासोपयोगादेतत्क्षतक्षयं इन्ति राजयक्षमाणम् ॥ १२९ ॥  
 पञ्चोऽस्यपट्टतां च याति वर्षमात्रोपयोगेन ।  
 मुरलोकरोगनिचयमशमनकरणीकलक्ष्यमादात्म्यी ॥ १३० ॥  
 दिव्यं रसायनमिदं कृतवन्ताविभिन्नी देवीं ।

इलीमके आमलकावलेहः ।

रसमामलकानां तु सुशुद्धं यश्रपीदितम् ।

द्रोणं पचेत्तु मृद्गयी सत्र चेमानि दाष्टयेत् ॥ १३१ ॥

चूर्णितं पिपलीप्रस्थं मधुकद्विपलं तथा ।

प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः कल्कपेपितम् ॥ १३२ ॥

शृङ्गवेरपले द्वे च तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् ।

तुलाधीं शर्करायाश्च तद्वनीभूतमुद्भरेत् ॥ १३३ ॥

मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत्पलसंमितम् ।

इलीमकं च पाण्डुत्वं कामलां चापकर्षति ॥ १३४ ॥

कामलायां विद्वान्यवलेहः ।

विद्वन्नत्रिफलामुस्तमधुकं कदुरोहिणी ।

अयोरजो हरिद्रे च विवकं गुडशर्करे ॥ १३५ ॥

खदिरस्य कपायेण चूर्णान्येतानि साधयेत् ।

मृद्गयिसिद्धं तं लेहं लेहयेन्मधुसर्पिणा ॥ १३६ ॥

स लेहः कामलां हन्यादपि संवत्सरोत्प्रिताम् ।

नाशयेत् पाण्डुरोगं च श्वयशुं चापि पैत्तिकम् ॥ १३७ ॥

क्षये हर्यतश्यवलेहः ।

भार्गीजटापलशतं सलिलार्मणाभ्यां

युक्तं च मूलतुलया सहितं विपाच्य ।

पादस्थिते तु शतमत्र हरीतकीनां

पत्तन्यमुज्जवलगुडस्य शतेन सार्थम् ॥ १३८ ॥

उचार्यं तत्र शिशिरे मधुनः पलानि

चत्वारि च त्रिगुणितानि पलत्रयं च ।

च्योपं त्रुटित्वगिभकेसरपत्रकाणा-

. मेपां पलं खलु निधेयमथोपयुज्य ॥ १३९ ॥

१. मूलतुलयेति दशमूलतुलयेत्यर्थः ।

भासं सकासमपि शोपमथातिहिका-

मेकाहिकं ज्वरमपीनसमुत्कर्तं च ।

हन्याद्रसायनमिदं हि पुरन्दरस्य

श्रोत्कं सदस्वकरपुत्रभिपग्वराभ्याम् ॥ १४० ॥

अर्द्धधि कुटजावलेहः ।

तुलां कुटजमूलस्य जक्षद्रोणे विपाचयेत् ।

चतुर्भागावशेषं तु कपायमुपकल्पयेत् ॥ १४१ ॥

चतुर्पूर्तं पुनः कार्थं पचेष्टेहत्वमागतम् ।

भृष्टातकं विढङ्गानि त्रिकदु त्रिफलां तथा ॥ १४२ ॥

रसाञ्जनं चित्रकं च कुटजस्य फलानि च ।

वचामतिविपां विलवं प्रक्षिपेत्तु पलं पलम् ॥ १४३ ॥

त्रिशत्पलं गुडस्यात्र चूर्णाकृत्य प्रदापयेत् ।

मधुनः कुटवं दद्यादृतस्य कुटवं तथा ॥ १४४ ॥

शमयेष्टेह एपस्तु हशो रक्तसमुद्दवम् ।

वातिकं पैत्तिकं चैव शैयिकं सान्निपातिकम् ॥ १४५ ॥

ये च दुर्नीयजा रोगास्तांश्च सर्वान् च्यपोद्दति ।

रक्तपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ १४६ ॥

ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ।

अनुपाने धृतं दद्यादधि तक्रं जलं पयः ॥ १४७ ॥

जीर्णे तु पथ्यभोजी स्यादर्जोभ्यः प्रविमुच्यते ।

रोगानीकवधार्थाय कौटजो लेह उच्यते ॥ १४८ ॥

अर्द्धधि द्वितीयः कुटजावलेहः ।

कुटजत्वचं विपाच्य पलशतमात्रा भेदन्द्रसलिलेन ।

यावत्स्याद्दि शृतं तद्रव्यं स्वरसस्ततो ग्रादः ॥ १४९ ॥

मोचरसश्च समङ्गा फलिनी च पलाशकाञ्चिभिस्तथ ।

वत्सकवीजं तुल्यं चूर्णाकृतमत्र दातव्यम् ॥ १५० ॥

पूतः कथितः सान्द्रः स रसो दर्वीपलेपको ग्रादः ।

मात्राकालोपहिता रसक्रियेषा जयति रक्तम् ॥ १५१ ॥  
 उगलीपयसा युक्ता पेयामण्डेन वा यथाग्रिवलम् ।  
 जीर्णपिधश्च शालीन् पयसा छागेन भुजीत ॥ १५२ ॥  
 रक्तार्णास्पतिसारं रक्तं साष्टग्दरं निदन्त्याशु ।  
 वद्यथ रक्तपित्तं रसक्रियेषा हुभयभागम् ॥ १५३ ॥  
 अर्थात् कुटजाष्ठोऽप्यलेहः ।

तुलामधाद्री गिरिमष्टिकायाः संशुघ पक्त्वा रसमाददीत ।  
 तस्मिन्सुपूते पलसंभितानि क्षम्भूषानि पिष्ठा सह शास्मलेन ॥ १५४ ॥  
 पाठां समझाऽतिविषे समुस्तं विल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ।  
 प्रक्षिप्य भूयो विषचेतु तावद्वर्णप्रलेपस्तु रसस्तु यावद् ॥ १५५ ॥  
 पीतस्त्वसी कालविदा जलेन मण्डेन वाऽजापयसाऽयवापि ।  
 निहन्ति सर्वे त्वतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥ १५६ ॥  
 दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तं पित्तं तथाऽर्जासि सशोणितानि ।  
 अष्टग्दरं चैवमसाध्यरूपं निदन्त्यवश्यं कुटजाष्ठोऽयम् ॥ १५७ ॥  
 ग्रहण्या मधुगाङ्गविधिः ।

पाठाऽजमोदा मधुकं समझा मुस्ता जलोशीरविडङ्गधान्यम् ।  
 विल्वाग्रिगुण्ठीमगधाः सरोधश्यामाः कुधात्री करिकुडुम्बं च ॥ १५८ ॥  
 जम्बवाम्रयोरास्थि सवल्कलं च सर्वाणि चैतानि पलांशकानि ।  
 द्रोणे जलस्य प्रपञ्चेत्कपायमष्टावशेषं सितवस्त्रपूतम् ॥ १५९ ॥  
 क्षीद्रं क्षिपेदृष्टपलप्रमाणं पलार्धनागाह्यचन्दनैलाः ।  
 सहैव संमध्य विधाय चूर्णं क्षीद्रान्वितं तद्युनविंपाच्यम् ॥ १६० ॥  
 उत्तार्य लेहं घृतभाजने च निधापयेत्सप्त दिनानि शुसम् ।  
 तं पाययेद्याधिवलं समीक्ष्य जयेच्च सर्वान् ग्रहणीविकारान् ।  
 अरोचकं जीर्णमधातिसारं तृष्णाम्लपित्तं वमिहृदग्रहं च ॥ १६१ ॥

क्षोस कष्टकार्यवलेहः ।

समूलफलशाखां तु कुटयेत्कष्टकारिकाम् ।  
 तां पचेत्सलिलद्रोणे चतुर्भागावशेषिताम् ॥ १६२ ॥

कपायं तं परिस्ताव्यं पुनरसावधिश्रयेत् ।  
 युक्त्या घृतं च दातव्यं कल्कं चैपां प्रदापयेत् ॥ १६३ ॥  
 दुरालभा गृह्णी च श्यूपणं चित्रकस्तथा ।  
 रास्ता कर्कटशृङ्खी च पिष्पलीमूलमेव च ॥ १६४ ॥  
 एतान्येकपलीकानि तथा फाणितशक्तराम् ।  
 पलानां विश्रितं दत्त्वा तं लेहं सान्द्रमुद्दरेत् ॥ १६५ ॥  
 शीते दधात्पिष्पलीनां चूर्णं चात्र गुडोन्मितम् ।  
 कुट्टवं तु तुगाक्षीर्या मधुनः कुट्टवं तथा ॥ १६६ ॥  
 तं लिहान्मात्रया लेहं पञ्चकासनिवारणम् ।  
 हृद्रोगानाहृष्टिकाश भासं चैवापकर्पति ॥ १६७ ॥

शेषे निदिग्धिकाद्योऽवलेहः ।

तुलां निदिग्धिकायास्तु तदर्थं ग्रन्थिकस्य च ।  
 चित्रकस्य तदर्थं च दशमूलं च तत्समम् ॥ १६८ ॥  
 द्रोणद्रयेऽम्भसः काथ्यमष्टभागावशेषितम् ।  
 पूते क्षिपेत्तदर्थं तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ १६९ ॥  
 सर्वमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत् ।  
 अष्टौ पलानि पिष्पलयात्तिजातत्रिपलं तथा ॥ १७० ॥  
 मरिचानां पलं चैकं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।  
 मधुनः कुट्टवं दत्त्वा भक्षयेत् यथावलम् ॥ १७१ ॥  
 स्वरदुद्धिकरश्चैव प्रतिश्यायद्वः परम् ।  
 कासश्वासाग्निमान्द्याशोऽगुलममेहगलामयान् ॥ १७२ ॥  
 आनाहृमूत्रकृच्छ्रांश्च हन्यादग्रन्थ्यर्दुदानि च ।

उदावते पटोलामूलावलेहः ।

पटोलमूलं रजनी त्रिफला चतुरहुलम् ॥ १७३ ॥  
 नीलिनी त्रिवृता दंती कृमिम्बं च पुनर्नवा ।  
 कुट्टका सातला रोधं भागान्दशपलोन्मितान् ॥ १७४ ॥

दत्त्वा द्रोणचतुष्कं तु सलिलं पादशेषितम् ।  
 तेलस्य कुट्टवं तत्र गुडस्य तु शर्तं तथा ॥ १७५ ॥  
 त्रिवृच्चूर्णपलान्यष्टी लेहवत्साधु साथयेत् ।  
 चूर्णीकृतं क्षिपेत्तत्र व्योपस्य पलपञ्चकम् ॥ १७६ ॥  
 पलञ्चयं त्रिजातस्य दत्त्वा संयट्येत्पुनः ।  
 ततो यथावल्लं स्वादेत्पलार्थं पिचुमेव वा ॥ १७७ ॥  
 नाहारे यथ्रणा काचिन्न विहारे तथैव च ।  
 उदानर्तविवन्धार्थोगुलपपाण्डदरकृपीन् ॥ १७८ ॥  
 कुष्ठमेहारुचीर्हनिति विद्विवन्धेषु शस्यते ।  
 लेहः पटोलमूलाख्यः सर्वकर्मसु युज्यते ॥ १७९ ॥  
 मुखरोगे दाध्येष्वलेहः ।

दार्व्यास्तु मूलार्थतुलां जलस्य द्रोणे शृतां धृतचतुर्थशेषाम् ।  
 भूनिम्बदार्वीखदिरारिमेदैः पुनर्विपकं पलिकैश्चतुर्भिः ॥ १८० ॥  
 पूतं ततो गैरिकचूर्णपादं मन्दानले तद्य पुनर्विपकम् ।  
 सन्नीय शीतं मधुशर्कराभ्यां सदा प्रयोजयं धृतभाजनस्थम् ॥ १८१ ॥  
 नानाप्रकारेषु मुखामयेषु सुदारुणेषु ग्रस्तेषु चैव ।  
 प्रशीर्णजीर्णेष्वबलद्विजेषु कृच्छ्रेषु दुष्टेषु व्रणेषु चैव ॥ १८२ ॥  
 कल्पोऽयमिष्टो मधुकस्य चैव प्रपोण्डरीकस्य दृपस्य चैव ।  
 जातीरिमेदत्रिफलासमज्ञारोधस्य जम्बोः खदिरस्य चैव ॥ १८३ ॥  
 नागरस्य पलान्यष्टी धृतस्य पलविशतिम् ।  
 क्षीरद्विमस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्धशतं तथा ॥ १८४ ॥

व्योषं त्रिजातकं चैव पलांशमुपकल्पयेत् ।  
 वल्यं च वर्णपायुष्यं वलीपलितनाशनम् ॥ १८५ ॥  
 शमनं धामवातस्य सौभाग्यकरमुत्तमम् ।  
 कसेरोस्तु तुलार्थं हि द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ॥ १८६ ॥  
 कसेरोस्तु तुलार्थं हि द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ॥ १८७ ॥

द्रोणार्थशेषे पूते च दधाहुडतुलां तथा ।

सर्पिषः कुहवं दधाल्लेहवत्साधु साधयेत् ॥ १८७ ॥

व्योपस्य कुहवं चैव त्रिजातं त्रिपलं तथा ।

केशरस्य पलदून्दं चूर्णकृत्य विनिःक्षिपेत् ॥ १८८ ॥

तद्यथाप्रिवलं खादेत्कासकृपिज्वरापहः ।

हृत्पाण्डुरोगवैवर्ण्यदौर्बल्यानाद्नाशनः ॥ १८९ ॥

कसेरुकावलेहोऽप्य स्वरुपुष्टिविवर्धनः ।

अर्शसि भद्रातकावलेहः ।

चित्रकं त्रिफला मुस्तं ग्रन्थिकं चविकाऽपृता ॥ १९० ॥

हस्तिपिप्पत्यपामार्गदण्डोत्पलकुठेरकाः ।

एषां चतुर्थलान् भागान् जलद्रोणे वियाचयेत् ॥ १९१ ॥

भद्रातफसहस्रे द्वे छित्त्वा तत्रैव दापयेत् ।

तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्दिपक् ॥ १९२ ॥

तुलार्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुहवद्रयम् ।

ऋग्युपर्णं त्रिफलावहिसैन्वर्वं विडमीज्जिदम् ॥ १९३ ॥

सौवर्चलं विडङ्गं च पलिकाशान् प्रकल्पयेत् ।

कुहवं उद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च ॥ १९४ ॥

मूरणस्य पलान्यष्टी चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत् ।

सिद्धशीते प्रदातव्यं मधुनः कुहवद्रयम् ॥ १९५ ॥

प्रातभोजनकाले च ततः खादेयथावलम् ।

अर्शासि ग्रहणीदोपं पाण्डुरोगपरोचकम् ॥ १९६ ॥

कृमिगुलमाश्मरीमेहांच्छूलं चाशु व्यपोहति ।

करोति शुक्रवृद्धिं च वलीपलितनाशनम् ॥ १९७ ॥

रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ।

पीनसे चित्रकावलेहः ।

चक्षिद्विपञ्चमूल्योस्तु काथे पलशतद्रये ॥ १९८ ॥

अपृताया रसस्यकं पूतेऽस्मिन्नभयाशतम् ।

पचेत्पुटुल्लां दत्त्वा यावदापाफलस्तणम् ॥ १९९ ॥  
 अन्येनुस्तत्र मासीकात् मुशीति चुटवद्वयम् ।  
 प्रक्षिपेत्रिमुगन्वस्य त्रिकटोत्र पलद्वयम् ॥ २०० ॥  
 प्रत्येकं स्पाधवसारः शुक्तिस्तस्मिन् रसायने ।  
 उत्तमं कथितं पुंसामधिभ्यामप्रिहृदये ॥ २०१ ॥  
 जीर्णिन्त्यपि च काष्ठानि कासाधासासयकृमीन् ।  
 गुल्मोदरार्थः चुपुं च जयेच्छोपं भगन्दरम् ॥ २०२ ॥  
 योगशतैरजेयं च अद्याज्ञयति पीनसम् ।

एतत्विते शशसाधोऽवषेदः ।

शतावरी गुह्यची च वृपमुष्टिकाभयाः ॥ २०३ ॥  
 तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ।  
 भार्गी पुष्करमूलं च पृथवपञ्चपलानि च ॥ २०४ ॥  
 जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ।  
 दिव्यौपधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य या ॥ २०५ ॥  
 पलदादशकं देयं रुक्मलोहस्य चृणितम् ।  
 खण्डं धृतं समं देयं पलपोदशकं मुखैः ॥ २०६ ॥  
 पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाको मतो यथा ।  
 प्रस्यार्धं मधुनो देयं शुभाश्मजनुकं त्वचम् ॥ २०७ ॥  
 शृङ्गी विड्नकृणे च शुष्क्यजाजी पलं पलम् ।  
 त्रिफला धान्यकं पत्रं त्र्यक्षं परिचकेशरम् ॥ २०८ ॥  
 चूर्णं दत्त्वा तु निर्मथ्य स्तिर्घे भाण्डे निधापयेत् ।  
 यथाकालं प्रयुक्तीति विहालपदकं ततः ॥ २०९ ॥  
 गच्यक्षीरानुपानं च सेव्यं मांसरसः पयः ।  
 गुरुवृष्प्यानुपानानि स्तिर्घं मांसादि वृंहणम् ॥ २१० ॥  
 रक्तपित्रं क्षयं कासं पक्तिशूलं तथैव च ।  
 वातरक्तं ममेहं च शीतपित्रं वर्षि कृमम् ॥ २११ ॥

श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं श्रीहोदरं तथा ।  
 आनाहं मूत्रसंक्षावमम्लपित्तं निहन्ति च ॥ २१२ ॥  
 चक्षुप्यो वृंहणो वृष्ट्यो मङ्गल्यः प्रीतिवर्धनः ।  
 आरोग्यपुत्रदः श्रेष्ठः कायाग्निवलवर्धनः ॥ २१३ ॥  
 श्रीकरो लाघवकरः खण्डखाद्यः प्रकीर्तिः ।  
 छागं पारावतं मांसं तिस्तिरिः कृकरः शशः ॥ २१४  
 कुलिङ्गः कृष्णसारश्च तेषां मांसानि योजयेत् ।  
 नालिकेरप्यः पानं सुनिपण्णकवास्तुकम् ॥ २१५ ॥  
 शुष्कमूलकजीवाख्यं पटोलं वृहतीफलम् ।  
 फलं वार्ताकपकाम्रं खर्जूरं स्वादुदादिमम् ॥ २१६ ॥  
 ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसंभवम् ।  
 वर्जनीयं विशेषेण खण्डखाद्यं प्रकृत्वा ॥ २१७ ॥

रक्तपित्ते द्वितीयो वासावलेहः ।

तुलामादाय वासायाः पचेदप्तुरुणे जले ।  
 तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिपक् ॥ २१८ ॥  
 चूर्णनामभयानां तु खण्डाच्छुद्धाच्छतं तथा ।  
 द्वे पले पिष्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात् ॥ २१९  
 कुट्वं पलमानं तु चातुर्जीतं सुचूर्णितम् ।  
 क्षिस्वा विलोदितं खादेद्रक्तपित्ती थथावलम् ॥ २२० ॥  
 श्वासकासक्षतच्छर्दीं यक्ष्माणं च नियच्छति ।

श्वासकासयोर्भाग्निगुदावलेहः ।

शतं संग्राह भाग्न्यस्तु दशमूल्यास्तथा परम् ॥ २२१ ॥  
 शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे ।  
 पादशेषे च तर्सिंसस्तु रसे वस्त्रपरिस्तृते ॥ २२२ ॥  
 आलोह्य च तुलां पूर्ता गुटस्य त्वभर्या ततः ।  
 पुनः पचेत्तु मृद्रमौ यावलेहत्वमागतम् ॥ २२३ ॥  
 शीते तु मधुनश्चात्र पद्पलानि प्रदापयेत् ।

त्रिकदु त्रिसुगन्धं च पालिकं च पृथक् पृथक् ॥ २२४  
 कर्पद्रयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ।  
 भक्षयेदभयामेका लेहस्यार्थपलं तथा ॥ २२५ ॥  
 श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पश्चविधं तथा ।  
 स्वरर्वणमदो हेष जठरानलदीपिनः ॥ २२६ ॥  
 हरीतकीशतकस्य वारिप्रस्थमिहाधिकम् ।  
 श्वासकासयोः कुट्टरथगुडाकलेहः ।

कुलत्थादशमूलाच द्विजयष्ठास्तधैव च ॥ २२७ ॥  
 शतं शतं च संग्राह चतुद्रोणेऽम्भसः पचेत् ।  
 अष्टभागावशेषे तु गुडस्यार्थतुलां क्षिपेत् ॥ २२८ ॥  
 शीतीभूतेऽथ पके च मधुनोऽष्टौ पलानि च ।  
 पलानि पद तुगाक्षीर्याः पिष्पल्या द्वे पले तथा ॥ २२९ ॥  
 त्रिसुगन्धिसुगन्धं तं खादेदग्निवलं प्रति ।  
 श्वासं कासं ज्वरं द्विकां नाशयेत्तमकं तथा ॥ २३० ॥  
 मानसानिध्यसंवादाद्विपलं त्रिसुगन्धिनः ।

श्वासकासयोः पिष्पलीगुडावलेहः ।

पिष्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी ॥ २३१ ॥  
 श्वासकासज्वरधी च पाण्डुष्टीहोदरापहा ।  
 कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकूमिरोगिषु ॥ २३२ ॥  
 जीर्णज्वरेऽग्निसोदे च शस्यते गुडपिष्पली ।

अतिसारे कुटजाषलेहः ।

कुटजस्य तुलां दत्त्वा चतुद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २३३ ॥  
 द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते गुडतुलार्धकम् ।  
 घृतस्य कुटवं तप्र क्षिस्वा मृदग्निना पचेत् ॥ २३४ ॥  
 प्रतिवापे च देयानि द्रव्याण्येतानि धीमता ।  
 समझा चिल्वपेशी च मज्जा जम्बवाम्रसंभवा ॥ २३५ ॥  
 पिष्पली चाजमोदा च शुण्ठीमरिचवत्सकम् ।  
 मुस्ता भल्लातको रोध्रं धातकी गनपिष्पली ॥ २३६ ॥

अम्बष्टा वालकं चैव द्वे वृहत्यौ सचित्रकौ ।  
 पद्यग्रन्था पिपलीमूलं विडङ्गानि हरीतकी ॥ २३७ ॥  
 नागकेसरयष्ट्याहारलुत्वकृपत्रकेसरम् ।  
 विपा चन्द्रयवाः पाठा सूक्ष्मैला जीरकद्वयम् ॥ २३८ ॥  
 एभिः कर्पसमैर्भाँगलेहवत्संप्रसाधयेत् ।  
 मधुनः कुट्टवं सिद्धे शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ २३९ ॥  
 कायाग्रिवलमालस्य मात्रया योजयेद्दिपक् ।  
 तक्रेण च, सतकं हि भोजनं हितमिष्यते ॥ २४० ॥  
 एतद्वि ग्रहणीरोगमतीसारान् मुदारुणान् ।  
 प्रवाहिकां निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २४१ ॥  
 अतीसारे कुट्टजावलेहः ।

शतं कुट्टजमूलस्य शुण्णं तोर्यामणे पचेत् ।  
 काथे पादावशेषेऽस्मिन्पूते लेहं पुनः पचेत् ॥ २४२ ॥  
 सौवर्च्छलयवक्षारविडसैन्धवपिपली- ।  
 धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ २४३ ॥  
 क्षियाद्वदरमात्रं तु शीतं क्षीद्रेण संयुतम् ।  
 पकापकमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ २४४ ॥  
 दुर्वारं ग्रहणीदोपं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ।  
 अर्शस्तु कुट्टजावलेहः ।

कुट्टजत्वकतुलां द्रोणे पचेदष्टाशशेषितम् ॥ २४५ ॥  
 कलकीकृत्य क्षिपेत्तत्र तार्क्ष्यशैलं कदुत्रिकम् ।  
 रोध्रद्वयं मोचरसं वालदाढिमजां त्वचम् ॥ २४६ ॥  
 विलवं कर्कटिकां शुस्तं सप्तङ्गं धातर्कीपलम् ।  
 पलानि दश दद्याच्च कुट्टजस्यैव च त्वचः ॥ २४७ ॥  
 विंशतिं सर्पिषः पूते पलानि विंशतिं गुडात् ।  
 तत्पकं लेहतां यातं धान्ये पक्षस्थितं लिहन् ॥ २४८ ॥  
 मवातं ग्रहणीदोपं कासश्वासं निर्वहति ।

जययो च्यवनप्राशावच्छेदः ।

विल्वाग्निमन्थकनृहकार्यम् यः पाटला वला ॥ २४९ ॥  
 कणा पर्ण्यश्वतस्तथ षडंषट् वृहतीद्रियम् ।  
 नृही तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्कररागुरु ॥ २५० ॥  
 अभया चामूता मुस्ता जीवकर्पेभक्तौ शटी ।  
 ऋद्धिः पुनर्नवा मेदा सेव्यं चन्दनमुत्पलम् ॥ २५१ ॥  
 विदारी वृषभूलानि काकोली काकनासिका ।  
 एषां पलोन्मितान् भागान् शतान्यामलकस्य च ॥ २५२ ॥  
 पञ्च द्यात्तर्दक्षयं जलद्रोणे विपाचयेत् ।  
 ज्ञात्वा गतरसान्येतान्योपधान्यथ तं रसम् ॥ २५३ ॥  
 तत्त्वामलकमुद्दृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ।  
 पलद्रादशके भृष्टा द्याचार्घतुर्लां भिषक् ॥ २५४ ॥  
 शुद्धमत्स्याण्डिकायास्तु लेहवत्साधु साधयेत् ।  
 पद्मके मधुनश्वात्र सिद्धशीति मदापयेत् ॥ २५५ ॥  
 चतुर्पलं तुगाक्षीर्याः पिष्पद्या द्रिपलं तथा ।  
 पलमेकं निदध्यात्र त्वगेलापत्रकेसरात् ॥ २५६ ॥  
 इत्यर्थं च्यवनमाशः परमुक्तो रसायनः ।  
 कासधासहरश्चेप विशेषेणोपदिदियते ॥ २५७ ॥  
 दृढानां शोपिणां चैव वालानां चाङ्गवर्धनः ।  
 स्वरक्षयषुरोरोगं हृद्रोगं व्रातशोणितम् ॥ २५८ ॥  
 पिपासां मूत्रशुक्रस्यान्दोषांश्चाप्यपर्कषति ।  
 अस्य मात्रां मयुरीत योपहृष्यन्न भोजनम् ॥ २५९ ॥  
 च्यवनोऽस्य पयोगेण सुरुद्धोऽभृत्युनर्युवा ।  
 मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्पे वलभिन्द्रियाणाम् ।  
 स्त्रीषु प्रदर्पे परमग्निवृद्धिं वर्णमपसादं पवनानुलोम्यम् ॥ २६० ॥  
 रसायनस्यास्य नरः पयोगाङ्गमेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात् ।  
 जराकृतं रूपमपास्य सर्वं विभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ २६१ ॥

जरायो ब्राह्मसायनावलेदः ।

पञ्चानां पञ्चमूलानां भागान्दशपलोन्मितान् ।  
 हरीतकीसहस्रं च त्रिगुणामलकं नवम् ॥ २६२ ॥  
 विदारिगन्धां वृहतीं पृष्ठिपर्णीं निदिग्धिकाम् ।  
 विद्याद्विदारिगन्धाद्यं श्वदंष्ट्रापञ्चमं गणम् ॥ २६३ ॥  
 विलवाग्निमन्थकद्वज्जकाशमर्यः पाटला तथा  
 पुनर्नवा सूर्पण्यीं बला चैरण्ड एव च ॥ २६४ ॥  
 जीवकर्पभक्ती वीरा जीवन्ती सशतावरी ।  
 शरेष्ठुदर्भकासानां शालीनां मूलमेव च ॥ २६५ ॥  
 एतेषां पञ्चमूलानां पञ्चानामुपकल्पयेत् ।  
 भागान्यथोक्तान् तत्सर्वं साध्यं दशगुणेऽम्भसि ॥ २६६ ॥  
 दशभागावशेषं तु पूतं तदग्राहयेद्रसम् ।  
 हरीतकयश्च ताः सर्वाः सर्वाण्यामलकानि च ॥ २६७ ॥  
 तानि सर्वाण्यनस्थीनि फलान्यापोथ्य कूर्चकैः ।  
 विनीय तस्मिन्निर्यै हे चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ २६८ ॥  
 मण्डकपर्णीः पिष्पल्याः शङ्खपुष्प्याः पुवस्य च ।  
 मुस्तानां सविडज्ञानां चन्दनागुरुणोस्तथा ॥ २६९ ॥  
 मधुकस्य हरिद्राया वचायाः कनकस्य च ।  
 भागान् पञ्चपलान्कृत्वा सूक्ष्मलायास्त्वचस्तथा ॥ २७० ॥  
 सितोपलासहस्रं च चूर्णितं तुलयाऽधिकम् ।  
 तेलं स्पादद्वाढकं तत्र तथा त्रीणि च सर्पिषः ॥ २७१ ॥  
 साध्यं ताम्रमये पात्रे तत्सर्वं मृदुनाऽग्निना ।  
 द्वात्मा केहमदर्घं च शीतं क्षीद्रेण संसृजेत् ॥ २७२ ॥  
 स्लेहार्घं क्षीद्रमानं स्पात् तत्सर्वं घृतभाजने ।  
 तिष्ठेत्संमृच्छितं तस्य मात्रा काले प्रयोजयेत् ॥ २७३ ॥  
 आहारं नौपरुद्ध्याया श्वेतं मात्रा तु सा स्मृता ।  
 पष्टिकः पयसा चात्र जीर्णं भोगनमिष्यते ॥ २७४ ॥

वैवत्तनसास्तया चान्ये वालिखिल्यास्तपीभनाः ।  
रसायनमिदं प्राश्य यभूवृत्तिमितायुपः ॥ २७५ ॥  
मुखत्वा जीर्णं वपुश्चाम्यमयापुस्तरुणं वयः ।  
वीतनन्द्रा-गृष्म-धासा निरातद्वाः समाहिनाः ॥ २७६ ॥  
मेधासमृतियलोपेतात्रिरकालं तपोधनाः ।  
ब्राह्मं तपो ब्रह्मवर्य चेन्थात्यन्तनिष्टुया ॥ २७७ ॥  
आयुष्कामः प्रयुज्ञानो ब्राह्मं हीदं रसायनम् ।  
दीर्घमायुर्वलं चाद्यं कामोञ्ज्रेष्टान्समक्षुते ॥ २७८ ॥

धृतिगेऽमृतशावदेहः ।

जीवकार्पभक्ता वीरा जीवन्ती नागरं शटी ।  
मेदे पर्यथतस्त्रफ काकोल्या द्रे निदिग्निके ॥ २७९ ॥  
पुनर्नवे द्रे मधुकमात्मगुसा शतावरी ।  
ऋद्धिः परूपकं भार्गी मृद्दीका वृहतीतथा ॥ २८० ॥  
शृङ्गाटकस्तापलकी पयस्या पिष्पली वडा ।  
बद्राक्षोटखर्जूरवातामाभिषुकाणि च ॥ २८१ ॥  
फलानि चैवमन्यानि फलकान्कुर्वति कार्पिकान् ।  
धात्रीरसविदारीषुच्छागमांसरसान् पयः ॥ २८२ ॥  
दत्त्वा प्रस्थोन्मितान् भागान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।  
प्रस्थार्थं मधुनः शीति शर्करार्थतुलां तथा ॥ २८३ ॥  
ततो मात्रां मयुक्षीत भीरमांसरसाशनः ।  
नष्टुकक्षतक्षीणदुर्बलान् व्याधिकर्पितान् ॥ २८४ ॥  
स्त्रीपसक्तान् कृशान्वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत् ।  
कासहिकाज्वरश्वासतृष्णादाहान् सपैतिकान् ॥ २८५ ॥  
निहन्ति छद्मिमूर्छाहृष्टोनिमूत्रामयापहम् ।

लघुव्यवनप्राशोऽवलेहः ।

विल्वादिपञ्चमूलान्दवलापणीचतुष्टयम् ।  
ऋद्धिकृष्णाशटीपञ्चयाजीवकर्पिभकामृताः ॥ २८६ ॥

द्राक्षा पुनर्नवा मेदे जीवन्ती काकनासिका ।  
 उत्पलैलाजशृङ्खथश्च फाकोली घृपचन्दनम् ॥ २८७ ॥  
 विदारिगोक्षुरब्याघ्रीपौष्ट्रं च पलोन्मितम् ।  
 शतानि पञ्च धात्र्याश्च जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २८८ ॥  
 पलद्वादशके भृष्टा धात्रीस्तास्तैलसर्पिषोः ।  
 सितार्धतुलया युक्ताः काथं लौहे पुनः पचेत् ॥ २८९ ॥  
 द्वे पिप्पल्या पले वांश्याश्रत्वारः पदं च माक्षिकात् ।  
 चातुर्जातपलं तस्मिन् सिद्धशीते प्रयोजयेत् ॥ २९० ॥  
 हृद्रोगश्वासहृत्कासवातरक्तक्षयार्तिजित् ।  
 सेव्योऽयं स्वयनभाशः स्वर्णो वृष्ट्यो रसायनः ॥ २९१ ॥  
 शोयेऽमृतप्राशोऽवलेहः ।

छागमांसरसक्षीरविदारीक्षुरसादकम् ।  
 धात्रीफलरसश्वैव मृद्धीकानां रसो घृतम् ॥ २९२ ॥  
 पृथक्प्रस्थोन्मितरतैः पचेत्कर्षसमैर्भिपक् ।  
 वातामधुकाक्षोटशृङ्खाटककसेखकाः ॥ २९३ ॥  
 परूपकं शटी भार्गी जीवन्ती च पुनर्नवा ।  
 खर्जूरं पिप्पली शृङ्खी शात्मगुमा सजीवका ॥ २९४ ॥  
 सिंही व्याघ्रपदी स्याच्च द्राक्षा तामलकी स्थिरा ।  
 बदरं कदरं चैव जीवनीयानि यानि च ॥ २९५ ॥  
 तत्सिद्धं राजते पात्रे निधेयं साधु साधितम् ।  
 प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलां तथा ॥ २९६ ॥  
 त्वगेलापत्रमरिचचूर्णं चार्धपलोन्मितम् ।  
 विनीय भक्षयेन्मात्रां लिह्षाद्रापि यथावलम् ॥ २९७ ॥  
 घलवर्णकरं वृष्ट्यं वृंहणं स्वरघोधनम् ।  
 कासश्वासारुचिं हन्यात्तृष्मूर्छासुगदरं तथा ॥ २९८ ॥  
 परं क्षीणक्षतहितं वन्ध्यापुत्रप्रदायि च ।  
 . . . . . देवतास्त्रिव ॥ २९९ ॥

शोषे पिष्पस्याद्योऽवलेहः ।

कृष्णात्रुर्ण क्षिपेत्प्रस्थं सिताप्रस्थद्वयं तथा ।  
 प्रस्थार्थं गोधृतं चैव कुटवं माक्षिकं तथा ॥ ३०० ॥  
 दुग्धादकोनसंयुक्तं यथोक्तं विपचेद्विपक् ।  
 चतुर्जातपलं चैकं चूर्णमेतद्विनिक्षिपेत् ॥ ३०१ ॥  
 प्रत्यूपे भक्षयेन्नित्यं ततः कार्यं समाचरेत् ।  
 हन्त्यष्टादश शुष्ठानि क्षयमेकादशात्मकम् ॥ ३०२ ॥  
 पञ्चकासान् तथा वासान् पाण्डुं फ्रीहमपस्मृतिम् ।  
 मूत्रकृद्धं तथा रक्तं शुकदोषं तथा जराम् ॥ ३०३ ॥  
 धातुक्षयं च मन्दाद्विं ल्याद्विं परमदुस्तरम् ।  
 सर्वास्तान्नाशयत्याथु तमः सूर्योदयो यथा ॥ ३०४ ॥  
 सुभगो दर्शनीयश्च स गच्छेत्प्रमदाशतम् ।  
 रसायनमिदं श्रेष्ठमधिभ्यां परिकीर्तिम् ॥ ३०५ ॥

शोषे द्वितीयः पिष्पस्याद्यवलेहः ।

पिष्पलीप्रस्थमादाय क्षीरं चैव चतुर्गुणम् ।  
 अर्धादकं घृतं गव्यं शुद्धखण्डात्तथाऽऽडकम् ॥ ३०६ ॥  
 पचेन्मृदग्निना तावद्यावत्पाकमुपागतम् ।  
 शीतीभृते क्षिपेत्स्मिश्चतुर्जातपलत्रयम् ॥ ३०७ ॥  
 योजयेन्मात्रया दोषधात्वाद्विवलसात्म्यतः ।  
 वलयो वृप्यस्तथा त्रृद्यो धातुपुष्टिकरः परः ॥ ३०८ ॥  
 जीर्णज्वरहरश्व लिंयं चैव तु बृहयेत् ।  
 छर्दित्रुष्णारुचिखासशोपाहिध्माः सकामलाः ॥ ३०९ ॥  
 हृद्रोगं पाण्डुगुलमं च प्रदरे च निदोपजम् ।  
 शोणितानिलकाश्ये च रक्तपित्तं नियच्छति ॥ ३१० ॥

सतताभ्यासयोगेन वलीपलितवर्जितः ।

क्षयादिरोगे रसाहरीतव्यवलेहः ।

हरीतव्याः शतं द्रोणे पयासि पृष्ठः ॥ ३११ ॥

वृतावशेषमुत्तार्य निष्कुलीकृत्य च क्रमात् ।  
रसगन्धकलोहानां चूर्णं नापूर्य वेष्टयेत् ॥ ३१२ ॥  
सूत्रेण मासमेकं तु मधुमध्ये निधापयेत् ।  
पथ्याशी भक्षयेदेकां सर्वरोगविमुक्तये ॥ ३१३ ॥

खण्डार्दिकावलेहः ।

षुस्त्रिनाच्छृङ्खवेरात्पलशतमनवं निस्तुपं संविधाय  
मस्थे चाज्यस्य पक्त्वा पलशतसहितं शुद्धमत्स्यण्डिकायाः ।  
फौरঙ्गी देवपुष्पं मधुदलकणानागकिञ्चलकभृङ्गं  
शुक्रानाजी सघनमरिचतुगा सार्धकर्पद्रयाः स्युः ॥ ३१४ ॥  
तस्मिन्नीरं विदित्वा ज्वलनमुखगतं पात्रमुत्तार्य यन्ना-  
त्कृत्वा चेपनमदशशिशुरभितं चूर्णितेनावचूर्ण्य ।  
प्रातः शीतेऽतिमात्रं मधुकुडवयुगं सार्धमावाप्य सान्द्रं  
तट्टीढं हन्ति जीर्णज्वरमथ कसनं राजयक्षमाणमेव ॥ ३१५ ॥

अतीसारेऽद्वेष्टमूलावलेहः ।

पलमङ्गोलमूलस्य दशांशं विल्वमेव च ।  
तद्वागो राजटृक्षस्य कार्धयमष्टगुणे जले ॥ ३१६ ॥  
तेन पादावशेषेण फाणितं कारयेद्दिपक् ।  
शीतीभूते प्रदातव्यं मस्तुना सहितं बुर्धः ॥ ३१७ ॥  
फाणिते दीपमाने तु सत्वरं छर्दयेद्यदा ।  
शीतलं भोजनं देयं दक्ष्यन्वं भक्तमेव च ॥ ३१८ ॥  
पक्कापक्कमतीसारं नानावर्णं संवेदनम् ।  
दुर्वारं ग्रहणीदोपं जयेद्येव प्रवाहिकाम् ॥ ३१९ ॥

बर्जसि भक्षातकावलेहः ।

पर्पटावलगुजानन्नावचाखदिरचन्दनम् ।  
पाठागुण्ठीशटीभार्गीवासाभूनिम्बवत्सकम् ॥ ३२० ॥  
श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविढङ्गन्द्रयवं जलम् ।  
इस्तिकर्ण्यमृताद्राक्षापयोलरजनीद्रयम् ॥ ३२१ ॥

फणारम्बससाठपिल्वश्योनाकपाटलाः ।

एषां द्रिपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥३२२॥

अष्टभागावशेषं तु कपायमवतारयेत् ।

भद्रातकसद्माणि छित्या द्रोणमितेऽम्भसि ॥ ३२३ ॥

चतुर्भागावशेषं तु कपायं परिकल्पयेत् ।

तौ कपायौ समादाय वस्त्रपूतौ तु कारयेत् ॥ ३२४ ॥

गुडस्य च तुला दत्या लेहवत्साधयेद्विपक् ।

भद्रातकसद्माणां मज्जानं तत्र दापयेत् ॥ ३२५ ॥

थिकदुष्क्रिकलामुस्तर्संन्धवानां पलं पलम् ।

सौगन्धिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥ ३२६ ॥

दीप्यकस्य पलं चैव चातुर्जीनं पलाशकम् ।

संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्कोषणे घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ ३२७ ॥

महाभद्रातको षेष पद्मादेवेन निर्मितः ।

माणिनां च हितार्थं वै जयेद्विष्टं निषेवितः ॥३२८॥

शिवत्रमीदुम्बरं सिद्धं रक्षजिह्वं च काकणम् ।

पुण्डरीकं च चर्मास्त्रयं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥३२९॥

कृच्छ्रं कापालिकं कृष्णं पामां चैव विपादिकाम् ।

चातरक्तमुदावर्तं पाण्डुरोगं वर्मि कृमिम् ॥ ३३० ॥

अर्णांसि पद्मकाराणि कासं श्वासं भग्नदरम् ।

समाभ्यासेन पलितमामवातं सुदुर्जयम् ॥ ३३१ ॥

कुरुते च परां कान्ति प्रदीप्तं जटरानलम् ।

अनुपाने पयोक्तव्यं छिन्नातोयं पयोऽथवा ।

भोजने च सदा त्याज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः ॥३३२॥

अर्तीतारे कुटजाष्टकावलेदः ।

तुलामथाद्रीं गिरिमिलिकायाः संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत ।

तास्मिन् सुपूते पलसंमितानि शुद्धगानि पिष्टा सह शालमलेन ॥

१ मोरसेन ।

ग्रासमङ्गातिविपाः समुस्ता विलवं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ।  
 क्षिप्य भूयो विपचेत् तावद्वीपलेपं सुरसं च यावत् ॥ ३३४ ॥  
 तस्त्वसौ कालविदा जलेन मणेन बाऽजापयसाऽथवाऽपि ।  
 तहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं कृष्णासितं लोहितपीतकं वा ॥ ३३५ ॥  
 औपं ग्रहण्या विविधं च रक्तपित्तं तथाऽर्शासि सशोणितानि ।  
 एष दरं चैव प्रसाव्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाएष्टोऽयम् ॥ ३३६ ॥  
 धातुक्षये मधुपक्वामलकी ।

धात्रीफलानि भव्यानि तीक्ष्णलोहेन वेधयेत् ।  
 विश्वांवरणपत्रैश्च फलैश्च स्वेदयेद्वृशम् ॥ ३३७ ॥  
 उष्णदुर्घेन संस्वेद पानीयेन ततः परम् ।  
 पद्मधुमध्ये क्षिपेद्वाण्डे स्थापयेद्विनविंशतिम् ॥ ३३८ ॥  
 विनाईं मधु संत्यज्य मधुमध्ये पुनः क्षिपेत् ।  
 अधस्तु शर्करां धात्रीफलान्युपरि च न्यसेत् ॥ ३३९ ॥  
 सिताधात्रीफलान्येव मुरुपरि धारयेत् ।  
 दिनाष्टकमतो दद्याद्वातुक्षीणे वलक्षये ॥ ३४० ॥  
 वाजीकरणमत्युग्रं फलानां सेवनं सदा ।  
 वीर्यवृद्धिकरण्याहुर्वहिवृद्धिकरणि च ॥ ३४१ ॥  
 त्वग्दोषं पित्तकोपं च शमयन्ति न संशयः ।

स्वरम्भे कुलिङ्गनाद्योऽवलेहः ।

कुलिङ्गनं समानीय नवीनं पलविंशतिम् ।  
 तुलाद्रये जले काथ्यं तुलार्धमवशेषयेत् ॥ ३४२ ॥  
 वस्त्रपूते जले तस्मिन् चूर्णान्येषां प्रदापयेत् ।  
 कट्टफलं पौष्टकं भार्गी पञ्चकोलं कटुत्रिकम् ॥ ३४३ ॥  
 त्रिफला च विड्हङ्गं च धान्यकं जीरकद्रयम् ।  
 करञ्जः शिखरी वासा मत्येकं च पलद्रयम् ॥ ३४४ ॥

२. कार्यादिकाप्यैः ।

सर्वार्थो प्रक्षिपेच्छुद्धां शर्करां गुडमेव च ।

हन्त्यर्यं पञ्चकासांश्च हिका अपि सवेदनाः ॥ ३४५

स्वरभङ्गं महाघोरं कण्ठरोगं मुखामयम् ।

मन्दाग्निं च प्रतिश्यायं स्वरभङ्गं विशेषतः ॥ ३४६ ।

कासे भाग्यादवलेहः ।

भाग्नीं हरीतकीं धासां कण्ठकारां तथैव च ।

प्रत्येकं प्रस्थमादाय द्रोणेऽपां साधयेद्विषक् ॥ ३४७

काथे पादावशेषे तु गुडं प्रस्थमितं क्षिपेत् ।

ततः पाकघनीभूते शीतेऽर्धकुडवं मधु ॥ ३४८ ॥

पिपलीं कटफलं शूद्रीं मधुयाद्दिं लवङ्गकम् ।

त्वक्क्षीरीं रजनीं चैव पलार्धप्रामितां क्षिपेत् ॥ ३४९

एपोऽवलेहः शमयेत् पञ्च कासान् सुदारुणान् ।

हृदागे चन्दनावलेहः ।

मातुलुङ्गरसप्रस्थः प्रस्थाधों दाढिमाद्रसः ॥ ३५० ॥

तच्चुल्यं नारिकेलाम्बु शर्करा कुडवद्वयम् ।

पाकं कृत्वा यथान्यायं सिद्धे शीते समावपेत् ॥ ३५१ ॥

चन्दनं च तुगाक्षीरीं धान्यकं सारिवा तथा ।

कङ्कोलकमुशीरं च कुङ्कुमं शतपत्रिकाम् ॥ ३५२ ॥

गुडच्याश्च तथा सत्त्वं कर्पमानं पृथक् पृथक् ।

लेह एप तु हृद्रागं भ्रमं मूर्च्छी वर्पि तथा ॥ ३५३ ॥

दाहं च सुमहाघोरं शमयेनात्र संशयः ।

भानुक्षये गोभुरादवलेहः ।

गोभुरथाधगन्था च शतवीर्यो विदारिका ॥ ३५४ ॥

पलावीजानि यष्ट्याहं वीजानीक्षुरकस्य च ।

कपिकच्छोश्च वीजानि शालमलीमूलकं तथा ॥ ३५५ ॥

बृद्धादारुकवीजानि लवङ्गं जातिपत्रिका ।

केशरं च फलं जात्या त्वक् पलं वेशरोचना ॥ ३५६ ॥

गुह्यचीसन्वयमेले द्वे तथा काश्मीरजन्म च ।  
 एतेपां कर्पमादाय मधुनः कुडवत्रयम् ॥ ३५७ ॥  
 कृत्वा लेहं ततो मात्रां यथायोग्यां प्रदापयेत् ।  
 घातुक्षयं तथा वातं ध्वजभङ्गं नियच्छति ।  
 अनेनाशीतिवर्णेऽपि युवेव च दृपायते ॥ ३५८ ॥  
 इति श्रीवैद्यसोऽलग्रहिते गदनिप्रहै पश्चमोऽवलेहाधिकारः ।  
 ॥ अथातः पष्ठ आसवाधिकारः प्रारम्भ्यते ॥

कुमार्यास्वः ।

द्रोणमानं कुमार्यास्तु रसं भाष्टे निधापयेत् ।  
 तुलार्धं दशमूलं तु तदर्थं पौष्टकर्णं जटाम् ॥ १ ॥  
 तत्समं धन्वयासं च चित्रार्धं च परिक्षिपेत् ।  
 प्रस्थार्धममृता ज्ञेया तदर्थमभया तथा ॥ २ ॥  
 लोघकामलकं पथ्ये मञ्जिष्ठा च कलिद्रुमः ।  
 चब्यं च कुष्टयष्ट्याहे कपित्थं सुरदारुकम् ॥ ३ ॥  
 कृमिशत्रुः कणा चैव भारी स्यादष्टवर्गकः ।  
 जीरकं क्रमुको रास्ता शटी रेणकमेव च ॥ ४ ॥  
 शृङ्गी निशा प्रियद्रुश्म मांसी मुस्ता च सारिवा ।  
 शक्रवीजं वरी वासा नागकेसरमेव च ॥ ५ ॥  
 उनर्नवा समांशानि पद्मिद्रोणैर्जलस्य तु ।  
 काथयेदनया रीत्या चतुर्थांशं जलं नयेत् ॥ ६ ॥  
 त्रिशत्पला च मृद्रीका दन्तसंख्यापलं मधु ।  
 गुडाचुलाचतुर्पं च तदर्था धातकी भवेत् ॥ ७ ॥  
 एलाद्वयं लवङ्गानि कद्धोलं मलयोद्धवम् ।  
 चातुर्जातं तथा कृष्णा परिचं जातिपत्रकम् ॥ ८ ॥  
 आकङ्क्षकं फलं जात्याः कपिकल्पुश्म दीप्यकम् ।  
 वचा खतिरसारथ दहनो जीरकं तथा ॥ ९ ॥

यवानी वालकं विभा मुस्ता घान्यं हरीतकी ।  
 हपुषा तिनिडीकं च चूर्णमेपां प्रयोजयेत् ॥ १० ॥  
 भाण्डे पुराणे मुस्तिग्ने धूषिते गन्धभेषजैः ।  
 कोषसरि तथा तसे भूमी मासं यिनिःशिष्येत् ॥ ११ ॥  
 यो रोगी श्रातरुत्थाय पलमेकं तु भक्षयेत् ।  
 धातुक्षयं जयेत्कासं धासं पश्चविधं तथा ॥ १२ ॥  
 अशाँसि यातारोगांश्च ग्रहणीपाण्डुकामल्याः ।  
 हन्तीपकमृदावर्ते गुलमं पश्चविधं जयेत् ॥ १३ ॥  
 आध्मानं कुक्षिगूलं च प्रत्याध्मानं गुदग्रहम् ।  
 अष्टीलिकां च हृद्रोगानेतान् व्याधीनिर्जयेत् ॥ १४ ॥  
 कुमार्यासव इत्येप कथितः शूलपाणिना ।

द्वितीयः कुमार्यासवः ।

कन्यारसस्तुलार्थं यै तदर्थगुडमिश्रितः ।  
 चातुर्जातलवड्हानां सैन्यवस्य निशाद्रयात् ॥ १५ ॥  
 कृष्णोपणकुवेराणां धातकीनां पलं पलम् ।  
 पश्याच्चूर्णं पलद्रन्दं पलं चाक्कुकस्य तु ॥ १६ ॥  
 उप्रगन्धाविड्हानां जातीपञ्चाः पलं पलम् ।  
 एकीकृत्य शुचौ भाण्डे पक्षमेकं निधापयेत् ॥ १७ ॥  
 पलार्थं भक्षयेन्नित्यं शुल्मोदावर्तनाशनः ।  
 आध्मानं पार्ख्यशूलं च जटराति कफं हरेत् ॥ १८ ॥  
 मन्दार्थं शमयेच्छ्वासं कासं हिक्कां क्षयं तथा ।  
 श्रीहानं यकृतं शोफं नाशयत्येप सेवितः ॥ १९ ॥

नवविधा आसवयोनिः ।

त्वक्पत्रकाण्डपुष्पाणि सारमूलफलानि च ।  
 धान्यानि च सिता चापि नव द्वासवयोनयः ॥ २० ॥  
 द्रव्यसंयोगतः संख्यातीताः पश्यतमाश्च ते ।  
 द्रव्याणां भेदतो देवसु (८४) संख्याः प्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥  
 तथा—

पद् धान्यादवाः ।

सुरासौवीरमैरेयधान्यकाम्लतुपोदकाः ।

समेदा रससंख्यास्ते ह्यासवा धान्यतो मताः ॥ २२ ॥  
पर्दिंशतिकलासवाः ।

द्राक्षाखर्जूरकाश्मर्यजम्बवामलविभीतकैः ।

धन्वराजादनैः पथ्यात्तुणशून्यपरूपकैः ॥ २३ ॥

कपित्थमृगलिण्डीस्त्वुक्कर्कन्धूवदरीफलैः ।

पियालपनसपुक्षन्यग्रोधोदुम्बरैः सह ॥ २४ ॥

कपीनपीलुवकुलाजमोदाशहिनीफलैः ।

शृङ्गाटाश्वत्यसंयुक्ताः पर्दिंशाः फलतो मताः ॥ २५ ॥  
एकादश मूलासवाः ।

अश्वगन्धास्थिरादन्तीकृष्णगन्धाशतावरी- ।

श्यामैरण्डद्रवन्तीभिर्विल्ववहित्रिवृत्समैः ॥ २६ ॥

मूलेरेकादशैते तु सुनिर्भूलतो मताः ।  
विशतिः सारासवाः ।

शालपियहृस्यन्दनचन्दनखदिरार्जुनैश्च कदरयुतैः ।

असनाश्वकर्णसपुर्णशमीशिंशिपासहितैः ॥ २७ ॥

अरिमेदतिन्दुकिणिहीशुक्तिशिरीपैश्च वज्रुलसमेतैः ।

धन्वनमधुकसारैर्विशतिरात्रेयमुनिनोक्ताः ॥ २८ ॥

दश सुष्पासवाः ।

पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपीण्डरीकशतपत्रैः ।

पुष्पैर्मधुकजातैः प्रियहृना धातकीकुमुमैः ॥ २९ ॥

दश पुष्पासवाः पूर्वं सुनिभिः परिकीर्तिताः ।

चत्वारः काण्डसवाः ।

चत्वारः काण्डकैः पुण्ड्रेक्षुकाण्डेक्षिक्षुवालिकैः ॥ ३० ॥  
द्वौ पत्रासवौ ।

पटोलकतमालाभ्यां द्वौ हि पत्रासवौ मतौ ।

चत्वारस्त्वगासवाः ।

कमुकैलेयलोधैश्च सतिल्वैस्त्वकृता हिताः ॥ ३१ ॥

शक्तरासवः ।

शक्तरासव एवंको,

आसवाना विकल्पसंस्कारणाः ।

द्रव्यसंयोगभागतः ।

विकल्पा वहुधा ज्ञेयाः संस्कारश्च यथाविधि ॥ ३२ ॥

स्वयोनिसंस्कृता हेते स्वं स्वं कर्म प्रकुर्वते ।

संयोगसंस्कृतेऽर्देशकालमात्रस्वभावतः ॥ ३३ ॥

पृथक्तेषां स्वभावांस्तु ज्ञात्वा कार्यं प्रयोजयेत् ।

श्लोकद्वयमिहार्थं तु मुनिरात्रेय उक्तवान् ॥ ३४ ॥

मनःशरीराग्निवलप्रदानामस्वप्रशोकारचिनाशनानाम् ।

दर्पप्रदानां भवरासवानामशीतिरुक्ता चतुरुत्तरैषा ॥ ३५ ॥

शरीररोगपृष्ठां मतानि तत्त्वेन चाहारविनिश्चयाय ।

उवाच यज्ञः पुरुषादिकेऽस्मिन्मुनिस्तथाऽद्याणि वरासवांश्च ३६.

वातव्याधौ विड्हासवः ।

विड्हङ्गं पिष्ठलीमूलं पाठा धात्र्येलवालुकम् ।

कुटजत्वकफलं रात्रिं भागीं पञ्चपलोन्मितम् ॥ ३७ ॥

अष्टद्रोणेऽम्भसः पवत्वा द्रोणशेषं तु कारयेत् ।

पूते शीते श्लिष्टेऽस्मिन्मात्रिकस्य शतत्रयम् ॥ ३८ ॥

धातव्या विंशतिपलं चूर्णं कृत्वा तु दापयेत् ।

व्योपस्य तु पलान्यष्टौ त्रिजातद्विपलान्यपि ॥ ३९ ॥

फलिनीहेमतोयानां सरोभ्राणां पलं पलम् ।

घृतभाष्टे समाधाय मासमेकं विधासयेत् ॥ ४० ॥

एष योगो हरत्येव प्रत्यष्टीलाभगन्दरान् ।

जरुस्तम्भाऽमरीमेहं गण्डमालां सविद्रधिम् ॥ ४१ ॥

आढ्यवाते हनुस्तम्भं विड्हाख्यो महासवः ।

प्रमेहे रोधासवः ।

रोधं शर्टीं पुष्करमूलमेलां मूर्वा विड्हङ्गं त्रिफलां यवानीम् ।

चब्यं मियहुङ्गं क्रमुकं विशालां किराततिकं कदुरोहिणीं च ४२.

भागी नतं चित्रकपिष्पलीनां मूलं सकुष्टातिविपां च पाठाम्  
कलिङ्गकान् केसरमिन्द्रसाहं नखं सपत्रं मरिचं पुवं च ॥ ४३  
द्रोणेऽम्भसः कर्पसमं हि पत्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे ।  
रसेऽर्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः ॥ ४४  
रोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहानिक्षमं निहन्याद्विपलप्रयोगात् ।  
पाण्डामयार्शास्यहस्तिं ग्रहण्या दोपं किलासं विविधं च कुष्टम् ।  
प्रमेहे देवदार्वासवः ।

देवदारोस्तुलार्थं तु वासायाः पलविंशतिः ।  
दन्ती शक्राहमज्ञिष्टास्तगरं रजनीद्रियम् ॥ ४६ ॥  
रास्ता मुस्तं शिरीपथं कृमिन्द्रः खदिरार्जुनी ।  
भागान्दशपलानेपां गुह्यच्यात्रित्रकस्य च ॥ ४७ ॥  
चन्दनस्य यवान्याश्र रोहिण्या वत्सकस्य च ।  
भागान् पञ्चपलानेपामष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ४८ ॥  
द्रोणशेषे कपाये तु पूते शीते प्रदापयेत् ।  
धातकयाः पोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ ४९ ॥  
चतुर्प्पलं त्रिजाताच्च व्योपस्य च पलद्रियम् ।  
केसरस्य पलद्रन्दं प्रियङ्गोशं पलद्रियम् ॥ ५० ॥  
घृतभाण्डे निदध्याच्च मासमेकं प्रयन्नतः ।  
प्रमेहान्मूत्रकुच्छांश्च वातरोगान् सुदारुणान् ॥ ५१ ॥  
ग्रहण्यशौंविकारांश्च देवदार्वासवो जयेत् ।  
कुठे कनकारिषः ।

खदिरकपायद्रोणं कुम्भे घृतभाविते समावाप्य ।  
पलिकां मात्रां क्षेप्यां कृत्वा तामेव मूक्ष्मचूर्णं तु ॥ ५२ ॥  
त्रिफलात्रिकहुकरजनीकत्तकत्त्वम्बाकुचीगुह्यच्यथ ।  
सविडङ्गमत्र मधुपलशतद्रयं प्रक्षिपेत्सर्वम् ॥ ५३ ॥  
घातकीपलान्यष्टौ काथे चास्मिन्मदेयानि ।  
ग्रातः ग्रातस्तु पिवेन्नाशयति चिरोत्त्वितं कुष्टम् ॥ ५४ ॥

पासेन सर्वरोगातिइनि च शोकमेहाश्र ।  
 निनितकासाभासो गुदकीलमगन्दर्विनिमूक्तः ॥ ५५ ॥  
 कनकारिणं प्रपिबन्भवनि पुमान्द्रनकर्तानितश्च ।

अर्थात् द्वितीयचतुर्दशः ।

नवस्यामल्कस्येकां कुर्याज्जर्जरिनां हुलाम् ।  
 कुड्यामश्च पागध्या निडङ्गं मरिनानि च ॥ ५६ ॥  
 यवासः पिष्पलीमूलं क्रमुकं चब्यचिप्रकौ ।  
 मज्जिपून्नालुकं रोधे पलिकान्युपरन्ययेत् ॥ ५७ ॥  
 कुष्ठं दारुदरिद्रां च मुरादं सारियाद्रयम् ।  
 मुस्तमिन्द्रपवांश्चैव कुर्यादप्पलोन्मितम् ॥ ५८ ॥  
 चत्वारि नागपुण्यस्य पलान्यभिनवस्य च ।  
 जलद्रोणद्वयैनैतत्साधयित्वाऽवतारयेत् ॥ ५९ ॥  
 द्रोणावशेषपूते च शीने तस्मिन्प्रदापयेत् ।  
 मृद्गीकाद्यथादकद्रावं शीतं निर्यैसाभितम् ॥ ६० ॥  
 शर्करायाश थुद्याया दयाद्विगुणितां हुलाम् ।  
 कुमुमस्वरसस्यैवमर्धमस्यं नवस्य च ॥ ६१ ॥  
 त्वगेलागुवपत्राम्बुसेव्यक्रमुकक्षेसरान् ।  
 मतिमांशूर्णयित्वा तु कार्पिकान्संप्रदापयेत् ॥ ६२ ॥  
 तत्सर्वं स्थापयेत्पक्षं मुचौक्षे धृतभाजने ।  
 पलिसे सर्पिपा किंचिच्छर्करागुरुभूपितैः ॥ ६३ ॥  
 पक्षादर्धमारिषोऽयं कनको नाम विश्रुतः ।  
 पेयः स्वादुरसो हृथः प्रयोगाद्वक्तरोचकः ॥ ६४ ॥  
 अशासि ग्रहणीदोपमानाहमुदरं ज्वरम् ।  
 हृत्पाण्डुरोगशोथांश्च गुलमवचोनिलग्रहान् ॥ ६५ ॥  
 कासान्कफामयांशोग्रान्सर्वानेवापकर्पति ।  
 वलीपलितखालित्यं दोपजं तु व्यपोहति ॥ ६६ ॥

ग्रहण्यां दुरालभारिषः ।

दुरालभाया द्विप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।  
मुष्टी चित्रकदन्त्योर्देहं प्रत्यग्रं चाभयाशतम् ॥ ६७ ॥  
चतुर्देणेऽम्भसः काध्यं शीतं द्रोणावशेषितम् ।  
गुडस्य द्विशतं पूतं मधुनः कुडवान्वितम् ॥ ६८ ॥  
तद्रत्नियङ्गोः पिष्पल्या विडङ्गानां च चूर्णकम् ।  
कुडवं घृतकुम्भस्थं पक्षादूर्ध्वं पिवेन्नरः ॥ ६९ ॥  
ग्रहणीपाण्डुरोगार्थः कुषुवीरसर्पमेहनुत् ।  
स्वर्वर्णकरथैव रक्तपित्तकफापहः ॥ ७० ॥  
अर्वासि दस्यरिषः ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ।  
प्रत्येकं पलमापोध्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ७१ ॥  
त्रिपलं त्रिफलायाश दलानां तत्र दापयेत् ।  
रसे चतुर्थशेषे तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ ७२ ॥  
तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेन्मासार्थं घृतभाजने ।  
तन्मात्रया पिवन्नित्यपशोभ्यः स विमुच्यते ॥ ७३ ॥  
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्रं वातवचोनुलोपनम् ।  
दीपनं रुचिदं चिव दन्त्यरिष्टमिमं विदुः ॥ ७४ ॥  
अर्वासि अभयारिषः ।

प्रस्थाध तु हरीतकयाः प्रस्थमामलकस्य च ।  
दशपलं कपित्थानां ततोऽर्थं चेन्द्रवारुणी ॥ ७५ ॥  
विडङ्गं पिष्पली रोधं मरिचं सैलवालुकम् ।  
द्विपलांशं जलस्यैतचतुर्देणे विपाचयेत् ॥ ७६ ॥  
द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते प्रदापयेत् ।  
गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्सर्वं घृतभाजने ॥ ७७ ॥  
पक्षादूर्ध्वं भवेत्पेया ततो मात्रा यथावलम् ।  
अस्याभ्यासादूरिष्टस्य गुडजा यान्ति संक्षयम् ॥ ७८ ॥  
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्रीहगुल्मोदरापहः ।

कुषुग्रोक्तानविद्वां षलवणोप्रिकर्थिनः ॥ ७९ ॥

सिद्धोऽप्यमध्यारिष्टः कामलाभिननाश्रिनः ।

कृष्णनन्दयं चुदप्याराजयमज्वरान्लक्ष्मि ॥ ८० ॥

प्रत्यक्षी द्वितीयेऽभिरिष्टः ।

दर्हीतकीदृशस्थिं प्रस्थामामलकस्य च ।

विशालायाः कापिन्यस्य पादाभिनकमूलयोः ॥ ८१ ॥

द्वे द्वे एले समापोद्य द्वित्रोणे साधयेद्वपाम् ।

पादशेषे च पूर्णे च रसे तस्मिन्बद्धापयेत् ॥ ८२ ॥

गुदम्बैकां तुला वैष्णवः गंस्थाप्य घृतभाजने ।

प्रस्थितं पित्रेभित्यं ग्रहण्यश्चोपिकारन्तु ॥ ८३ ॥

श्रीदृष्ट्याण्डुरोगमः कामलाविप्रमज्वरान् ।

कासं भासमुदायते फलारिष्टो व्यपोहति ॥ ८४ ॥

प्रत्यक्षी तृतीयेऽभिरिष्टः ।

अष्टौ पलानि वर्णभृशमूलार्कचित्रकात् ।

दन्तीश्यामाभिष्ठद्राश्वार्थेवं स्युस्तिफलाढकम् ॥ ८५ ॥

अम्बुदेणाणाएके पवत्या पादशेष रसे स्थिते ।

द्वे गुदस्य तुले पूर्ते तत्पश्चाद्वटके क्षिपेत् ॥ ८६ ॥

गवो मूत्राढके प्रस्थी द्वावयोरजमस्तथा ।

विडङ्गं कुटजं कुषुं चित्रकं मरिचं वचाम् ॥ ८७ ॥

संचूर्ण्य द्विपलान्यस्मिन्दत्त्वा मामस्थितं पित्रेत् ।

अभयारिष्टनामायं मंहार्षः कुषुशोफहा ॥ ८८ ॥

श्रीदपादामयान् गुल्मान् जठराणि च नाशयेत् ।

पाण्डुरेणे मण्डूरारिष्टः ।

मण्डूरस्य हु शुद्धस्य तुलार्थं परिकल्पितम् ॥ ८९ ॥

तद्वलोहस्य पञ्चाणि तिलोत्सेषमपाणतः ।

गुडाजीणां चु पञ्चाशत्कोलप्रस्थव्रयं तथा ॥ ९० ॥

निकुम्भचित्रकाम्यां च पले द्वे द्वे सुचूर्णिते ।

पिष्टलीनां विडङ्गार्थं कुडवं कुडवं पृथक् ॥ ९१ ॥

त्रीञ्चापि त्रिफलान्यशोग्रा जलद्रोणे विपाचयेत् ।

अर्धमासस्थितो धान्ये रेण्योऽरिष्टः प्रमाणतः ॥ ९२ ॥

ऊर्ध्वाधोदोपनिर्हता पाण्डुरोगं नियच्छति ।

कृमीनशासि कुष्ठं च कासश्वासकफामयान् ॥ ९३ ॥

एपोऽरिष्टस्तु माण्डूरः शोफपाङ्गामयापहः ।

क्षवरोगे विष्वल्यस्थिः ।

मरिचपिष्पलीरोधपाठाधात्र्येलवालुकम् ॥ ९४ ॥

चब्यचित्रकजन्तुश्वकमुकोशीरचन्दनम् ।

पियहूङ्गलवलीमुस्तहरिद्रामिशिपेलवम् ॥ ९५ ॥

नतं पञ्चं त्वचं कुष्ठं नागकेसरसंयुतम् ।

एपामर्धपलान् भागान् द्राक्षां पष्टिपलां क्षिपेत् ॥ ९६ ॥

पलानि दश धात्रया गुडस्य च शतत्रयम् ।

तोयद्रोणद्रये सिद्धो भवत्येप सुखावहः ॥ ९७ ॥

ग्रहणीपाण्डुरोगार्शः कासगुहमोदरापहः ।

पिष्पल्यादिरिष्टोऽयं ज्वरांखचिविनाशनः ॥ ९८ ॥

शोफेऽष्टशतारिष्ठः ।

काइमर्यधात्रीमरिचाभयाक्षुद्राफलानां तु सपिष्पलीनाम् ।

शतं शतं क्षीद्रगुडात् पुराणात्तुलां च कुम्भे मधुना प्रलिप्ते ९९

सप्ताद्युप्णे द्विगुणं तु शीते स्थितं जलद्रोणयुतं पिवेत्वा ।

शोफान्विवन्धान्कफवातजांथं निहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोऽग्निकृच १००

तक्षस्थिः ।

हपुषा सुपवीं धान्यमजाजी कारवीं शटी ।

पिष्पली पिष्पलीमूलं चित्रको गजपिष्पली ॥ १०१ ॥

यवानी चाजमोदा च तच्चूर्णं तक्षसंयुतम् ।

मन्दाम्लकहुकं विद्रान् स्थापयेद्वृतभाजने ॥ १०२ ॥

व्यक्ताम्लकहुकं जानं नक्तारिष्ठं सुखप्रियम् ।

पाययेन्मात्रया कालेष्वन्नस्य दृष्टिं निषु ॥ १०३ ॥

दीपनो रोचनो वल्यः कफवातात्तुलोमनः ।

१. 'शवशयद्वः परम्' इनि पाठान्तरम् ।

कुष्ठशोफारुचिद्वरो वलवर्णाग्निवर्धनः ॥ ७९ ॥  
 सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ।  
 कृपिग्रन्थ्यरुद्व्यज्ञराजयह्मज्वरान्तकृत् ॥ ८० ॥  
 अदृश्या द्वितीयोऽभयारिष्टः ।

हरीतकीदलभस्थं प्रस्यमापलकस्य च ।

विशालायाः कपित्थस्य पाढाचित्रकमूलयोः ॥ ८१ ॥

द्वे द्वे पले समापोथ्य द्विद्रोणे साधयेदपाम् ।

पादशेषे च पूते च रसे तस्मिन्पदापयेत् ॥ ८२ ॥

गुडस्यैकां तुलां वैधः संस्थाप्य घृतभाजने ।

पक्षस्थितं पिवेन्नित्यं ग्रहण्यशोविकारजुत् ॥ ८३ ॥

श्रीदहृत्पाण्डुरोगघः कामलाविपमज्वरान् ।

कासं श्वासमुदावर्तं फलारिष्टे व्यपोहति ॥ ८४ ॥

प्रदृश्या तृतीयोऽभयारिष्टः ।

अष्टौ पलानि वर्षाभूदशमूलार्कचित्रकात् ।

दन्तीश्यापात्रिवृद्रास्नाथैवं स्युस्तिफलाढकम् ॥ ८५ ॥

अम्बुद्रोणाएके पक्त्वा पादशेषे रसे स्थिते ।

द्वे गुडस्य तुले पूते तत्पश्चाढटके क्षिपेत् ॥ ८६ ॥

गवां मूत्राढकं प्रस्थौ द्रावयोरजसस्तथा ।

विडङ्गं कुटजं कुष्ठं चित्रकं मरिचं वचाम् ॥ ८७ ॥

संचूर्ण्य द्रिपलान्यस्मिन्दत्या मासस्थितं पिवेत् ।

अभयारिष्टनामायं मेहार्शः कुष्ठशोफहा ॥ ८८ ॥

श्रीदपाढामयान् गुलमान् जटराणि च नाशयेत् ।

पाण्डुरोगे मण्डरारिष्टः ।

मण्डूरस्य तु शुद्धस्य तुलार्थं परिकल्पितम् ॥ ८९ ॥

नद्रहृष्टोहस्य पत्राणि तिलोत्सेधप्रमाणतः ।

गुडाजीर्णागु पञ्चाशत्कोलभस्थवर्यं तथा ॥ ९० ॥

निकुम्भचित्रकाभ्यां च पले द्वे द्वे सुचूर्णिते ।

पिपलीभां विडङ्गात्वं कुडवं कुडवं पृथक् ॥ ९१ ॥

त्रींश्चापि त्रिफलान्योग्या जलद्रोणे विपाचयेत् ।

अर्धमासस्थितो धान्ये ध्योऽरिष्टः प्रमाणतः ॥ ९२ ॥

शंहे रोहीतमनवः ।

हीतकरुतमेकं कथितं द्रोणे चतुर्यशेषे तु ।

सिमनुदशतमेकं योज्यं शेषैः सुचूर्णितेरभिः ॥ ११५ ॥

लमेक त्रिफलाया देयं त्रिपलं च धातकीपुष्पात् ।

लिङ्कं च पञ्चकोलादृतभाण्डे स्थापयेत्पक्षम् ॥ ११६ ॥

ज्वरसुलमार्शः प्रीहसुगस्थिग्रहपाण्डुरोगम्भः ।

अर्थस्तु गणिकाद्रोणः ।

दधात्सलिलद्रोणं कृतमन्येष्टुगणिकाद्रोणम् ॥ ११७ ॥

धान्ययवानीदीप्यकपृथ्वीकाव्येति कुडवांशाः ।

द्रिपलीनाः स्युर्देयास्तेजस्वतीचव्यचित्रकाजाज्यः ॥ ११८ ॥

मधुनः कुडवं दत्त्वा घृतस्त्रे भाजने स्थाप्यः ।

एप काञ्जिकरानो लवणयुतः कदत्तुणार्द्धसुगन्धः ॥ ११९ ॥

दशरात्रात्पातव्यः सलिलं च मुनः पुनर्देयम् ।

अर्शोभगन्दरगदग्रहणीगेदः प्रमेहदोषांश्च ॥ १२० ॥

नाशयति सेव्यमानो वद्विकरो गणिकाद्रोणः ।

कुठे चादिरासवः ।

सदिरस्य तुलार्थं तु तच्चुल्यं देवदार्वपि ॥ १२१ ॥

वरोया विशतिर्दार्व्याः पलानां पञ्चविंशतिम् ।

वाकुच्या द्वादशपलान्यष्टद्रोणेऽम्बसः पचेत् ॥ १२२ ॥

द्रोणशेषे कपाये तु पूते शति विनिश्चिपेत् ।

माक्षिकस्य शतद्रन्दं धातक्याः पलविंशतिम् ॥ १२३ ॥

शर्करायास्तुलमेकां चूर्णनीमानि दापयेत् ।

कफ्कोलकं लवङ्गं च हेला जातीफलं त्वचम् ॥ १२४ ॥

केसरं मारिचं पत्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ।

कुडवं पिष्पवीनां तु स्थापयेदृतभाजने ॥ १२५ ॥

मासादूर्ध्वं पिवेन्मात्रामेष्वस्याग्निवलावलम् ।

१ 'वायाः' इति पाठान्तरम् ।

गुदध्ययुकण्डतिनाशनो वलवर्धनः ॥१०४॥

अर्थेचके लघुकान्धानम् ।

गुडक्षीदारनालानां समस्तूनां यथोत्तरम् ।

शंसनित द्विगुणान्भागान्सम्यक्कुक्रस्य सिद्धये ॥१०५॥

यन्मस्त्वादि शुची भाण्डे सक्षीद्वगुडकातिकम् ।

धान्यराशी विराच्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ॥ १०६ ॥

मनश्चैष वृद्धगुडसन्धानम् ।

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुपजलात्पस्थत्रयं चाम्लतः

प्रस्थार्थं दधितोऽथ मूलकपलान्यष्टी गुडान्मानिका ।

मान्यौ शोधितशृङ्खवेरशकलाद्वे सिन्धुजातात्पले

द्वे कृष्णापणयोर्निशापलयुगं निःस्त्रिप्य भाण्डे द्वे ॥१०७॥

स्त्रिघे धान्ययवादिरागिनिहितं शीन्वासरान्वासये-

द्वीपे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षामु पुष्पागमे ।

पद् शीतेऽष्टदिनान्यतः परामिदं विस्ताव्य संचूर्णिते-

श्रातुर्जातपलैः सुसंहितमिदं शुक्तं च चुक्रं तथा ॥ १०८ ॥

हन्याद्रातकफापदोपजनितन्नानाविधानामयान्

दुर्नामानिलशूलगुलमजडरान्हत्वाऽनलं दीपयेत् ॥ १०९ ॥

दवद्वासनः ।

लवङ्गपिष्पलीलोहमरिचं सैलवालुकम् ।

द्विपलांशं जलस्यैतचतुर्दीणे विपाचयेत् ॥ ११० ॥

द्रोणशेष रसे तस्मिन्यूते शीते प्रदापयेत् ।

गुडस्य द्रिशतं तिष्ठुचत्सर्वं घृतभाजने ॥ १११ ॥

पक्षादूर्ध्वं रसे जाते दद्यान्मात्रां यथावलम् ।

अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुदजा यान्ति संक्षयम् ॥ ११२ ॥

ग्रहणीपाण्डुहृदोग्नीहुलमोदरापहः ।

अरुचिकुपुशोकप्त्रो वलवर्णामिवर्धनः ॥ ११३ ॥

सयः क्षयहरोऽरिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ।

कृमिग्रन्थ्यर्द्वयङ्गराजयक्ष्यज्वरान्तकृद् ॥ ११४ ॥

गुडस्य त्रिशतं तत्र धातव्याः पलविंशतिम् ।

मरिचं केसरं श्यामेलात्वकपत्रकं पलम् ॥ १३९ ॥

कुट्टवं पिष्पलीनां तु चूर्णाकृत्य प्रदापयेत् ।

घृतभाण्डे स्थितं मासं पिवेन्यात्रां यथावलम् ॥ १४० ॥

क्षयापस्मारकासायुक्तशोफगुल्मभगन्दरान् ।

पुष्करासव इत्येप प्रयोगदेव नाशयेत् ॥ १४१ ॥

क्षयरोगे माचिकासवः ।

माचिकायाः शतार्थं तु द्रोणेऽपां च विपाचयेत् ।

तस्मिंश्चतुर्थशेषे तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १४२ ॥

गुडस्य द्विशतं दत्त्वा तत्सर्वं घृतभाजने ।

विड्ग्नपिष्पलीकृष्णात्वगेलापत्रकेसरैः ॥ १४३ ॥

मरिच्यश्च तथा चूर्णं सम्यकृत्या विचक्षणः ।

शिषेच्च पालिंकर्भार्गविष्टनीयं सपन्ततः ॥ १४४ ॥

ततो यथावलं पीत्वा कासश्चासगलामयान् ।

इन्ति यक्षमाणमत्युप्रमुरःसन्धानकारकः ॥ १४५ ॥

माचिकासव इत्येप व्रह्मणा निर्मितः पुरा ।

शोके पुनर्नवासवः ।

पुनर्नवे द्वे च पले सपाठे दन्तां गुह्यां सह चित्रकेण ।

निदिग्धिकां च त्रिपलां विपाच्य द्रोणावशेषे सलिले तत्सरु पूत्वा रसं द्वे च तुले पुराणादृढान्मधुप्रस्थयुतं मृशीते ।

मासं निदध्यादृतभाजनस्थं पछे यवानां परतश्च मासात् चूर्णाकृतैरर्धपलाशकेस्तं हेमत्वगेलापरिचाम्बुपत्रैः ।

गन्धान्वितं क्षौद्रघृतप्रदिग्धं जीर्णे पिवेव्याधिवलं समीक्ष्य

हृत्पाण्डुरोगं श्वययुं पश्यद्दं प्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान् ।

भगन्दराशोजदराणि कासश्चासग्रहण्यामयकुष्ठकण्डः ॥ १४६ ॥

शाखानिलं घद्धपुरीपतां च हिक्को किलासं च हृलीमकं ८

क्षिरं जयेद्वेष्वलायुरोजस्तेजोन्वितो मांसरसान्नभोजी ॥ १४७ ॥

सर्वजुमुहरो षेष पाण्डुहद्रोगकासनुवृत् ॥ १२६ ॥

कृमिग्रन्थ्यरुद्ग्रान्विषुल्मधीहंदरान्तकृत् ।

एष च सदिरारिष्टः कृष्णाच्रेयेण पूनितः ॥ १२७ ॥  
कुप्ते द्वितीयः सदिरारिष्टः ।

खदिरस्य तुलामम्भसि विषचेचुद्रोणसंमिते षेषम् ।

पादं विगृह शीते दथान्मधूनस्तुलां सार्थाम् ॥ १२८ ॥

वद्विषुते नृण व्योपत्रिपलापिण्डखर्जुर्गी- ।

स्वर्णन्वाकुचिकामृताविडङ्गपलाशानाम् ॥ १२९ ॥

धातर्कीं दक्षपत्रां दक्षा प्रविलोदितं नित्यम् ।

यावत्पोटशदिवसाः पोटशके मधुतुलां दद्यात् ॥ १३० ॥

मागात्परतः पेयो दक्षा मुग्नाभिमापकं पटे वद्धम् ।

कर्पूरमापद्यमैष सदिरासवो महाकुष्टे ॥ १३१ ॥

क्षयरोगे बनुभ्याशवः ।

तुलाद्रयं तु बनुल्याधनुद्रोणेऽम्भसः पचेन् ।

द्रोणशेषे रसे शीते शुद्धस्य त्रिशतं शिषेत् ॥ १३२ ॥

धातवयाः प्रस्थमेकं तु विष्पलीनां पलद्वयम् ।

जातीलवङ्गकङ्गोलमेलात्ववपत्रकेमरम् ॥ १३३ ॥

परिचेन समापुक्तं पलिकं तत्र कल्पयेत् ।

मागमात्रं स्थितो षेष वनुल्यासवसंक्षितः ॥ १३४ ॥

क्षयं कुष्टं प्रमेहांश्च कासधासांश्च नाशयेत् ।

क्षयरोगे पुण्डरमूलाशवः ।

तुलां पुण्डरमूलस्य तदर्थं तु दुरालभा ॥ १३५ ॥

तदर्थेन तु धान्याकं व्योपाच पलविंशतिः ।

मजिष्ठाकुष्टमरिचं कपित्यं देवदारु च ॥ १३६ ॥

विढङ्गं चविका रोध्रं पिष्पलीमूलमेव च ।

काशमर्यं च तथोशीरं रात्रा भाङ्गीं च नागरम् ॥ १३७ ॥

एषां द्विपलिकान्भागांश्चनुद्रोणेऽम्भसः पचेत् ।

द्रोणशेषे कपाये तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १३८ ॥

गुदस्य त्रिशतं तत्र धातक्याः पलविंशतिम् ।

मरिचं केसरं ज्यामामेलात्वकपत्रकं पलम् ॥ १३९ ॥

कुट्टवं पिप्पलीनां तु चूर्णोकृत्य प्रदापयेत् ।

घृतभाष्टे स्थितं मासं पिवेन्मात्रां यथावलम् ॥ १४० ॥

क्षयापस्मारकासामुखशोफगुल्मभगन्दरान् ।

मुष्करासव इत्येष प्रयोगादेव नाशयेत् ॥ १४१ ॥

धायरोगे माचिकासवः ।

माचिकायाः शतार्धं तु द्रोणेऽपां च विपाचयेत् ।

तस्मिंश्चतुर्थशेषे तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १४२ ॥

गुदस्य द्विशतं दत्त्वा तत्सर्वं घृतभाजने ।

विहङ्गपिप्पलीकृष्णात्वगेलापत्रकेसरः ॥ १४३ ॥

मरिचं तथा चूर्णं सम्यकृत्या विचक्षयः ।

क्षिपेच पालिकैर्भागीर्धिनीयं समन्तनः ॥ १४४ ॥

ततो यथावतं पीत्वा कासाचासगन्दायथन् ।

द्वन्ति यज्ञमाणपत्सुप्रमुरः सन्धानकाहृदः ॥ १४५ ॥

माचिकासव इत्येष व्रह्मणा निर्मितः ॥ १४६ ॥

शोके पुनर्नाशयेत् ।

पुनर्निवे द्वे च पले सपाठे दन्तीं गृह्णेत् ॥ १४७ ॥

निदिग्धिकां च त्रिपलां विपाच्य द्रुतं विचक्षयेत् ॥ १४८ ॥

पूत्वा रसं द्वे च तुले पुगाणाद्विन्द्रियान्वयेत् ॥ १४९ ॥

मासं निदध्याघृतभाजनमर्थं च ॥ १५० ॥

चूर्णोकृतरथपलां गृह्णेत् ॥ १५१ ॥

गन्धान्वितं क्षौद्रघृतगृह्णेत् ॥ १५२ ॥

हृत्पाण्डुरोगं श्वयतु ॥ १५३ ॥

भगन्दराशोजडगृह्णेत् ॥ १५४ ॥

शाखानिवं विचक्षयेत् ॥ १५५ ॥

क्षिपं जयेत् ॥ १५६ ॥

शोके त्रिकलारिष्टः ।

फलत्रयं पिण्डलिचित्रकौं च सदीप्यकं लोहरजो विड्हम् ।

चूर्णीकृतं कौडविकं, द्विरंशं क्षीद्रं, पुराणस्य तुलां गुडस्य ।

मासं निदध्यादृतभाजनस्यं यवेषु तानेवं निहन्ति रोगान् ॥५१॥

सर्वोक्ते कासकासवः ।

वासकस्य तुले द्वे तु द्विद्वेषेऽपां विपाचयेत् ।

कृत्वा द्वेणार्धशेषं तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १५२ ॥

गुडस्यैकां तुलां तत्र धातक्यास्तु पलाष्टकम् ।

क्षिप्तचूर्णीकृतं तस्मिन् त्वगेलापत्रकेसरम् ॥ १५३ ॥

कद्धोलव्योपतोयानि पलिकान्युपकल्पयेत् ।

सम्यक्पकं ततो शात्वा पक्षादूर्ध्वं पिवेद्मुम् ॥ १५४ ॥

वासकासव इत्येप सर्वश्वयथुनाशनः ।

धर्मस्मु शर्करासवः ।

पस्थं दुरालभायास्तु चित्रकस्य दृष्टस्य च ॥ १५५ ॥

पथ्यामलकयोश्चैव पाठाया नागरस्य च ।

दध्याद्विपलिकान्भागाङ्गलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १५६ ॥

पादशेषे रसे पूते सुशीते शर्कराशतम् ।

दत्त्वा कुम्भे द्वे स्थाप्य मासार्थं धृतभाजने ॥ १५७ ॥

प्रलिप्ते पिण्डलीचव्यप्रियज्ञुमधुसर्पिंपा ।

तस्य मात्रां पिवेत्काले शर्करास्य यथावलम् ॥ १५८ ॥

अशांसि ग्रहणीरोगमुदावर्तपरोचकम् ।

शकुन्मूवानिलोद्धारचिवन्धानग्निमार्दवम् ॥ १५९ ॥

हद्रोगं पाण्डुरोगं च सर्वमेतत्प्रणाशयेत् ।

प्रदृश्या द्राक्षासवः ।

मृदीकायास्तुलामेकां चतुद्वेषेऽप्तमसः पचेत् ॥ १६० ॥

द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन्प्रदापयेत् ।

द्वे शते क्षीद्रसण्डाभ्या धातक्याः पस्थमेव च ॥ १६१ ॥

<sup>१</sup> पुनर्नैशासवपट्टिनित्यर्थः ।

कङ्कोलकलवङ्गे च जातीफलमर्थैव च ।  
पलांशकानि मरिचत्वगेलापत्रकेसरम् ॥ १६२ ॥

पिष्पली चित्रकं चव्यं पिष्पलीमूलरेणुकम् ।  
बृतभाण्डे स्थितं चेदं चन्दनागुरुधूपिते ॥ १६३ ॥

कर्पूरवासितो हेष ग्रहणीदीपनः परः ।  
अर्शसां नाशनः श्रेष्ठ उदावर्तास्पित्तनुत् ॥ १६४ ॥

जठरकृमिकुष्टानि ब्रणांश्च विविधांस्तथा ।  
अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगविनाशनः ॥ १६५ ॥

ज्वरं हन्ति महाव्याधिं पाण्डुरोगं सकामलम् ।  
नाम्ना द्राक्षासवो हेष बृंहणो बलवर्णकृत् ॥ १६६ ॥

अर्शसि द्वितीयो द्राक्षासवः ।

द्राक्षापलशतं दत्त्वा चतुर्दोणेऽम्भसः पचेत् ।  
द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १६७ ॥

शर्करायास्तुलां दत्त्वा तत्तुलयं मधुनस्तथा ।  
पलानि सप्त धातक्याः स्थापयेदाज्यभाजने ॥ १६८ ॥

जातीलवङ्गकङ्कोललवलीफलचन्दनम् ।  
कृष्णां त्रिगन्धसंयुक्तां भागानर्घपलांशकान् ॥ १६९ ॥

त्रिःसप्ताहाद्वेत्पेयस्तस्य मात्रा यथाबलम् ।  
नाम्ना द्राक्षासवो हेष नाशयेद्दुक्तिलकान् ॥ १७० ॥

शोफारोचकहृत्पाण्डुरक्तपित्तभगन्दरान् ।  
गुल्मोद्रकृमिग्रन्तिक्षतशोपज्वरान्तकृत् ॥ १७१ ॥

वातपित्तप्रशमनः वस्तथ बलवर्णकृत् ।  
ग्रहण्यो वीजकासवः ।

वीजकात्प्रस्थमेकं तु त्रिफलायाश्च विशतिः ॥ १७२ ॥

द्राक्षायाः पञ्च लाक्षायाः सप्त द्रोणे तथाऽम्भसि ।  
साध्यं पादावशेषे च पूतशीते प्रदापयेत् ॥ १७३ ॥

शर्करायास्तुलां प्रस्यं क्षीरं दद्याच्च कार्पिकम् ।

व्योपव्याघनखोशीरं क्रमुकं सैलवालुकम् ॥ १७४ ॥  
 मधुकं कुष्ठमित्येतज्जूर्णितं धृतभाजने ।  
 येवु दशरात्रस्थं ग्रीष्मे, द्विः शिशिरे स्थितम् ॥ १७५ ॥  
 पिवेत्तद्रहणीपाण्डुरोगार्थःशोफगुल्मनुत् ।  
 मूत्रकृच्छ्राद्यमरीकुष्ठकामलासन्निपातनुत् ॥ १७६ ॥  
 अर्शसि पीत्वासवः ।

द्रोणं पीत्वासस्य वस्त्रगलितं न्यस्तं हविर्भाजने  
 युज्जीत द्विपलैर्मदामधुफलासर्जुरधात्रीफलैः ।  
 पाठामाद्रिदुरालभाम्लविदुलव्योपत्वगेलोल्लकैः  
 सृष्टकाकाललवङ्गवेदुचपलामूलामिकैः पालिकैः ॥ १७७ ॥  
 गुडशतविनियोजितं निवाते  
 निहितमिदं प्रपिवेष्य पक्षमात्रात् ।  
 प्रशमयति गुदाङ्गुरान्सगुल्मा-  
 ननलवलं प्रवलं च संविधत्ते ॥ १७८ ॥  
 रक्तविते उशीरासवः ।

उशीरं पद्मकं रोद्धं प्रियङ्गं नीलमुत्पलम् ।  
 श्रैष्टाण्डरीकं काइपीरं न्हीवरं धन्वयासकम् ॥ १७९ ॥  
 सेव्यं किराततिक्तं च पटोले काञ्चनारकम् ।  
 पद्मं शालमलिनिर्यासं न्यग्रोधोदुम्बरं शटी ॥ १८० ॥  
 माङ्गिष्ठा पर्षटं जम्बूर्भागानेषां पलोन्मितान् ।  
 सूक्ष्मचूर्णीकृतान् दयाद्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ १८१ ॥  
 धातक्याः प्रस्थमेकं तु तोयद्रोणे विनिक्षिपेत् ।  
 शर्करायास्तुलां दत्त्वा माक्षिकस्य तुलां तथा ॥ १८२ ॥  
 उशीरासव इत्येप रक्तपित्तविनाशनः ।  
 पाण्डुकुष्ठमेहार्थःकृमिशोफहरस्तथा ॥ १८३ ॥  
 खासकाश्वेष्यागमाणासवः ।  
 त्रायन्ती कट्टफले दन्ती पौष्टकरं कष्टकारिका ।  
 दुरालभाऽजनं सिंही पिष्पलीमूलमेव च ॥ १८४ ॥

धात्री कृमिहरं भार्ही माचिका चैलवालुकम् ।  
 पद्ध्या शटी विशाला च भागानष्टपलोन्मितान् ॥ १८५ ॥  
 चतुर्दीणेऽभसः पवत्वा शृतं द्रोणावशेषितम् ।  
 शतत्रयं मासिकस्य धातव्या पलविंशतिम् ॥ १८६ ॥  
 इयामापलानि चत्वारि हेलात्ववपत्रकेसरम् ।  
 भागान्द्रिपलिकानेपां चूर्णं कृत्वा विनिःक्षिपेत् ॥ १८७ ॥  
 त्रायमाणासवो द्येप कासश्वासामयपणुत् ।  
 पाण्डुहृद्रोगगुल्मार्शः सन्निपातज्वरापहः ॥ १८८ ॥

गुणे चविष्टासवः ।

तुलार्थं चविकायास्तु तदर्थं चित्रकस्य च ।  
 वापिका पौष्टरं मूलं पद्मन्या हणुपा शटी ॥ १८९ ॥  
 पटोलमूलविफलायवानीकुटजत्वचः ।  
 विशाला धान्यकं रात्ना दन्ती दशपलोन्मिताः ॥ १९० ॥  
 कृमिघमुस्तपञ्जिष्ठादेवदारुकदुत्रिकात् ।  
 भागान्पञ्चपलानेतानष्टद्रोणेऽभसः पचेत् ॥ १९१ ॥  
 द्रोणशेषे सुशीते च देयं गुडशत्रयम् ।  
 धातव्या विंशतिपलं चातुर्जातपलाएकम् ॥ १९२ ॥  
 लवहङ्गव्योपकङ्गोलं पलिकानि प्रकल्पयेत् ।  
 निदध्यान्मासमेकं तु शृतभाण्डे सुसंस्कृते ॥ १९३ ॥  
 चतुर्पलां पिवेन्मात्रां भ्रातः पीतां नियच्छति ।  
 सर्वान्गुलमविकारांश्च प्रमेहार्थ्यव विंशतिम् ॥ १९४ ॥  
 प्रतिश्यायं क्षयं कासमष्टीलां वातशोणितम् ।  
 उदराण्यवृद्धिं च चविकार्घ्यो महासवः ॥ १९५ ॥

प्रहृष्टां मूलासवः ।

द्विपञ्चमूलरजनीजीवकर्पभजीरकम् ।  
 पृथक्वपञ्चपलं र्भार्गश्चतुर्दीणेऽभसः पचेत् ॥ १९६ ॥  
 द्रोणशेषे रमे एते गढस्य द्रिश्यतं तथा ।

चूर्णितानुडवार्थाशान्दन्वा चात्र सप्तशिखान् ॥ १९७ ॥

---

दृश्यम् ॥ १९८ ॥

एष मूलासवः सिद्धो दीपनी रक्तपिताहा ।

आमहन्कफद्वेगपाण्डरोगाङ्गमादनृत् ॥ १९९ ॥

क्षयेते कृम्मूलाशवः ।

महाएवसवदार्कीणां विना मूर्लैः परः शुर्पैः ।

अष्टोत्तरश्वतैरम्भत्विनद्वयितं पचेन् ॥ २०० ॥

तुलात्रयप्रयाणं च दशमूल्यास्तथैव च ।

अष्टायनेषमुत्ताय गुडस्यानु दिनदयम् ॥ २०१ ॥

पलानां विशतिशतं शिष्पेत्य द्वेष्टे घटे ।

आतपे तं विनिसिष्य धारयंविद्रिनं तनः ॥ २०२ ॥

उदृत्य धूपिते पात्रे वस्त्रपूर्णं शिष्पेद्विषक् ।

पलाएकं हरीतकया धातकयाः पलविशतिम् ॥ २०३ ॥

पूर्णानां विशतिपलं पिष्पलयाः पलपञ्चकम् ।

एलालवङ्गकङ्गोलजातीत्वयपत्रकेसरम् ॥ २०४ ॥

पलं पलं समरिचं नूर्णांकृत्य भिषग्मरः ।

आसवे निक्षिपेत्य भृगुनः कुडवद्यम् ॥ २०५ ॥

संजातेऽष्टदिने तस्मादुदृत्यान्यत्र तं न्यमेत् ।

आसवे सकपाये तु गुडमन्यं प्रदापयेत् ॥ २०६ ॥

निष्कास्य पूर्वचूर्णं तु नवं तत्र नियोजयेत् ।

नाम्ना मूलासवो धैप रोगराजनिकृत्तनः ॥ २०७ ॥

भासामवातविध्वंसो पाण्डुश्चीदोदरापहः ।

कृमिगुल्ममेहाणां नाशनां वहिदीपनः ॥ २०८ ॥

धातुशये भृगुराजाशवः ।

भृगुराजरसद्रोणं गुडस्य द्वितुलां तथा ।

प्रस्थार्थं तु हरीतकयाः निर्ग्धे भाण्डे निवेशयेत् ॥ २०९ ॥

, मूडरहितेर्व्वसवकर्मायवयवैरिक्यर्थः ।

पक्षादूर्ध्वं पिवेदेनं पात्रया च यथावलम् ।  
 जाते हास्मिन्पुनर्दत्त्वा पिष्पल्याश्च पलद्वयम् ॥ २१० ॥  
 जातीफलं लवझानि त्वगेलापत्रकेसरम् ।  
 धातुक्षयं जयेत्पीतिः कासं पञ्चविधं तथा ॥ २११ ॥  
 कृशानां च महापुष्टिं कुरुते च महावलम् ।  
 कामदृष्टिं करोत्येप वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत् ॥ २१२ ॥  
 भगवन्दरे गुगुच्छासवः ।  
 शतं हरीतकीनां तु विभीतकशतं तथा ।  
 मस्थमामलकानां च गुगुलोश्च चतुष्पलम् । २१३ ॥  
 त्वगेलापिष्पलीमूलचव्यचित्रकदीप्यकम् ।  
 व्योपं तालीसपत्रं च मुस्तकेसरकदफलम् ॥ २१४ ॥  
 जलद्रोणे विपक्तच्यं पादशेषे जले ततः ।  
 धातक्याः प्रस्थमेकं तु तथा शुडशतद्वयम् ॥ २१५ ॥  
 द्राक्षादाढिमखण्डानां भागान्दशपलोनिमितान् ।  
 सर्वमेतत्समालोड्य स्थापयेद्वाजने शुभे ॥ २१६ ॥  
 यदा शुक्तरसः स्याच्च मुजातो गन्धवर्णतः ।  
 तं पूरयेत्तदा भाण्डे शुक्तस्येष्वरसस्य तु ॥ २१७ ॥  
 पृष्ठाससंयुतो हेष द्रवो पेषः प्रयोगतः ॥ २१८ ॥  
 गुगुल्यासव इत्येप देयः सर्वेषु रोगिषु ।  
 पागभक्तं मध्यभक्तं वा ग्रासे ग्रासान्तरे तथा ॥ २१९ ॥  
 दधात्कमेण योगं तु वयः सात्म्यमपेक्ष्य च  
 नाशयेदुदरं श्रीहामूरुस्तम्भं सकामलम् ॥ २२० ॥  
 चिरोत्थितमपि शासं कासशोकभगवन्दरान् ।  
 कृमिकुष्टप्रमेहेषु द्वितैवामिदीप्यनः ॥ २२१ ॥  
 अर्द्धसु ताम्बूलासवः ।  
 जहुलिसं ननु कृत्वा भाण्डकमध्यप्रवेशितं भूमौ ।  
 न च रुणहरितं भूषूपत्रकायेन संशुद्धम् ॥ २२२ ॥

शुद्धे च शर्कराभिरगरुं दद्यात्मुगन्धतरम् ।  
 वासार्थं, धातक्याः पलानि खलु सप्त देयानि ॥ २२३ ॥  
 पूर्णीकलानि खादिरं दशपलिकानि दापयेत्तत्र ।  
 ताम्बूलीपत्रशतैर्दशाभिः क्षुण्णैश्च पञ्चभिश्चान्यैः ॥ २२४ ॥  
 पलशतमेकं मधुनः शतं च सार्थं तु वारिणो देयम् ।  
 कङ्गोलककृष्णानां प्रत्येकं द्वे पले च स्युः ॥ २२५ ॥  
 त्रिफलाजातिफलैलालवङ्गकुमुमानि चैकपलिकानि ।  
 दत्त्वाऽवलोङ्गयेतत्रीणि दिनानि पाणिना पात्रे ॥ २२६ ॥  
 स भवेद्यदा सशब्दस्ततो गुडशतपलानि त्रीणि ।  
 देयानि प्रविलीनमग्नियोगात्तं तु जलद्रोणसंयुक्तम् ॥ २२७ ॥  
 पक्षद्रव्येन पेयो रसनाक्षिमनोहरः सुरभिगन्धः ।  
 ताम्बूलासव एप रसायनानां भवेद्ययः ॥ २२८ ॥  
 प्रीणयति हन्ति गुडजान् सर्वाश्च कफोद्भवांस्तथा रोगान् ॥  
 वलवर्णशुक्रजननो गुपयोगादृपर्णं हन्यात् ।  
 संवत्सरमुपयुक्तः स्थिरस्वयसं मानवं कुरुते ॥ २२९ ॥

अपस्मारे पश्यूत्रासवः ।

अजागोमुरभीर्णां च चतुष्पर्णं खरोष्टयोः ।  
 मूर्वं संग्राह्य कुम्भे च दत्त्वा चूर्णं प्रदापयेत् ॥ २३१ ॥  
 वचाया वातकुम्भस्य लघुनस्यैलया सह ।  
 प्रत्येकं तु लवङ्गस्य पलार्थं कृमिनाशिनः ॥ २३२ ॥  
 व्योपस्थापि पलं सार्धमभयैकपला मता ।  
 चुह्यग्रे वासरान्सप्त निक्षिप्याशु समुद्धरेत् ॥ २३३ ॥  
 स्त्रीहोदरहरं दिव्यं सृष्टवातकफापहम् ।  
 अशीतिवातशमनं पञ्चमूत्रासवं विदुः ॥ २३४ ॥

धातुक्षये द्वीतीक्षयासवः ।

प्रस्थार्थं तु द्वीतीक्षयाः धात्रीप्रस्थद्रव्यं तथा ।  
 दशमूलशतार्थं च पौष्टिकं च तद्धर्धकम् ॥ २३५ ॥

तत्तुल्यं चित्रकं दयाचित्रकार्था दुरालभा ।  
 गुह्या विशतिपलं विगालापलपञ्चकम् ॥ २३६ ॥  
 खदिस्य पलान्यष्टौ तदर्थं वीजपूरकम् ।  
 मञ्जिष्ठा मधुकं कुषुं कपित्थं देवदारुकम् ॥ २३७ ॥  
 विडङ्गं चविकां रोधं भाङ्गी स्यदेलवालुकम् ।  
 संवर्तकं कणां चैव क्रमुकं शटिसुप्रभम् ॥ २३८ ॥  
 मियद्गुसारिवामांसीनागकेसरंणुकम् ।  
 विष्टुतां रजनीं रास्तां मेषशृङ्गां पुनर्नवाम् ॥ २३९ ॥  
 शताहां रोहिणीं दन्तां पलांशां काथयेजले ।  
 चतुर्थभागशेषे तु द्राक्षां पष्टिपलां क्षिपेत् ॥ २४० ॥  
 विंशत्पलानि धातकया गुडाच्छुदाच्चतुःशतम् ।  
 द्राविंशत्पलिकं सौद्रं सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ २४१ ॥  
 भाण्डं पुराणं सुस्तिगम्ये मांसीमरिचधूपिते ।  
 शृणिते च पुनर्दद्यान्विष्पलीनां पलद्रयम् ॥ २४२ ॥  
 जातीफलं लब्दं च त्वगेलापत्रकेसरान् ।  
 कर्षपात्रां च नेपालीं दत्त्वा पंक्षं निधापयेत् ॥ २४३ ॥  
 कतकफलचूर्णेऽपि क्षिमे निर्मलता भवेत् ।  
 पक्षादूर्ध्वं पिवेदस्तु मात्रया च यथावलम् ॥ २४४ ॥  
 धातुक्षयं जयेत्पीतः कासं पञ्चविधं तथा ।  
 अर्णीसि पद्मकाराणि तथाऽग्न्यावुदराणि च ॥ २४५ ॥  
 प्रमेहं च महाव्याधिमरुचिं पाण्डुतां तथा ।  
 मर्वान् वातान् तथाऽप्यामं श्वासं छदिं तथैव च ॥ २४६ ॥  
 अग्नादर्शैव कुष्ठानि शोर्पं शूलं भगन्द्रम् ।  
 शर्करां मूत्रकृच्छ्रं च दृश्यर्पीं च विनाशयेत् ॥ २४७ ॥  
 कृशानां च महापुष्टिं कुरुते च महावलम् ।

१ ‘गुम’ इनि पाठान्तरम् ।

महविगो महतिजा महावीर्यवलोद्धतः ।

कामपुष्टि करोत्येष वन्ध्यानां पुनदो भवेत् ॥ २४८ ॥  
आर्तव्याधामवः ।

नेत्रभेषजशिफापलाष्टकं सार्धमैलपलमर्घमस्तकीम् ।

द्वेमजार्धपलमेकतः कृतं द्रोणवारिपिलितं दिनत्रयात् ॥ २४९ ॥

यः पिवेद्विपिलिकं दिनोदये नीरमस्तसमये समाहितः ।

तस्य नश्यति कटीसमुद्रवं दद्व मासयुगलेन निश्चितम् ॥ २५० ॥  
दाये दशमूलासवः ।

दशमूलतुलार्धं तु पाष्ठकरं च तदर्धकम् ।

तचुल्यं चित्रकं दधाचित्रकार्धी दुरालभाष् ॥ २५१ ॥

गुह्यां च तथा रोव्वं भद्रयात् पलविंशतिम् ।

खदिरस्य पलान्यष्टौ तत्समं योजसारकम् ॥ २५२ ॥

प्रस्थमामलकीनां च तदर्धा च हरीतकी ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं कपितथं देवदारुं च ॥ २५३ ॥

विड्वं चविका शक्षं भाङ्गी स्यादृष्टवर्गकम् ।

चिट्ठा रजनी राजा कर्कटाख्या पुनर्नवा ॥ २५४ ॥

प्रियद्वासारित्रामांसीनागकेसररेणुकम् ।

शतान्द्रयवामुस्तं द्विपलान् काथयेज्जले ॥ २५५ ॥

अष्टद्रोणे, चतुर्थांशं काथमत्रावतारयेत् ।

द्राक्षायाः पलपुष्टि वै काथयित्वा चतुर्गुणे ॥ २५६ ॥

जले त्रिमागदेषे तु पूते तस्मिन्विनिक्षिपत् ।

त्रिशत्पलानिं धातव्या गुडाच्छुद्धाच्चतुःशतम् ॥ २५७ ॥

द्वात्रिशत्पलिकं क्षीद्रैं सर्वमेकत्र कारयेत् ।

भाण्डे स्त्रिग्ये पुराणे च मांसीपरिच्छृणिते ॥ २५८ ॥

१) नेत्रभेषजे 'संको' 'संकामुखी' इति हयातं, तन्मूलं अष्टपलं; ऐलः 'एषिया' 'मुखार' इति हयातः, तस्या अष्टपलं; मस्तकी 'हर्मीमस्तकी' इति हयाता, तस्या अष्टपलं; द्वेमजा 'रेणदबोनी' इति हयाता, तस्या अष्टपलं; अन्य-रस्फुटम् ।

धूपिते च पुनर्दद्यात्पिष्ठलीनां पलद्रयम् ।  
जातीफलं लवज्जं च त्वगेलापत्रकेसरान् ॥ २५९ ॥  
जातीपत्रां च कङ्गोलं चन्दनं वालुकं तथा ।  
कर्पमात्रां च नेपालीं दत्त्वा भूमौ निधापेत् ॥ २६० ॥  
पक्षादूर्ध्वं पिवेदेतं मात्रया च यथावलम् ।  
धातुक्षयं जयेत्पीतः कासं पञ्चविधं तथा ॥ २६१ ॥  
अर्शसि पद्मकाराणि तथाऽष्टावुदराणि च ।  
प्रमेहं च महाब्याधिमरुचिं पाण्डुतां तथा ॥ २६२ ॥  
सर्वान्वातांस्तथाऽप्यामं श्वासं छर्दिमरोचकम् ।  
अष्टादशव छुषानि शोफं शूलं भगन्दरम् ॥ २६३ ॥  
शर्करां मूत्रकृच्छ्रं च हृशमरीं च विनाशयेत् ॥ २६४ ॥  
महावेगो महावीर्यो महातेजा महाश्युतिः ।  
कामपुष्टिकरो ह्यप वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत् ॥ २६५ ॥

स्वर्जीरासदः ।

खर्जूरमुस्तामलकीनिकुम्भाद्राक्षाभयापूर्गफलानि पाठा ।  
भाङ्गीशटीकुपुजलाजमोदं भूलं कणायाः सपलङ्घपं वै ॥ २६६ ॥  
पुनर्नवा कायफलं प्रियम्भूः कर्चूरकं कृष्णमजाजिविसे ।  
त्रिवृच्छ्वाच्छलिधमासकं च लज्जालुरोहीतकलिङ्गमूलम् ॥ २६७ ॥  
अमूनि सर्वाणि महीपधानि चत्वारि चत्वारि पलानि चैव ।  
मांसीचतुर्जानकणालवज्जं जातीफलं चन्दनलोहचूर्णम् ॥ २६८ ॥  
प्रमाणतो द्विद्विपलान्यमूनि सुधातकीपुष्पपलानि सप्त ।  
गुडस्य सप्त त्रिगुणानि दद्यान्मणानि संचूर्ण्य ततः सगस्तम् ॥ २६९ ॥  
घृतस्य भाष्टे त्रिपुले निवेश्य दशोत्तरं प्रस्थशतं जलस्य ।  
सिस्वा क्षिपेत्पञ्च दिनानि भूमौ निष्पत्रकल्पं हृदये विचार्य ॥ २७० ॥  
पष्टे दिने तद्य सुयोजनीयं ताम्रस्य यच्चद्रयमध्यभागे ।  
शतत्रयं नागलतादल्लानां सहस्रयुग्मं शतपञ्चकाणाम् ॥ २७१ ॥

मक्षाल्यदेयं विधिनाऽथ सन्धि विमुश्य चुह्यां विनिवेश्य यद्गम् ।  
 निष्काशयेदर्कमतो यथावद्त्वा जलं चोपरि यज्ञकस्य ॥ २७२ ॥  
 बलावलं रोगनिपीडितानां विमृश्य देयः पलकममाणः ।  
 खार्जूरसंङ्घः मिय आसवीऽयं विमूचिकायस्मभयं निहन्ति २७३ ॥  
 हृद्रोगकासविपमज्वरशोफतर्पेखासमेहवलसंक्षयपाण्डुरोगान् ।  
 हित्याश्र नाशयति सर्वशिरोविकारान् रुच्यग्रिवर्धनबलमद-  
 वृष्ट्य एषः ॥ २७४ ॥

मस्त्वासवः ।

वंशपत्रीप्रतीकाशमस्तुद्रोणे मुनिर्मले ।  
 क्षिपेहृदत्तुलां भाण्डे वचाकुष्ठविलेपिते ॥ २७५ ॥  
 तस्मिन् दद्यातु कृष्णायाः प्रस्थं प्रस्थवर्यं तथा ।  
 त्रिफलाया विद्धानां कुडवं परिचस्य च ॥ २७६ ॥  
 काशमरीफलमृद्रीकापरूपकफलानि च ।  
 वत्सकस्य च वीजानि समानि मरिचेन तु ॥ २७७ ॥  
 पञ्चमूलं च पद्मन्थां दन्तीं चित्रकमेव च ।  
 द्वे द्वे पले च भलाताद्विष्टु समुपकल्पयेत् ॥ २७८ ॥  
 यवपल्ले स्थितः पेयोऽरिष्टो मात्रावले प्रति ।  
 पाण्डुरोगोदरे हन्ति ग्रहण्यशाँविकारनुत् ॥ २७९ ॥  
 परं भगन्दरपुरीहशोपकासामयापहः ।  
 अग्निसंदीपनः पथ्यो वाधिर्यस्थौल्यनाशनः ॥ २८० ॥  
 मस्त्वासव इति ख्यातो लेखनो भेदुरे हितः ।  
 उवरे कुञ्जकासवः ।

शर्वं कुञ्जकमूलस्य मृद्रीकार्धशतं तथा ॥ २८१ ॥  
 मधुकपुष्पकाशमर्यभागान् दशपलोन्मितान् ।  
 चतुर्णेऽम्भसः पक्त्वा शीते पादावशेपिते ॥ २८२ ॥  
 शसत्रयं गुडस्याथ धातक्या पलविंशतिम् ।  
 कनकस्य तु चत्वारि छ्योपं कङ्गोलमेव च ॥ २८३ ॥

एलात्वकपत्रजातीनां लवज्जस्य तथैव च ।

भागान् पलमाणांश्च सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ॥ २८४ ॥

कुञ्जमूलासवो द्वेष मासमात्रं विधारितः ।

शंमयेत्सन्निपातोत्थान् ज्वरान् सर्वान् न संशयः ॥ २८५ ॥

नालिकेरासवः ।

नालिकेरोदकं चैव द्रोणमात्रं प्रदापयेत् ।

द्रोणार्थं रसमिक्षोश्च रसप्रस्थं तु शालमलेः ॥ २८६ ॥

दशमूलरसस्यापि प्रस्थमात्रं तथैव च ।

घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मध्ये चूर्णं निवेशयेत् ॥ २८७ ॥

चातुर्जातकधातवयोः पलानि खलु पोटश ।

शाणमात्रा तु कस्तूरी केशरं तगरं तथा ॥ २८८ ॥

चन्दनं देवपुष्पं च पलमात्रं पृथक् पृथक् ।

मासादृध्र्वं पिवेद्यामुं रूपे कामसमो भवेत् ॥ २८९ ॥

द्वद्वोऽपि तरुणीं गच्छेत् पण्डोऽपि पुरुषायते ।

बलीपलितसंत्यक्तः शतायुश्च भवेन्नरः ॥ २९० ॥

नालिकेरासवः भोक्तः शम्भुना परमेष्ठिना ।

कूपमाण्डासवः ।

कूपमाण्डं जर्जरीकृत्य रसमादाय यत्नतः ॥ २९१ ॥

द्रोणं, गुडार्थं दातव्यं, चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ।

फुलिकं लवज्जं च चातुर्जातं तथैव च ॥ २९२ ॥

जातीफलं च कङ्कोलं जातीपत्री प्रियहुक्तम् ।

कपित्यं चत्सकं चैव वीजं गोहुरक्तस्य च ॥ २९३ ॥

अमृतासत्त्वभाग्यीं च वलावीनं तथैव च ।

इपुषा क्रमुके चैव देवदाह मदाहम् ॥ २९४ ॥

मुस्तं खदिरसारं च चित्रकं च फलविकम् ।

रास्ता यष्ट्याद्वकं चापि तुम्ह नागकेशरम् ॥ २९५ ॥

ग्रन्थिकं चाजमोदा च कारबी दीप्यकस्तथा ।  
 कटफलं च तुगाक्षीरी शाकछक्षुटिङ्गणम् ॥ २९६ ॥  
 कपित्यवल्कलं चैव शताहा गजशेखुकम् ।  
 कलिङ्गकाश्च काकोली शटी मोचरसो घनम् ॥ २९७ ॥  
 कोकिलाक्षस्य वीजानि कसेरुः सहदेविका ।  
 भूनिम्बश्वविका स्पृक्षा पद्मकं च निशाद्रयम् ॥ २९८ ॥  
 धान्यकं सुरदाली च क्षीरकन्दस्तयैव च ।  
 एतानि चाक्षमात्राणि लोहचूर्णं पलाष्टकम् ॥ २९९ ॥  
 प्रक्षिपेदय धातव्याः पलानि खलु पोडश ।  
 मासार्धं घृतभाण्डे तु यत्नतः स्थापयेत्क्षितौ ॥ ३०० ॥  
 अनेन विधिना सिद्ध आसवः परिकीर्तिः ।  
 पीत्वाऽस्य पलमेकं तु भ्रातरुत्थाय नित्यशः ॥ ३०१ ॥  
 धातुक्षयं च मन्दार्थं प्रमेहं पाण्डुमेव च ।  
 अर्शासि ग्रहणीदोपान् पूर्णोदरभगन्दरान् ॥ ३०२ ॥  
 रक्तपित्तामवाते च श्लेष्मरक्तं तथैव च ।  
 निहन्ति वातजान् रोगान् भेदःस्थौल्यापहाऽसवः ॥ ३०३  
 रक्षायनरिदः ।

समूलां पिष्पलीं शृङ्गीं वृहतीमश्मभेदकम् ।  
 पाटलां देवकाष्ठं च श्वदंप्त्रामभयां तथा ॥ ३०४ ॥  
 पोडशपलमेकैकं कोलानामाढकं पृथक् ।  
 दन्तीचित्रकमूलानां पलानि पञ्चविंशतिम् ॥ ३०५ ॥  
 चतुर्णुणे जले पवत्वा ग्रादमर्धावशोपितम् ।  
 शीते सपानभेदाण्डे पलिसे प्रशुसर्पिणा ॥ ३०६ ॥  
 खण्डस्य द्रिशतं शुद्धं तद्विश्वादस्य दापयेत् ।  
 पत्रीकृतं तिलोत्सेपं सूक्ष्मचूर्णान्यमूनि च ।  
 पियहूँ पिष्पलीं लोध्रं मृदीकां चैलवालुकम् ॥ ३०७ ॥

कमुकं शतपुष्पां च निम्बं तेजस्वतीमपि ।  
 पालिकं देवदारोश्च खदिराच्च चतुष्पलम् ॥ ३०८ ॥  
 क्षौद्रमस्थद्रयं चापि समावाप्य घटे शुभे ।  
 सैम्ये पुष्पे तथा हस्ते रोहिण्यामुच्चरासु च ॥ ३०९ ॥  
 दशरात्रस्थितः पेयोऽरिष्टाचेयपूजितः ।  
 अश्विभ्यां कथितः पूर्वं रसायनवरो हायम् ॥ ३१० ॥  
 मात्रामग्निवलापेक्षी पिवेदस्य हिताशनः ।  
 यन्यः पुष्टिकरो वल्यो वलीपलितनाशनः ॥ ३११ ॥

उवे धान्यकाव्यरिष्टः ।

धान्यकोशीरमुस्तानां पलमेकत्र कारयेत् ।  
 द्रिपलं पद्मकं कुपुं कुर्यान्निम्बं तर्दर्धकम् ॥ ३१२ ॥  
 सर्वशेन ततो दद्याच्छिन्नाङ्गां च फलत्रिकम् ।  
 जलद्रोणद्रयं दत्त्वा पोडशांशेन संहरेत् ॥ ३१३ ॥  
 पलं दाव्यास्ततस्तस्मिन् शीते पूते भिपन्नरः ।  
 पलानि पोडश क्षौद्रादत्त्वा सर्वं विमन्थयेत् ॥ ३१४ ॥  
 स्थापयेद्वृतभाण्डे तु मासादृश्चं प्रयोजयेत् ।  
 धान्यकादिररिष्टोऽयं सर्वज्वरविनाशनः ॥ ३१५ ॥

पातुक्षये लवक्षासवः ।

देवपुष्पं वराङ्गं च केशरं पृथुकां तथा ।  
 कलौञ्जीं मर्कटीवीजं मूशलीद्रयगोक्षुरम् ॥ ३१६ ॥  
 वलावीजानि पोस्तल्वग्वीजं च करहाटकम् ।  
 पृथक् पृथक् प्रकुर्वति पलानां पञ्चकं तथा ॥ ३१७ ॥  
 चतुर्दोणेऽम्भसः पवत्वा कुर्यात्पादावशेषितम् ।  
 शटी च पिष्पलीमूलं मारिचं साध्यगन्धकम् ॥ ३१८ ॥  
 शुष्टी जातीफलं चापि कुद्धुमं जातिपत्रिका ।  
 आकद्धुकं कवाचं च देला कृष्णाऽगुरुस्तथा ॥ ३१९ ॥

वालिसं चन्दनं चैव विसया क्षीरकन्दका ।

दृद्धदामभवं वीजं कमुकं वंशरोचना ॥ ३२० ॥

धनूरस्य च वीजानि पलमात्राणि कारयेत् ।

सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥ ३२१ ॥

द्वाविंशत्पालिकं क्षीद्रं धततवयाश पलाष्टकम् ।

तुलार्घं तु गुडाजीर्णद्रृतमाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ३२२ ॥

मासादृघ्वं पियेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ।

धातुक्षयं जयेच्छीघ्रं लवङ्गाद्यासवस्त्वयम् ॥ ३२३ ॥

विदपौ वहशात्वः ।

शतं पलानां वरुणस्य मूलं त्वक् शिंशपायाश तदर्थमात्रा ।

तावत्तथा पुष्करमूलमुक्तं तदर्थमाप्तिश तदर्थमात्रः ॥ ३२४ ॥

कुरष्टको रोहितकत्वचश तावथ शिशुर्दशमूलकं च ।

पलानि विश्वत्खलुदेवदारोः भुद्रा च तुलपा भुरदारुणा च ॥ ३२५ ॥

दर्भस्य मूलानि पलानि पञ्च हिंस्तातरेत्वीणि च कण्टकार्याः ।

राजादनस्यापि पलानि सप्त शतावरीमूलपलत्रयं च ॥ ३२६ ॥

ततुल्यकाशमर्यकमर्जुनश्च शृङ्गी शताहा गजपिपली च ।

वलाशटीनागवलाकरञ्चायनिकाकेशुकपेषशृङ्गधः ॥ ३२७ ॥

कुमुं च वासासितकर्तुं कं च विडङ्गकृष्णातिविपाश जीरम् ।

चब्यं च रात्रोत्पलसारिवा च स्यात्कौटजशाऽप्यथ दीप्यकं च ॥

वातार्यरिष्टाहरनार्यतिकं रक्ताऽमृता तेजनीवल्कलं च ।

सब्याधिवाता हपुषा च भृङ्गी प्रत्येकमेषां हि पलद्वयं तु ३२९

पचेज्जलद्रोणचतुष्प्रये च तत्पादशेषे पलपद्वशतं च ।

क्षिपेद्वृदं मास्तिकधातकीर्णा पलानि विश्वत्सकलं पुनस्तद् ३३०

निधापयेन्मांस्यगुरुपधूपिते भाण्डे ततः छुङ्ग्यचन्दनद्रयम् ।

पलं क्षिपेद्वै कतकं निशाकरं लवङ्गपाकलक्वंशरोचनम् ॥ ३३१ ॥

भागीं सुराणीं तगरं कवादं जातीफलं पत्रकजातिपत्रौ ।

क्लोहं च वृद्धितकवालकं च प्रत्येकमेषां हि पलं विनिक्षिपेत् ॥ ३३२ ॥

मासं निधेयो यचमध्यतस्तु पेयो यथाव्याधिवलं समीक्ष्य ।  
 श्रीहोदरं विद्विगुल्मकासं श्वासं तथा रक्तविकाराहिके॥३३३॥  
 शूलापवातार्बुद्पाण्डुरोगं कुष्ठं तथा छर्दिमरोचकं च ।  
 शोफं तथाऽध्यानभगन्दरं च शुक्राश्मरीं ग्रन्थिमनेकमेदम् ३३४  
 शोपापतानार्दितपक्षघातसन्धिग्रहार्तीश्च हलीपकं च ।  
 निदन्ति वन्ध्यासुतदोऽथ वृष्ट्यः प्राणपदोऽयं वस्त्रासवो हि  
 पित्तानिलश्लेषमरुजापहक्ष वैतालरक्षोग्रहभीतिहन्ता ।  
 ग्रन्थान्समालोक्य चिकित्सकानां हिताय नूनं कथितो मया हि  
 श्रीहोरोगे रोहितकासवः ।

रोहितकासुलमेकां चतुर्दोणेऽम्भसः पचेत् ।

द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत् ॥ ३३७ ॥

पलानि खलु धातक्याः पोडश द्विशतं शुद्धात् ।

पलं पृथक् त्रिजातस्य पञ्चकोलपलं तथा ॥ ३३८ ॥

चूर्णांकुतं सिपेत्सर्वं घृतलिसे तु भाजने ।

पक्षादूर्ध्वं पिवेच्चापि ततो मात्रां यथावलम् ॥ ३३९ ॥

श्रीहं श्रीहोदरं चैव श्रीहशुलं तथैव च ।

हृच्छूलं पार्वशूलं च तथा सर्वमरोचकम् ॥ ३४० ॥

हन्ति विवन्धशूलं च पाण्डुरोगं सकामलम् ।

नाशयेच्छर्द्यतीसारं ज्वरं जीर्णं तथैव च ॥ ३४१ ॥

रोहितकासवो शेषं श्रीहं च शमयेद्गुबम् ।

गण्डीरासवः ।

जातसारं तु गण्डीरं सपुष्पं परिशोपयेत् ॥ ३४२ ॥

खण्डशः क्षोदितं कृत्वा तस्य पञ्चाढकं पचेत् ।

अर्धैव त्रिफलाप्रस्थान् दशमूलीतुलां तथा ॥ ३४३ ॥

दद्यात्कुटजवल्कस्य प्रलानां पञ्चविंशतिम् ।

इन्द्रयर्वं सभलातं विद्वन् धनमेव च ॥ ३४४ ॥

अर्धप्रस्थसर्वं भागानेकैकस्य समावपेत् ।

पाठा मधुरसा दन्ती पञ्चन्या चित्रकस्तथा ॥ ३४५ ॥

एषां दशपलान् भागान्मृद्गीकायास्तथाऽऽङ्गकम् ।

दशद्रोणेषु तोयस्य पचेद्विद्रोणशेषितम् ॥ ३४६ ॥

पूते तस्मिन्कपाये तु गुडस्यैर्नां तुलां क्षिपेत् ।

तथा तु शोधितस्यापि, शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ ३४७ ॥

द्वाँ प्रस्थीं मधुनश्चैव द्रावयोरजसस्तथा ।

अर्धप्रस्थो विडङ्गानां कुडवो मरिचस्य च ॥ ३४८ ॥

एतयोः मृद्ग्यचूर्णानि प्रतिवापार्थमाहरेत् ।

चूर्णं यरीचकानां च मधुना सह योजयेत् ॥ ३४९ ॥

कर्तव्यो भाण्डलेपस्तु समासित्य निधापयेत् ।

एष मासस्थितः पेयो यथाव्याधिवलावलम् ॥ ३५० ॥

गण्डीरारिष्ट इत्येष व्यापतः परिकीर्तिः ।

एष शोपान् प्रमेहांश्च गुल्मांश्च जठराणि च ॥ ३५१ ॥

क्रिमिकुष्टानि वर्ध्मानि षट्ठीशार्णासि भगन्द्रम् ।

द्रवयशून् पाण्डुरोगांश्च ग्रहणद्विष्टमेव च ॥ ३५२ ॥

ग्रन्थींश्च गलगण्डं च गण्डमालां तथैव च ।

विपमज्वरकासांश्च विद्रधीन् वातशोणितम् ।

अरिष्टः शमयत्याशु युधि शक्र इवामुरान् ॥ ३५३ ॥

शीहरोगे रोहीतकासादः ।

तुलाद्रयं रोहितमूलकानां द्विद्रोणमावेण जलेन पवत्वा ।

क्षेप्यं गुडस्य द्विशतं पलानामषादश स्युखिफलापलानि ३५४

लवङ्गजातीफलधातकीनां पलानि लोहस्य पेडेव दध्यात् ।

देयं चतुर्जातकपञ्चकोलं पृथक् पृथक् पञ्चपलं तर्थय ॥ ३५५ ॥

गुलमज्वरारोचकहंडिकारभगन्द्रष्टुष्टीहनिपीडितानाम् ।

रक्तामयन्वासनिपीडितानां सदाऽऽसवोऽयं विधिनामयोज्यः ५६

योगराजासव ।

द्राक्षायाः शर्करायाश्च गुडस्य च पृथक् पृथक् ।

पलानि दश कार्याणि पञ्चापलचतुष्टयम् ॥ ३५७ ॥

लबद्धवदरीसर्जार्जुनानां तु त्वचस्तथा ।

पलं पलं पृथग्ग्राह्यं देवदारुपलं तथा ॥ ३५८ ॥

चित्रकस्य च लोध्रस्य पिष्पलीमूलकस्य च ।

धातकीकुसुमानां च तद्रदेयं पलं पलम् ॥ ३५९ ॥

तथा पूर्णफलानां तु कपायाणां पलं मतम् ।

मज्जिष्टायाः पले द्रे तु काथ्यसंज्ञानि तानि च ॥ ३६० ॥

लबद्धकलिकाजातीपत्रैलाजागकेशरम् ।

मरीचपिष्पलीशुष्ठीत्वज्ञासीचव्यमुस्तकम् ॥ ३६१ ॥

कुष्ठं जातीफलं ग्रन्थिपर्णं स्तुक् कदुरोहिणी ।

एषां पलं पलं ग्राह्यं तज्ज्ञेयं चूर्णसंज्ञितम् ॥ ३६२ ॥

काथ्यद्रव्यात्ततः सम्यग्जलमष्टगुणं क्षिपेद् ।

काथ्यं तदुदके कुर्यादर्धभागावशोपितम् ॥ ३६३ ॥

तत्काथं वस्त्रपूर्तं तु भाण्डेऽन्यस्मिन्मनोहरे ।

कृत्वाऽत्र प्रक्षिपेचूर्णं तद्वाण्डं धान्यराशिगम् ॥ ३६४ ॥

कृत्वा सप्तदिनं शीते काले चोषणमये तथा ।

यावदिनानि त्रीणि स्युः पश्चाद्वाण्डं रामुद्धरेत् ॥ ३६५ ॥

पुनस्तद्वस्त्रपूर्तं तु भाण्डे कर्पूरवासिते ।

निक्षिप्य सेवयेत्प्रातः पलमात्रोपलक्षितम् ॥ ३६६ ॥

स दक्षो वातपित्तघो दीपनो रक्तरोगनुद् ।

योगराज इति ख्यात आसवोऽर्थं गुणोन्तः ॥ ३६७ ॥

अशोरोगे पीत्वासवः ।

मूर्वाखर्जूरपाठानिलरिषुमधुकं कच्छुरां द्याहृग्

कौलत्यग्नेतसाम्लं दहनमिशिकणाकृत्याविद्युत्तद्वद्यम् ॥

त्वग्लोध्रादादिमाद्य पलमितमिति पृथर दृष्ट्यान्तं युक्तं

पीडुंद्रोणे द्विपसं गुडपलशतपुरु शन्यरात्रै रिद्यान् ॥ ३६८ ॥

अर्थः श्रीहं च गुलमे जठरगदमयो निष्ठंददिभाद्यं

कुर्याचार्मि भद्रीसं प्रवल्ययुनं रिद्यान्तं ददिभाद्यं

१ वातग्ने इति पृत्राण्डेऽस्मै ॥ ३६९ ॥

द्वये मध्वासवः ।

विशालानिविपाभार्गकुष्मुस्ताप्रियज्ञवः ।

विद्वन्नप्रिफलाकृष्णाच्यव्यग्रन्थिकदीप्यकाः ॥ ३७० ॥

असांशान् सलिलद्रोणे पवत्वा पादावशेषिते ।

दत्त्वा क्षीद्रं तदर्थं हि निर्गेय भाण्डे निधापयेत् ।

एव मध्वासवो दृन्ति मेहं द्रिपलयोजितः ॥ ३७१ ॥

घोटासवः ।

फलविकं निम्बपटोलमुस्तापावामृताचित्रकचन्दनं च ।

बैलं समंज्ञा च मधूकसारकचूरवासाचिवृताहरित्राः ॥ ३७२ ॥

दुरालभार्पटकण्टकारीशक्राशनं यासकवर्मरङ्गे ।

शशाङ्कलेखाकपिकचुमूलं मेथी च विलं गुटजथ तिक्ता ३७३

आयन्तिका पुष्करकस्य मूलं पलैकमानानि मर्हापथानि ।

पाष्ठिः पलानां खदिरस्य सारो द्ययोरजः स्यात्यलपुगममानम् ॥

स्याद्वोहकिट्टं च तुलामपाणं तत्पञ्चकं केवुकजीवनीयम् ।

प्रक्षिप्य भाण्डे गशियुग्मधक्षान् मूर्यीतपे स्थाप्य ततस्तु योज्यः

लोहासवोऽयं भिपजोपदिष्टः सर्वोत्तमो रोगविनाशदेतुः ॥ ३७५

शति श्रीशोडलप्रविते गदनिग्रहे यष्ठ आसवाधिकारः संपूर्णः ।

समाप्तशार्यं प्रथमः प्रयोगस्तप्तः ।

## स्तेहचूर्णगुटीलेहासवानां परिभाषा ।

---

अत्र गदनिप्रदे वैयक्तिरसोढलेन पृतादिसाधनपारेभाषा नोक्ता, अतोऽध्येतृणो सौकर्यार्थं मया संक्षेपेण पारेभाषा निर्दिश्यते । तत्र पूर्वं मानपरिमापेव हेया चक्षति । अतः सोच्यते—

न मानेन विना युक्तिदंव्याणां जापते कुचित् । अतः प्रयोग-  
कार्यार्थं मानप्रबोच्यते प्रया ॥ यद्योऽष्टसर्वपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्-  
चतुष्टयम् । पद्मभिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥ मापै-  
शतुर्भिः शाणः स्यादरणं तत्त्विगच्यते । ठङ्कः स एव कथितस्तद्वयं  
कोल उच्यते ॥ शुद्धको बटकश्चैव दण्डशणः स निगच्यते । कोलद्वयं  
च कर्णः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ॥ अक्षः पिञ्चुः पाणितलं  
किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् । बिडालपदकं चैव तथा पोडशिका  
पता ॥ करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवडयहः । उदुम्यरं च पर्यायैः  
कर्णं एव निगच्यते ॥ स्यात्कर्णाभ्यामर्धपलं शुक्किरण्मिका तथा ।  
युक्तिभ्यां च पलं डेपं मुटिरासं चतुर्थिका ॥ प्रकुञ्जः पोडशी  
विल्वं पलमेवाच कीर्त्यते । पलाभ्यां प्रसृतिर्देवा प्रसृतश्च निग-  
च्यते ॥ प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुट्टयोऽर्धशरावकः । अष्टमानं च  
स देष्यः, कुडवाभ्यां च मानिका ॥ शरावोऽष्टपलं तदज्ञेयप्रब्र  
विचक्षणैः । शरावाभ्यां भवेत्प्रस्त्यशतुःप्रस्थैस्तथाऽऽडकम् ॥ भाजनं  
कंसपात्रे च चतुःषष्ठिपलं स्पृतम् । चतुर्भिराढकैर्दोणः कलशो  
नश्वणोऽर्मणः ॥ उन्मानं च घडो राशिद्रोणपर्यायसंज्ञकाः ।  
द्रोणाभ्यां सूर्पकुम्भौ च चतुःषष्ठिशरावकः ॥ मूर्पाभ्यां च भवे-  
द्वौणी घडो गोणी च सा स्मृता । द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता  
सूर्पमवुद्दिभिः ॥ चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्याधिका च सा ।  
पलानां दिसद्वस्त्रं च भार एकः प्रकीर्तिः ॥ तुला पलशातं डेपं  
सर्वैवैष विनिश्चयः । मापटङ्गाक्षविल्वानि कुडवः प्रस्त्य आडकम् ।  
राशिद्रोणिः स्वारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः ॥

शुक्किः योजना, कर्तव्यविधिरिति यावत् । यवेत्यादि अत्र परमाण्वादिमाना-  
-कणनं तु तेषां निक्षित्यामनुपयोगादेव । सर्वयोऽन्न गोरुर्धैः । तैरथभिरेको  
यवः । यवोऽन्न निस्तुयो शाश्वः । चतुर्भिर्यवेको गुञ्जा, सा चाश रक्ता हेया ।  
यद्यभिः रक्तगुञ्जाभिरेको गाषकः । अयं च सुवर्णमाषक इति सुधुनारे  
प्रसिद्धः । चतुर्भिर्माषकेकः शाणः । द्वाभ्यां शाणाभ्यामेकः बोलः । द्वाभ्यां

कोलाभ्या चेकः कर्पः । ए च संग्रहि भारतवर्षे प्रथलितर्णयकाहयव्यावहारिकं  
द्रष्ट्यपरिशिष्टः । अतो माधवाग्निला यगाकर्म एकाणक-आणकचतुष्टय-अर्धेष्ट्यक-  
( र० ८-, र० १-, र० २-॥, ) परिभिता शेयाः । ( शारवस्य ‘शेर’ इति नामा  
भाषायां व्यवहारः, द्वीणस्थ च ‘मण’ इति नामा । ) अन्यतस्मृम् ।

शुष्काणां स्थादिर्द मानं द्विगुणं तद्रवाद्र्दयोः । न द्विगुणं तुला-  
माने पलोऽलिखागते तथा ॥ शुष्कद्रव्येषु यन्मानमार्दस्य द्विगुणं हि  
तत् । शुष्कस्य गुरुतीर्णत्वं तस्मादर्थं प्रयोजयेत् ॥ शुष्के नवीनं  
यद्रव्यं योजयं सकलकर्मणु । आर्द च द्विगुणं दद्यादेप सर्वव्र  
निश्चयः ॥

यथ प्रयोगे यद्वन्यं शुष्कमुख्यते तस्य याक्नमानं लिखितं तावनिमत्तेव  
तद्ग्राह्यं; तदेव यशादिमुख्यते तदोक्तमानोपेक्षया द्विगुणं प्राप्तं; यस्य द्रव्यं क्षीर-  
सोयादिकं द्रवमेवोपयुक्तये तदप्युक्तमानोपेक्षया द्विगुणं प्राप्तं; एतत्र द्रवार्दयोद्देश्युण्यं  
रक्तिकादौ कुड्यादौ च सर्वव्रीर हेत्यं; परं यथ तुलामानं यत्र वा पलशब्देन मानो-  
द्वेष्टः यथा—‘ रोद्दितक्त्वच ऐप्रात्पलानो पश्चिमानिः ’ इत्यादौ तत्र तु द्रवार्दयोद्देश्युण्यं  
न कार्यम् । यत्तु “ गुज्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्तितिः । द्रवार्द-  
शुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ ” प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं  
तद्रवाद्र्दयोः—“ इति तत्तु न प्रमाणं, युक्तिविरोधाचरकमुक्तुत्विरोपाच ।  
येषां तु द्रव्याग्नामार्दतायामेव नियमतः प्रयोगे न शुष्कतायां, तेषामाद्रीणां  
द्वेश्युण्यं न कार्यं; आर्दतायामेवंशमुपयोगस्तु तदवस्यायामेवैषामुक्तृष्टीर्यत्वात् ।  
तानि च यथा—

“ गुड्याकुट्जो वासा कुम्भाण्डं च शतावरी । अश्वगन्धा-  
सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी ॥ प्रयोक्तव्या सदैवाद्र्दी द्विगुणं नैव  
कारयेत्—” इति । अन्यत—“ वासानिम्बपटोलकेतकिग्लाकुलमा-  
ण्डकेन्द्रीयरीयर्पाभूकुट्जाभ्यगन्धसहितास्ताः पूतिगन्धाऽमृता ।  
मांसं नागबला सहाचरणुरौ हिङ्गवार्दिके नित्यशो याद्यास्तत्क्षण-  
मेव न द्विगुणिता ये चेष्टुजाता घनाः—” इति ।

अथ भेषजादिग्रहणसेकेतः—लवणं सैन्धवं ग्रोक्तं चन्दनं रक्तचन्द-  
नम् । चूर्णलेहासवद्वेषाः साध्या धवलचन्दनैः ॥ कथायलेपयोः  
ग्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् । पयःसर्पिःप्रयोगेषु गव्यद्रेव हि  
गृह्णते ॥ शाकद्रसो गोपपकं मूर्चं गोपूष्मुच्यते । सिद्धार्थः सर्वपे  
ग्राय उत्पले नीलमुत्पलम् ॥ कालेऽनुके प्रभातं स्पादङ्गेऽनुके  
जटा भवेत् । भागेऽनुके च साम्यं स्पात् पान्तेऽनुके च मृग्नप्रयम् ॥  
द्रवेऽनुके जलं याहां तैलेऽनुके तिलोद्धवम् । एकपर्यौपर्धं प्रयोगे

यस्मिन्यत्पुनरच्यते ॥ मानतो द्विगुणं यात्यं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ।  
 व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्वज्ञेत् ॥ अनुक्तमपि युक्तं यद्यो-  
 जयेत्तत्र तद्वृत्थः । कदाचिद्द्रव्यप्रेक्षे हि यदि योगे न लभ्यते ॥ तत्त-  
 व्यगुणयुतं द्रव्यं परिवर्त्तेन यत्यते । द्रव्याभावे तु तत्त्वब्यं द्रव्यमेव  
 प्रदीयते ॥ न्ययोधादेस्त्वयो यात्या सारः स्याद्विजकादितः ।  
 ताळीसादेश पश्चाणि फलं स्पात्रिकलादितः ॥ धातक्षपादेश पुष्पाणि  
 स्तुत्यादेः क्षीरप्रादरेत् । महानित यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि  
 च ॥ तेषां तु वश्कलं प्राणं सूक्ष्मपूलानि रुत्स्रतः । जाह्नवानां  
 वयःस्यानां चर्मरोपनश्चादिकम् ॥ क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाद्वारे तु  
 यादयेत् । चतुष्पात्सु स्त्रियः श्रेष्ठाः पुष्पांसो विहगेषु च ॥ वल्मीक-  
 कुत्सितानूपद्मशानोपरामग्जाः । जन्मुवहिहमप्यात्मा नौपध्यः  
 कार्षसाधिकाः ॥ शरथ्यसिलकार्यार्थं यात्यं सरसमौपद्यम् । विरे-  
 कवप्रनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ॥

अय खेदपाकपरिभादा—अत्राह सुधुतः,—“खेदाच्चतुर्गुणो द्रवः, खेद-  
 चतुर्धीशो भेषजकल्पः, तदैकर्थं संभृत्य विपचेदित्येष खेदपाक-  
 कल्पः । भवति चाच—खेदभेषजतोयानां प्रमाणं यत्र नंरितम् ।  
 तत्रापि विधिरास्थेयो निर्दिष्टे तत्तदेव तु ” इति । खेदाच्चतुर्गुणो द्रव इति  
 वचनं एकद्वित्रिशेषु चतुर्गुणसम्युक्ते खेदसाधननिषेधार्थं, नतु पश्चप्रशृतिद्वेषु  
 चतुर्गुणाधिक्ये प्रतिषेधार्थं, तेन यद्वेषेन द्रवेण पाकस्तव्रैकेनैव चातुर्गुणं, यत्र  
 द्राम्या द्रवाभ्या खेदपाकस्तत्र खेदगुणाभ्यां ताभ्या चातुर्गुणं, यत्र विभिर्द्वैः  
 खेदपाकस्तत्र विभिः मिलितेषातुर्गुणं, यत्र तु चतुर्भिर्द्वैः खेदपाकस्तत्र खेद-  
 समेवतुर्भियातुर्गुण्यमिति । यत्र तु पश्चप्रशृतीभि द्रवाणि यत्र तु सर्वाणि खेद-  
 समान्येव प्राप्ताणि । तत्र क्षीरे विशेषः—, यत्र द्रवान्तरं नोकं तत्र क्षीरं  
 चतुर्गुणम् । द्रवान्तरप्रयोगे तु क्षीरं खेदसमं पतम्—इति । वाह्या-  
 चर्मर्थः—यत्र केवलेन क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरमेव चतुर्गुणं द्रवा खेदः साध-  
 नीयः । यत्र तु एकद्रवान्तरयुक्तेन क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं खेदसमं द्रव नतरं च  
 खेदगुणमिति मिलित्वा खेदचतुर्गुणेन द्रवेण पाकः, यत्र च द्रवान्तरद्रवयुक्तेन  
 क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं खेदसम द्रवान्तरद्रव च खेदार्थमिति मिलित्वा खेदचतु-  
 र्गुणेन द्रवेण पाकः, यत्र द्रवान्तरत्रययुक्तेन क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं द्रवान्तरप्रयं च  
 खेदसममिति प्रत्येकं मिलितेषतुर्गुणोः खेदाकः । तदूर्धं चतुःप्रशृतिद्रवान्तरयोगे  
 क्षीरं द्रवान्तरं च प्रत्येकं खेदसमे द्रवा पाको निष्पादनोयः । अय कलहमानापावादः—  
 “ वृषादिकुमुमैः कर्कैर्यज्ञोक्तं खेदसाधनम् । कदकाङ्गवत्यात् पादार्थं  
 तत्र कलकं प्रदापयेत् ” इति । यत्र खेदे कर्त्तो नोकात्मय केवलेन द्रवेषैः

चतुर्गुणेन लेहसाधनम् । यदुक्तं—“ अकल्कः स्वलु यः स्वेहः स साध्यः केवले दवे” इति । यथा योगे द्रष्टव्यगण एव निर्दिष्टः क्वापो वा कल्को वा न निर्दिष्टस्तिमशनिर्देशे तत्समाकृत्यगणात्कल्कत्ताथाऽभावपि प्रयोजयेत् । यदुक्तं सुधुते—“ कल्कक्षयावनिर्देशे गणात्तस्मात्प्रयोजयेत् ”—इति । अत्र च गणशब्दो गणसंशया यो गणः पश्चमूलादिक्षक्षत्तन्मात्रे न विवक्षितः, किंतु त्रिप्रभृतिद्रष्टव्यसमूहे विवक्षितः, गणात्तस्मादित्युक्तेः । एतेन वर्त्मकेन द्रष्टव्ये द्रष्टव्येन वा पाकस्तत्र कल्पेनैव, यत्र तु त्रिप्रभृतिभिर्द्रष्टव्यैः पाकस्तत्र क्वाथकल्काभ्यामुभाभ्याभिति शेष्यम् । लेहसाधने क्वाथकल्पनोक्ता सुधुतेन—“ तत्र यथायोगं त्वक्लृप्तप्रफलमूलादीनामातपपरिशोधितानां छेषानि खण्डशशठेदपित्वा भेद्यान्यणुओ भेदपित्वाऽवकुट्याष्टगुणेन पोडशशुणेन वाऽम्भसाऽभिपित्य स्थाल्यां चतुर्भागावशिष्टां क्वाथयित्वाऽपद्वरेदित्येष क्षपायपाककल्पः ” इति । अत्राष्टगुणतोयं मृद्दादिसंघाताभिप्रायेण द्रष्टव्येष्टगुणेनोक्तम् । यदुक्तमन्यत्र—“ मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं जलम् । कठिनात्कठिनं यज्ञ तत्र पोडशिकं जलम् ॥ मृद्रादी द्रष्टव्यसंघाते मानात्मकौ चिकित्सकाः । मध्यस्योभयमागित्वादिच्छन्त्य-ष्टगुणं जलमिति । तथा—“ क्वाथयादष्टगुणं वारि, पादस्थं स्पाश्चतुर्गुणम् । खेहात्, खेहसर्पं क्षीरं, कदकस्तु खेहपादिकः । चतुर्गुणं त्वष्टगुणं द्रष्टव्येष्टगुण्यतो मवेत् ” इति । यथा त्रायद्रष्टव्यमानमलमष्टगुणे तोये क्वाथकरणे लेहचतुर्गुणः क्षापो न भवति तत्रोक्तमानेन क्वाथद्रष्टव्यं गृहीत्वा पोडशशुणे तोये क्वाथयित्वा पादशेषं लेहचतुर्गुणं कुर्यादित्यभिप्रायेणोक्तं पोडशशुणेन वाऽम्भसाऽभिपित्येति । “ अथवा तत्रोदकद्रोणे त्वक्लृप्तप्रफलादीनां त्रुलापावाप्य चतुर्भागावशिष्टमपद्वरेदित्येष क्षपायपाककल्पः । त्रुलाद्रष्टव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रष्टव्यत्रुलाऽभसि । ततः पलशते द्रष्टव्ये जलद्रोणोऽपि चेष्यते ॥ ” यत्र त्रुलाद्रष्टव्यं जले पचेदित्युक्तं परं जलप्रमाणं नोक्तं, तत्र द्रोणमिति जलं ग्राह्यं; यत्र तु द्रोणमिते जले द्रष्टव्यं पचेदित्युक्तं परं द्रष्टव्यप्रमाणं नोक्तं, तत्र द्रष्टव्यं तुलाप्रमाणं प्राप्यमिति भावः । यत्र कियत्प्रमाणः शेषः साध्य इति नोक्तं तत्र प्रस्थप्रमाणः शेषः सापनीयः; तथाच ‘ अनिर्दिष्टप्रमाणानां लेहानां प्रस्थ इष्यते’ इति ।

लेहपाककालनियमः—लेहान् विपाच्यैव विरामयेत् शीरे द्विरात्रं स्वरसे ग्रिरात्रम् । कल्के क्षपायेषु च पञ्चरात्रं दध्नपारनलिपुनरेकरात्रम् ॥ अस्यायमर्थः—क्षीरादिद्रवाणि कल्कं चैकर्त्त्वं संतुज्य विपचेत् । तत्र, क्षीरं कर्त्तव्यं यत्र तर्वैकर्त्त्वं द्रष्टव्यं संतुज्य पक्त्वा द्विरात्रं विश्रामयेत्; स्वरसः कल्कव्यं यत्र तत्रैकर्त्त्वं द्रष्टव्यं संतुज्य पक्त्वा त्रिरात्रं विश्रामयेत्; यत्र केवलः

क्षित्यतने कल्के चतुर्गुणं जर्णं च संसूज्य पश्चत्वा पश्चात्रं विरामयेत्; यत्र कथायः  
क्षित्य तत्रैकाध्यं द्वये संसूज्य पश्चत्वा पश्चात्रं विरामयेत्; यत्र दधि क्लक्ष्य तत्रै-  
काध्यं द्वये संसूज्य पश्चत्वा एकरात्रं विरामयेत्, यत्र आरनालः क्लक्ष्य तत्रैकाध्यं  
द्वये संसूज्य पश्चत्वा एकरात्रं विरामयेत्; अत्र दधिशब्दस्तक्ष्य, आरनालशब्दस्त  
श्वारीनो संघानविशेषानां मूत्रादीनो च उपलक्षणम् । यत्र क्लक्ष्य क्षीरादीनो  
दिव्यादिकानि द्रवाणि च तत्र कल्कं गमे इत्वा तत्तद् क्षीरादिकं प्रन्येकं दत्त्वा  
संसूज्य पश्चत्वा स्वस्वोक्तक्षालं विरामयेत्, यथा—क्षीरे द्विरात्रं, स्वरसे त्रिरात्रं,  
कथाये पश्चात्रं, दध्येकरात्रं, आरनाले चैकरात्रमिति । एतद्य विशेषेण गुणा-  
श्वानार्थम् । उक्तं हि—“घृतैलगुडादीशं नैकाहादयतारयेत् । व्यूषि-  
तास्तु प्रकुर्येन्ति विशेषेण गुणान् यतः”—इति । विरामरात्राभ्युन्तवे  
द्य विशेषेण गुणाधानाभावमात्रं नतु खेदपाकासिद्धिः, अधिके च न दोषः । सिद्धं  
भेदं वेद्याहात्यित्वोपयुक्त्यात् । तत्र मृदुपाक इवसद्वाधात्किंद्रं सर्वथा न  
पीडनीयं; मध्यमे मनाक् पीडनीयं, इवाभावात्; खेरे तु यथेष्ट पीडनीयं, इव-  
रोहितत्वात् । मध्यपाकस्तु सर्वप्र प्रशस्तः । यदुक्तं,—वरं पाको मृदुः कार्यः  
प्रेदादीनां न वै स्वरः । स पूर्णं वीर्यं पादत्ते तज्जहाति स्वरः पुनः ।

अथ खेदपाकविज्ञानम् । अत्राह सुधुतः—अत ऊर्ध्वं खेदपाकक्षमम्-  
पदेश्यापः । स च त्रिविधः । तद्यथा—मृदुः, मध्यः, स्वरः, इति ।  
तत्र खेदौपधिविवेकपात्रं यत्र भेषजं स मृदुः, मध्यच्छिष्ठमिय  
विशदमविलेपि च यत्र भेषजं स मध्यमः, कृष्णमयसन्नभीपदिशदं  
चिकाणं च यत्र भेषजं स खर इति । अत ऊर्ध्वं दग्धस्नेहो भवति,  
तेऽपुनः साधु साधयेन् । तत्र पानाभ्यवहारयोमृदुः, नस्याभ्य-  
अनपोर्मध्यमः, वस्तिकर्णपूरणयोस्तु स्वर इति । भवतश्चात्र—  
शब्दस्थोपरमे प्राप्ते फेनस्थोपरमे तथा । गन्धवर्णरसादीनां संपत्ती  
सिदिपादिशेत् ॥ घृतस्थैर्व विपकस्य जानीयात्कुशलो भिपक् ।  
फेनोऽतिमात्रं तैलस्य द्वाधं घृतवदादिशेत् ॥ इति ॥

अथ चूर्णपरिभाषा—अत्यन्तशुष्कं पद्मव्यं सुपिण्ठं वरखगालितम् ।  
तत् स्पाधूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ चूर्णं गुडः सपो-  
देयः शर्करा द्विगुणा भवेत् । चूर्णेषु मार्जितं हिङ्ग देयं नोक्तेद-  
कृद्येत् ॥ लिडेचूर्णं द्रवैः सर्वैर्हृतार्थेद्विगुणोन्नितैः । पियेचतु-  
र्मुणिरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ चूर्णविधाने त्रिविधः प्रचारो दृश्यते चूद-  
वैयानाम् । तत्रैके द्वित्वारिदन्विनिधाये चूर्णप्रयोगे प्रत्येकं द्रव्यं संचूर्ण्यं वरखगालितं  
कृत्वा ततो यथोक्तमभेन गृहीत्वा एकाकृत्वं प्रयुक्षन्ति; अपरे तु सर्वाध्यपि  
द्रव्याणि यथोक्तमानानि संरूपं एकाध्यं संचूर्ण्यं वरखगालितं रुत्वा ध्यवदरन्ति ।

बुद्ध प्रदेशे पूर्वं जमीनादीना॒ रीमंत्योदित्युर्म्, उत्रं दद्य भावता॑  
देवा॑ सहश वीरं नार॑ उक्तव्ये॑ तदा॑ रागेन॑ भावयेत्, यस्तु॑ इत्यो॑  
भोवत्वेऽत्तु॑ “भाव्यद्वयस्मं पाप्यं पाप्यादेयुगं जलाम्। अष्ट॑-  
शास्त्रिः क्षम्यो॑ भाव्यानां॑ तेऽन् भावता॑—” हनि॑ वरीमावया॑ वक्त्यं॑  
निष्ठाह॑ तेरै॑ भावयेत्। भावनाचिपि॑—“द्वेषण यावता॑ भाव्यज् चूर्णं॑  
सर्वं॑ द्वुन् भवेत्। भावनायाः॑ प्रमाणं॑ तु॑ चूर्णं॑ प्रोक्तं॑ भिषाप्यैः॑॥१॥  
दिवा॑ दिवाऽत्तपे॑ द्वुरुं॑ चुर्वा॑ रात्र्वा॑ नियापयेत्। द्वुकं॑ चूर्णीकृतं॑  
द्वयं॑ प्रयोक्ते॑ भावनाचिपि॑—” हनि॑। वपोक्तं॑ भावनाचिपि॑ भवतारं॑  
निष्ठाकेद्वारे॑ वा॑ यावद्वारे॑ भावतोक्ता॑ तावद्वारे॑ भावयेदिर्व्यैः॑। अनुके॑ तु॑  
तावद्वारे॑ भावयेत्॑ इत्येवाः॑।

गुटेधारेभावा॑—यदकाशाय कथ्यन्ते तप्ताम् गुरुत्वा॑ घटी॑।  
प्रोदयो॑ घटकः॑ पिपडी॑ गुण्डी॑ पर्तिस्तथोदयते॑॥२॥ लेङ्यत्सात्पते॑  
पह्ना॑ गुडा॑ या॑ शार्कराशयम्। गुण्डुलुवा॑, शिगेसप्र चूर्णं॑ तनिर्मिता॑  
घटी॑॥३॥ लुर्याश्वदिभित्तेन॑ छथित्तुगुण्डुना॑ घटीम्। द्रवेष गधुना॑  
घाडपि॑ गुरुत्वा॑ कारपेदुभः॑॥४॥ वया॑ लेहार्पं॑ गुण्डेकं॑ उत्तये॑ संपेषाप्र  
गुडः॑ चर्वते॑ गुण्डुर्गं॑ वक्त्वाः॑। पाके॑ धनि॑ चूर्णं॑ प्रदेष्यव॑ घटकान्॑ कुर्दिति॑  
भावः॑। गुण्डालुवा॑ तु॑ गशनिप्र॑ एव॑ प्रोक्तम् (प्रयोगमान्द तु॑ १४७)।  
गुडवहुगुण्डो॑ पाकः॑ सखन्दवहु॑ एप्येषतः॑॥५॥ मण्डूराणां॑ च॑ सर्वेषां॑  
पाको॑ ये॑ पार्कीर्तिन्तः॑॥६॥ पश्चान्॑ रमाह॑ क्षेत्रिति॑; न॑ संवेष। अशितिन्द्रेव॑  
गुटित्तेन॑ गुण्डुना॑ चट्टघः॑ वागः॑। अपशा॑ द्रवेष तोयशीरादिता॑, वा॑ गधुना॑ धौ-  
देष चूर्णभ्यं॑ उत्तये॑ पवित्रां॑ कारयेत्। वटिकागा॑ गुडशक्तिरात्रेनो॑ माने—सिता॑  
चतुर्गुणा॑ देया॑ पटीषु॑ द्विगुणो॑ गुडः॑। चर्णो॑ चूर्णसमः॑ कार्यो॑  
गुण्डुर्मधु॑ तत्सम्भम्। द्रवं॑ च॑ द्विगुणं॑ देयं॑ प्रोदकेषु॑ भिषम्बैः॑॥७॥  
एतय॑ शार्करादीना॑ गानमगुक्तमाणेषु॑ प्रयोक्तेषु॑ लेषम्।

अवलेहपरिभावा॑—छतायादीनां॑ पुनः॑ पाकादनत्वं॑ सा॑ रसक्रिया॑।  
सोऽवलेहश्च॑ लेहश्च॑ तन्मात्रा॑ रूपातपलोन्मिता॑॥८॥ अनुके॑ सितादीनां॑  
परिमाणमुद्देशे॑—मिता॑ चतुर्गुणा॑ देया॑ चूर्णभ्यं॑ द्विगुणो॑ गुडः॑। द्रवं॑  
चतुर्गुणं॑ दद्यादिति॑ सर्वेषां॑ निश्चयः॑॥९॥ द्रवमिति॑ रीद्वृत्तादिक्षम्। चतुर्धा॑  
स्तु॑ निष्ठायते॑ लेहः॑। तत्र॑ प्रथमः॑ दार्ढ्यदिदृश्याणां॑ राम॑ न्यायायपरिभावया॑  
क्वाये॑ निष्ठाय॑ तं॑ पुनरेष्वगतिते॑ यावदने॑ भेषतावत्तयः॑ निष्ठायते॑, तस्य  
विवेषनो॑ ‘रसांक्या’॑ इति॑ जाग्रा॑ प्रसिद्धिः॑। तथाहि॑—“गृहीत्वा॑ काष्ठकल्पेन॑  
क्षाथे॑ पूर्तं॑ पुनः॑ पुनः॑। काष्ठयेत्काणिताकामेवा॑ प्रोक्ता॑ रसक्रिया॑”१०॥  
इति॑। द्वितीयस्तु॑ क्षाथदव्याणि॑ वधोक्तमानेन॑ काष्ठवित्वा॑ तं॑ क्षाथं॑ वृक्षपूर्तं॑ इत्वा॑,  
तदा॑ शार्करादिक॑ प्रसिद्ध्य॑ पुनः॑ पक्षवा॑ पाके॑ सिद्धे॑ चूर्णं॑ प्रदेष्यव॑ निष्ठायते॑।

तृतीयः केवलं शर्षसादिकं जलं पक्षत्वा सिद्धे पाके चूर्णादिकं प्रक्षिप्य निष्पायते । चतुर्थस्तु चूर्णं यथोक्तमानैः क्षीदृष्टादिभिः चंगाव्य निष्पायते । अयं लेहादी चूर्णप्रक्षेपविचारः—प्रायो न पाकशूर्णानां गूरिचूर्णस्य तेन हि । आसन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्य पाकमागते ॥ आसन्नपाक इति उपस्थितिशास्त्रे न तु पाकमापने, तथा सति प्रवुरचूर्णस्य प्रवेशो न स्थादित्यर्थः । स्वल्पस्य चूर्णस्य पाकान्ते कदुण्णदशायां प्रक्षेप इति । पाकलक्षणं हु—सुपक्षे तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽसु मज्जनम् । स्थिरत्वं पीडिते मुदा गन्धवर्णरसोद्दद्वः ॥ तथा—रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्याद्राघमर्दनात् ॥ इति । स्थिरत्वमिति निधलत्यम् । एतेन द्वरहित इत्यर्थः । मुद्राऽन्य निप्रता ।

अथ आसन्नारिष्टपरिभाषा—द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं पत्संहितं भवेत् । आसन्नारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ यदपकौपधाम्बुद्ध्यां सिद्धं पर्यं स आसवः । अरिष्टः काथसिद्धः स्यात्तन्मानं छिपलोनिपतम् ॥ अतुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडात्तुलाम् । क्षीदं द्रव्यातुडादृष्टं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ प्रक्षेपं पश्चादेवं द्रव्यं धातकीपुष्टिदिकं, दशमांशिकं गुडपरिभाषादित्यर्थः । काथद्रवयाणि द्राक्षादीनि यथोक्तमानैजैले निष्काश्य वस्त्रपूर्तं पिखाय गुडादिकं धातकीकुसुमादिकं च यथोक्तमानेन प्रक्षिप्य पृतभाविते द्वे मूमये कुम्भे यावदर्थे प्रपूर्यु कुम्भं शरावेण पिखाय पक्षं मासं वा भूमा संस्थाप्य जातरसे उदृश्य वलगालैतं कृत्वा उपयुज्यादित्यरिष्टविधिः । आसवकरणे तु जलादी द्रवे एव गुडादीनि प्रक्षिप्य संधानं, न काथकरणम् । शोर्व अरिष्टवत् ।

अथ भेषजमात्राविचारः—न्युनं चेन्मात्रपा द्रव्यं न व्याधीन् विनिवर्तयेत् । मात्रयाऽधिकया युक्तं जनयेच्चापदं परम् ॥ मात्राया नास्त्यवस्थानं दोपमर्त्ति वलं धयः । व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रथोजयेत् ॥ तथाऽन्यलयव्युक्तीनामवबोधाय तत्र तत्र यथास्थूलं मात्रानिर्देशः कृत इनि ष्णेयम् । संप्रति मनुष्याणां अत्पदेहवलवस्त्रात् प्राचीनप्रन्थेपूर्कमात्रावेक्षया पादग्रमाणा अर्थी वा मात्रा देवा ।

आयुर्वेदीयग्रन्थमालायां प्रसिद्धीभूता ग्रन्थाः ।

गदनिपदः—श्रीसोढलवैद्यविरचितः । तस्य प्रयोगस्थपदात्मकः प्रया  
भागः ( द्वितीय संस्करणं ) मूल्य रूप्यकद्यपः; तस्येव द्वितीयो भागः काव्यवि  
कित्या-शत्य-शालाश्य-भूततन्त्र-कौमारतन्त्र-रणायनतन्त्र-शाजिहणतन्त्र-पद  
कर्मविद्यारूप्यनवराण्डात्मकः । मूल्यं-धार्षरूप्यकगतुष्टयम् ।

रसरत्नाकरान्तर्गतश्चतुर्थो रसायनस्थपदः—श्रोनित्यनायसिद्धविरचितः  
मूल्ये ८ आणकाः ।

आयुर्वेदपकाशः—श्रीमद्बुपाध्यायमाधवविरचितः । द्वितीय संहकरणम्  
मूल्य रूप्यकद्ययम् ।

क्षेमकुतुहलम्—क्षेमसर्वविरचितः पाकशास्त्रप्रबन्धः । मूल्यं १२ आणकाः ।

रसप्रकाशसुधाकरः—श्रीवशोधविरचितः तथा रससंकेतकलि हा  
काव्यसंग्रहामुण्डविरचिता । द्वितीय संहकरणं; मूल्यं रूप्यकद्ययम् ।

रसपद्वातिः—श्रीविन्दुपण्डितविरचिता श्रीमहादेवविरचितादीक्षादिता; ता  
लोहसर्वस्वयम्-श्रीकुरेशविरचितम् । मूल्यं-रूप्यकद्ययम् ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—वैद्य जादवजी श्रीकमती आचार्य—

नं. १८, होलीचक्कला, फोर्ट, बंबई

चरकसंहिता—वैद्यरत्नसंविग्रहजधीगोगीन्द्रनाथ्यसेनीन्द्रीचतुरकोपस्थानव्य  
रुप्यादिता. सूत्रस्थानात्मकः प्रधमः खण्डः, मूल्य दशरूप्यकाः । निदान-विम  
न-शारीर-इन्द्रियस्थानात्मको द्वितीयः खण्डः, मूल्यं पाण्डरूप्यकाः ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—वैद्यरत्न कविराज श्रीयोगीन्द्रनाथसेन एम.

नं. ३१, प्रधनकुमार द्यगोर स्ट्रीट, पाखुरिया घाट- कलकत्ता  
आयात्रासंप्रहः ( छट्टापाटी ) मूल्यं-द्वादशरूप्यकाः ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—वैद्य कृष्णशास्त्री देवधर; नासिक.

प्रत्यक्षशारीरंगम्—महामहोपाध्याय दविराज श्रीगणनाथसेनविरचितम्  
प्रधमो भाग.-मूल्य रूप्यकद्ययम् ।

सिद्धान्तनिदानम्—महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेनविरचितम् । प्रय  
भागः । मूल्यं रूप्यकद्ययम् ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेन-

न. १४ ब्रेट्टीट, कलकत्ता

भेडसंहिता—मूल्य नवरूप्यकाः ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—

Oriental Book Supplying Agency.

Shukravar path, Poona





